प्रकाशकीय

पाञ्चाल साहित्य परिषद ने अपने जन्म के प्रथम वर्ष में ही एक योजना बनाई थी जिसके द्वारा एतत्क्षेत्रीय कवियों और साहित्यकों का सम्मान और उनके ग्रंथों का प्रकाशन आदि कराके कुछ ठोस कार्य किया जा सके। आचार्य वचनेश इस जनपद के सर्व श्रेष्ठ और वयोवृद्ध कवि के रूप में आज उपस्थित हैं अतएव उनकी ओर आकृष्ट होना हम सभी के लिए स्वाभाविक और एक कर्तव्य हो गया। एक कवि के ही नहीं अपितु लेखक, सुधारक, भक्त, नाटक कार, उपन्यासकार, आचार्य, सम्पादक, कोषकार चित्रकार और अभिनयकार के गुणों का उनमें स्पष्ट दर्शन होता है। भारतेन्दु से लेकर वर्तमान तक की समस्त रचनाशैलियों का समन्वय उनके साहित्य में है। कवि का स्वरूप तो उनका जन्मजात है। छोटी ही अवस्था में एक पत्रकार और सम्पादक के रूप में उनका विकास होता है किशोरावस्था में ही कालाकांकर में जाकर आचार्य का पद प्राप्त करना उनकी प्रतिभा का स्पष्ट परिचायक है। वहीं महामना मालवीय, राजा रामपाल सिंह और कविवर सुमित्रानन्दन पन्त आदि का सान्निध्य उनकी कला को उत्तरोत्तर मुखरित करता जाता है। वहीं वे 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन का भी भार ग्रहण करते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी शब्द सागर' में भी सम्पादकीय योग देते हैं। कालाकांकर के साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन के स्फूर्ति केन्द्र बन जाते हैं। एकांकी, उपन्यास और स्फुट कहानियां लिखने के अतिरिक्त भक्ति और नीति के सुन्दर उपदेशक के रूप में भी सन्मुख आते हैं। उसी दार्शनिकता से प्रसूत उनका हास्य परिहास के रूप में सन्मुख आता है। जो उनकी बहुमुखी प्रतिभा की आभा को विकीर्ण कर देता है। ब्रज भाषा में तो शबरी की सृष्टि कर उन्होंने अप्रतिम स्थान प्राप्त किया ही है। समयानुसार खड़ी बोली को भी उन्होंने समान निष्ठा के साथ अपनाया है। ब्रज भाषा के कवियों की अंतिम सीढ़ी में वे सर्वोपरि दिखाई पड़ते हैं। खड़ी बोली की स्फुट रचनाओं में भी उन के कुशल कवित्व के दर्शन होते हैं। उनके आशीर्वाद से न जाने कितनों को प्रेरणा मिली है। अब भी उनकी साहित्य साधना नगर के एक छोटे से मुहल्ले में निरन्तर चालू है। वह उस नक्षत्र के समान हैं जो सूर्य से कई गुना प्रकाशमान होते हुए भी आकाश के एक दूर कोने में होने के कारण हीनाभ दिखाई पड़ता है। हमारा कर्तव्य था कि हम उनके वास्तविक स्वरूप और उनकी प्रतिभा को साहित्य जगत के सन्मुख रखते। इसीलिए उनका अभिनन्दन करने के लिए वचनेश अभिनन्दन ग्रंथ की रूप रेखा बनाई थी। एक वर्ष तक नाना कारणों से कार्य में कोई गति न आसकी किन्तु आज उसी कार्य को पूरा करके परिषद को चरम संतोष प्राप्त हो रहा है।

प्रचलित परिपाटी से इस अभिनन्दन ग्रंथ का कलेवर भिन्न प्रतीत होगा इस दृष्टि से कि इसमें वचनेश जी व अन्य साहित्यिक लेखों के स्थान पर अन्य सामग्री समाविष्ट की गई है। इसका कारण यह है कि हमारा दृष्टिकोण और हमारे प्रयास व्यापक रखे गये हैं। जब हमें वचनेश जी के और उनके साहित्य के अध्ययन का अवसर मिला था तो उस परम्परा को क्यों छोड़ दिया जाता जिसके कि वह मध्यबिन्दु हैं। अतीत काल से चली आने वाली एक धारा में जितने भी जलबिन्दु सन्निहित हैं, सबका अपना अपना कुछ है, और उस कुछ कुछ को लेकर ही समष्टिस्वरूप का निर्माण हुआ है। यह कहां सम्भव था कि उन समस्त नामों को इसी रूप से अभिनवित किया जा सकता। अतएव वचनेश जी के साथ अन्यों का स्मरण भी अतीव उपयुक्त समझा गया है। एक विशेष खण्ड में उस कवि और

सामग्री के प्रकार से इसके निम्न खण्ड हो गए है (१) वचनेश खण्ड —इसमें केवल वचनेश जी के जीवन वृत्त व्यक्तित्व और उनकी रचनाम्रो का अध्ययन प्रस्तुत किया है। (२) इतिहास खण्ड — इसमें वैदिक काल से १६४७ तक की जनपदीय गाथा को एक सक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'पञ्चाल' प्रदेश के इतिहास की इतनी सामग्री वेदो, उपनिषदो, महाभारत, पुराणो, बौद्ध और जैन ग्रन्थो में सग्रहीत है कि वह एक भिन्न ग्रन्थ का कलेवर हो सकती है। भारत के प्राचीनतम जनपदों में पञ्चाल, बहुविश्रुत और सम्मानित रहा है। अहिच्छत्र, काम्पिल्य, साकास्य और कान्यकुब्ज क्रमश अपने एकाकी महत्व को धारण कर परम प्रसिद्ध रहे है। दर्शनशास्त्र और दार्शनिको की तो यह भूमि अधिष्ठात्री ही रही है। पाण्डवो , गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी के चरणो द्वारा यह कईवार पवित्र हो चुकी है। न जाने कितने वशो, राज्यों और राजधानियो का निर्माण और ध्वस यहा पर हुआ है। खेद है कि इतने प्राचीन गौरव को लिए हुए भी यह स्थान इतना उपेक्षित रहा है कि किसी भी नियोजित खोज और खुदाई के कोई उपक्रम यहां नहीं किए गए।

इन स्थानों की खोज मे इतिहास के कई बहुमूल्य पृष्ट तो बन ही सकते हैं साथ ही पुरातत्व सामग्री इतनी उपलब्ध हो सकती है कि कई सग्रहालय बडे आकर्षक रूप में सजाए जा सकते हैं । यहां के स्थानों की अभी तक प्राप्त सामग्री अधिकांशत विखरी पडी है और कुछ मूर्तियां आदि मथुरा, दिल्ली और प्रयाग के सग्रहालयों में शोभायमान है यदि नगर म एक सग्रहालय स्थापित हो जाय और यतस्तत विखरी सामग्री संयोजित करदी जाय, तो एक बहुमूल्य अध्ययन सामग्री का रूप ले सकती है। कम्पिल, सकिसा आदि स्थानों के दूह प्रेरणा के पुज है वे अपने वक्षस्थलो मे न जाने कितने निर्माणो और ध्वसो की सामग्री समेटे बैठे है' कोई उनसे जाकर पूछे तो ?

ग्रथ का तृतीय खण्ड ग्रन्थ कवियो का है इस खन्ड की सामग्री साहित्यिक दृष्टि से उतनी महत्वपूर्ण है जितनी पुरातत्वीय दृष्टि से यहांके इतिहास की सामग्री। बहुत से सांख्य, ब्राह्मण,सूत्रऔर बौद्ध ग्रन्थो का प्रणयन इसी क्षेत्र मे हुआ है। बडे बडे विचारक और तत्वदर्शी यहां होते रहे है जिनका विशेष परिचय ग्रथ में यथा स्थान आया है। सस्कृत कविता का स्वर्ण काल ६ से १० शताब्दी तक रहा है इस काल के अनेको प्रमुख कवि व साहित्यिक या तो इसी प्रदेश के थ अथवा यही राजाश्रय पाए हुए थे। महाराज हर्ष के नव रत्न विश्व विश्रुत है । उनमे से प्रत्यक की रचनाय वे जोड़ कही जा सकती है। हिन्दी क प्रादुर्भाव से लेकर अब तक जो कवि हुए है उनका सूक्ष्म विवरण उनक उपलब्ध रचना उदाहरणों के साथ दिया गया है इनम से कई कवि एसे है जो निसदेह हिन्दी के गौरव कहे जा सकते हैं । किन्तु उनका उल्लेख कहींभी साहित्य के इतिहास मे नहीं आया है फिर उनके ग्रन्थों के अध्ययन की तो बात ही क्या है। इन कवियो के वृत्त और रचनाये अनुपलब्ध होती जा रही है उत्तम है कि सयत्न अभी जो कुछ अवशेष है उसी का सग्रह कर लिया जाय, नहीं तो वह भी दुष्प्राप्य हो जावेगा । जिन सज्जनों के पास इस प्रकार की सामग्री हो वह यदि सूचित कर द , तो भविष्य के प्रयत्नो में सरलता हो सकेगी।

चतुर्थ खण्ड की सज्ञा विविध रखी गई है। हमारा उद्देश्य एक पर्यालोचन उपस्थित करन था अतएव यहा क लोक जीवन और सस्कृति की झांकी देना भी आवश्यक था। जो सामग्री उपलब्ध हो सकी, वह सम्मिलित कर दी गई है।

ऊपर निवेदन किया जा चुका है कि यह कार्य बडे विलम्ब से पूर्ण हो रहा है और वह भी शीघ्रता में । किसी भी प्रकाशन के प्रबन्ध भे सामग्री मे लेकर प्रेस तक जो समस्याये उपस्थित होती है उनका समाधान बडा दुरुह होता

साहित्यिक परम्परा का परिचय कराया गया है जो अतीत को वर्तमान से जोड़ती है।

नाम का महत्व अपरिमित होता है, इसी लिये जब परिषद के नाम करण का प्रश्न उठा था तो हमनें बड़ी बड़ी गहरी अनुभूतियों के साथ उपयुक्त नाम खोजनें की चेष्टा की थी। अनुभूति की गहराई हमें वहां तक ले गई थी जहां सुदास और द्रुपद सरीखे शक्तिशाली सम्राट हुये थे। उनके अतीत की गाथा आज के अहिच्छत्र, काम्पिल्य, सांकाश्य, कान्यकुब्ज भीष्मपुर आदि कह रहे थे। महाभारत उपनिषद और दर्शन सूत्र ग्रन्थों में जिस पन्चाल प्रदेश का नाम बड़े आदर के साथ लिया गया है, जो भूमि अपने शौर्य विद्या और साहित्य के लिए अतुलनीय रही है उसी पन्चाल नाम का पुनरस्मरण हमें हो आया और यह क्या ठीक नहो है जो उसी नाम को हमने अपनी साहित्य परिषद के साथ जोड़ लिया? हमने इस नाम और प्रदेश के सम्बन्ध में जितना ही अधिक खोजने की चेष्टा की उतनी ही इसकी गरिमा बढ़ती दिखाई दी। उस अतीत का स्मरण और वर्त्तमान फर्रुखाबाद नगर का नाम केवल उसी प्रकार का सयोग लगा जैसा मयूर के स्वर्णिम पन्खों के नीचे जुड़े हुये उसके कुरूप पैर—और उसी की परिष्कृति करने के लिये हमने अपने स्वरूप और आत्मा में परिवर्तन करना चाहा। उस अन्वेषण और प्रयोग की सिद्ध के रूप में जो प्रसाद इकट्ठा हो गया उसका एक भी कण किसी के भी विषम विचारों को शांत कर सकने में समर्थ हो सके, इसलिए उस प्रयोग का सन्निवेश भी इसी ग्रन्थ में कर दिया गया।

इस सबका एक और भी कारण था। आजके विद्वानों और अन्वेषकों की प्रवृत्ति कुछ ऐसी होगई है कि जो मोटे नाम उनके समक्ष आगए है, उन्ही के आस पास उनका सारा ध्यान केन्द्रित हो गया है आज जो डाक्टरेट बट रहे है, उनका सारा कार्य स्थान पर बैठे बैठे उसी सामिग्री से चला लिया जाता है जो किसी प्रकार वहीं इकट्ठी हो गई है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य खोज और अभिवृद्धि उस सामग्री के प्रति हो सकती है या नहीं इसकी चेष्टा नही की जाती है। अधिकांश डाक्टरेटों का विषय केवल सूर और तुलसी तक सीमित रह गया है। आगे नहीं बढ़ता। सूर और तुलसी का साहित्य वास्तव में वह निधि है जिसमें नित्य नए चमत्कार प्रदर्शित किए जा सकते हैं। किन्तु प्रश्न तो प्रवृत्तियों का है 'प्रगति' हमारा चरम लक्ष्य है और उसके लिये हमें उन स्तम्भों का निर्माण करना चाहिए जिन पर आगे की भित्ति खड़ी करनी है। इस लिए नरनामों और कामों के प्रति भी हमारा आकर्षण उसी मात्रा में होना चाहिए। किसी भी कलाकार के साहित्य के साथ उसके व्यक्तित्व का विशिष्ट सम्बन्ध होता है। हमें उस व्यक्तित्व की ओर भी उतना ध्यान देना है जितना उसके साहित्य के प्रति मुख्य तो व्यक्तित्व ही है।

जहां तक नई सामग्री का प्रश्न है, उसके भण्डार वह विशाल नगर व विद्यापीठ नहीं हो सकते जहां जीवन का व्यवसाय किया जाता है। छोटे छोटे ग्राम, नगर, और जनपद ही वह केन्द्र हैं जहां से अक्षय रूप में महा स्रोतों का प्रवाह चलता रहता है उन्हीं निर्झरिणियों के तट पर बैठ कर मुक्ताओं को समेटा जा सकता है। अतएव हमारे विद्वानों और साहित्यकों का ध्यान उस सामग्री की ओर जाना चाहिए जो जनपदों में बिखरी पड़ी है। समस्त संस्थाओं के प्रयत्न अब जनपदीय स्तर पर आना आवश्यक है। इस दिशा में प्रथम प्रयास करते हुए हमनें सामान्य पर्यालोचन की दृष्टि से इस जन पद के कवियों साहित्यिकों, संस्कृति, इतिहास और लोकचेतना का अध्ययन किया है—निस्सदेह वचनेशजी को अपने सम्मुख रख कर।

है। जिन परिस्थितियों में उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आमन्त्रण और इस ग्रंथ को इसी अवसर पर उपस्थित करने का निश्चय हुआ, उन सबके साथ इसका स्वरूप संतोष जनक ही होना चाहिए।

यह गुरु आधारिक कार्य है और प्रत्येक खण्ड केवल मात्र एक दिशा का निर्देश करता है। हमारा आगे का कर्त्तव्य है कि हम उस दिशा में बढ़कर इसके महत्तम स्वरूप को साकार कर सकें। यदि हम लोगों को यथेष्ट अवसर मिला होता और उन सज्जनों ने पूरा सहयोग किया होता जिनके पास जनपद सम्बन्धी कुछ सामग्री और सूचनायें थी तो निश्चय ही इसका स्वरूप और पूर्ण हो जाता। उदासीनता की प्रवृत्ति जनता में तो है किन्तु उस वर्ग में उतनी ही है। जो स्वयं साहित्य सेवा का ठेका लिए हुए है। जनपद के प्राचीन कवियों के बृहत आदि संग्रह का कार्य कवि कोविद संघ द्वारा उठाने की चेष्टा की गई थी और सबकी सामग्री का संकलन हुआ किन्तु प्रकाश में आने के स्थान पर वह सब सामग्री विलुप्त होगई। जिन जिन कवियों की रचनाओं का प्रसङ्ग आया है उनमें बहुत सी विद्यमान होंगी। किन्तु जिनके पास है वह सम्भवतः उन्हें उस लोक पहुंचाने की सदाशा लिए बैठे हैं। अस्तु

श्री ब्रह्मदत्त जी दीक्षित वह केन्द्र बिन्दु हैं जिसकी परिधि पर यहां का साहित्यक चक्र घूम रहा है। कितने ममत्व और लगन को लेकर उन्होंने इस जनपदीय कार्य को अग्रसर किया है? कितने व्यक्तियों को स्पर्श कर क्रिया। शील बनादिया है। उन्ही की प्रेरणा और शक्ति है कि निरन्तर व्यस्त रहकर इन्होंने इस कार्य को पूरा किया है। उन्हीं के माध्यम से परम विद्वान श्री कृष्णदत्त जी वाजपेई मथुरा पुरातत्व संग्रहालय, व श्री परमेश्वरीलाल जी गुप्त कलाभवन काशी विश्वविद्यालय के कान्यकुब्ज और अहिच्छत्र सम्बन्धी मूल्यवान लेख प्राप्त हो सके हैं। परिषद अपने छोटे से जीवन में जो कार्य करने में समर्थ हुई है उसका समस्त श्रेय दीक्षित जी को है। ग्रंथ के ग्रंथ संग्रह के कार्य को सर्व श्री चन्द्रशेखर शुक्ल, लालमणि गुप्त, तेजनारायण जी व श्री प्रकाश जी गुप्त ने बड़ी लगन से पूरा किया है जिन सज्जनों ने लेख व सामग्री जुटाने में योग दिया है उनके नाम विषय सूची में उल्लिखित है। सम्पादन के अतिरिक्त प्रेस के कार्य को भी सम्हाल कर श्री महावीर प्रसाद त्रिपाठी ने अपने परिश्रम और साधना का परिचय दिया है। हम सब एक ही परिवार के सदस्य हैं और एक ही ध्येय और कर्तव्य की पूर्ति में लगे हैं अतएव किसी धन्यवाद की आवश्यकता नहीं।

अन्त में पुन अपनी त्रुटियों की क्षमा याचना करते हुए हम समस्त साहित्य प्रेमियों से निवेदन करते हैं कि इस कार्य को केवल आधारिक रूप में समझें। बहुत से नाम और बहुत से प्रसंग बहुत सी सूचनायें छूट गई होंगी। निश्चय ही इनके छूटने का उत्तरदायित्व जितना हम लोगों पर है उतना ही उन सज्जनों पर भी है जिन्होंने अनुरोधों के उपरान्त भी अपने पास की संचित सामग्री या सूचना के उपयोग करने से हमें वंचित रखा है।

कृष्णराम पाराशर एम० ए०, एल एल० बी०	कमलेश मिश्र साहित्यरत्न
मन्त्री	सहायक मन्त्री

पाञ्चाल साहित्य परिषद फर्रुखाबाद

जनपदीय कवि खण्ड

(खण्ड सम्पादक श्री भजनलाल पाण्डे एव श्री कमलेश मिश्र) पृष्ठ

विविध खण्ड

(खण्ड सम्पादक श्री सुरेशचन्द्र शुक्ल तथा श्री कमलेश मिश्र साहित्य रत्न)

आचार्य वचनेश

द्विवेदी-युग से जबसे हिन्दी काव्य-क्षेत्र में खड़ी बोली के प्रयोग के प्रति आग्रह बढ़ा तब से ही काव्य में ब्रज भाषा के लिये सङ्कट एवं व्यवधान प्रस्तुत होगया। यद्यपि बा० अयोध्याप्रसाद खत्री एवं द्विवेदी भी खड़ी बोली के अपने आन्दोलनों में सफल हुये तथापि ब्रजभाषा का स्वरूप आजभी विद्यमान है। यह निसन्देह सत्य है यदि उसमें स्वभाविक माधुरी एवं सरलता के तत्व सन्निहित न होते तो उसके अस्तित्व का संरक्षक आकाश कुसुम ही होता। इन सुविधाओं के साथ साथ उसके सम्पोषकों की प्रशंसा किये बिना भी हम नहीं रहसकते क्यों कि खड़ी बोली के आन्दोलन के सम्मुख भी उन्हों ने अपने निश्चयको अटल रखा और हिन्दी काव्य को ब्रजभाषा के माध्यम से सम्पन्न बनाया।

द्विवेदी-युग से अब तक लाला भगवानदीन, रत्नाकर, रायदेवीप्रसाद पूर्ण, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायन कविरत्न, वियोगी हरि, वचनेश एवं रसाल आदि आदि के द्वारा इस भाषा को सम्पोषण एवं प्रोत्साहन मिला है। आज अब ब्रजभाषा के वयो वृद्धों के प्रयाण करजाने से वह अनाथ सी है तबभी वचनेश जी एवं रसाल जी द्वारा उसे बल मिल रहा है। यह उसके लिये गौरव और अहङ्कार की बात है।

वचनेश जी भारतेन्दु युग में जन्म लेकर द्विवेदी छायावादी एवं प्रगतिवादी युगों को पार करते हुये आज प्रयोगवादी युग में कालयापन कर रहे हैं। इससे उनका व्यक्तित्व महामहिम और अध्ययन के योग्य है।

वंश-परम्परा

हरदोई जिला में नौगांव एक ग्राम है जो शुठिगाव (सुठिआए) से दो कोस की दूरी पर है। यही वह ग्राम है जहाँ वचनेश जीके वृद्ध प्रपितामह (परदादे के पिता) प० बद्रीप्रसाद मिश्र निवास करते थे। उनका विवाह मिश्रसेन, जिनके नाम से ही फर्रुखाबाद का प्रसिद्ध मुहल्ला मिस्रकूचा के नाम से प्रख्यात है, के एक सम्बन्धी, जो त्रिपुर के मिश्र थे की कन्या से हुआ था। विवाहोपरान्त उन्होंने अपनी पत्नी को नौगांव ले जाना चाहा किन्तु उन्होंने धन के अभिमान के कारण लड़की को नही भेजा। उन्होंने दूसरे विवाह करने की धमकी भी दी और विवाह कर भी लिया। किन्तु अन्त में उन्हें अपने पास में रखने के उनके प्रयास सफल हुये। उन्होंने प० बद्रीप्रसाद को रहने के लिये एक मकान भी दिया जो अबभी लाला मुन्नईलाल के मकान के सामने है। इस प्रकार परिस्थिति-वश नौगांव से फर्रुखाबाद में रहने के लिये वचनेश जी के वृद्ध प्रपितामह को बाध्य होना पड़ा फलतः उनकी वंश परम्परा यहीं स्थाईरूप से चल पड़ी जो आज यथोचित रूप से चलरही है।

वचनेशजी के पूर्वजों के अध्ययन में प्रविष्ट हुआ जाय उससे पूर्व उनके वंश वृक्षको भी देख लेना उपयुक्तहोगा।
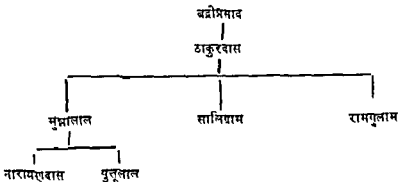
प्रपत हो गये थे। इस शोक से वचनेश जी की माँ बड़ी मर्माहत हुई थी। इस व्यथा से दुखी होकर उन्होंने महपुर की देवी जी के दर्शन भी करना त्याग दिया था। उन्होंने यह मानता मान रखी थी कि अब यह आयेगी तभी देवी जी के दर्शन करने जावेंगी। वास्तव में उन्होंने विचार कर रक्खा था वैसा किया भी।

जिला हरदोई में अपने मायके से दो कोस पर सङ्कट हरण महादेव का मन्दिर था उन्होंने मन्दिर में शिव जी पर चढ़े हुये दूध पीने वाले सर्पों को हटाकर महादेव जी की मूर्ति पर अपना सर पटक दिया था सौभाग्य से उसी वर्ष वचनेश जी का जन्म हुआ था। इससे वचनेश जी की माता बालक वचनेश को महादेव का ही वरदान समझती थीं।

परिवार का एक मात्र पुत्र होने के कारण माँ का वचनेश जी के प्रति विशेष वात्सल्य था। वह उन्हें घर के बाहर तक न निकलने देती थी। ४-५ वर्ष की अवस्था में वह करवाचौथ के चित्र देखकर चकले पर कोयला पिड़ु एवं गेरु से चित्र बनाया करते थे। खिलौनों को ठाकुर बनाकर पूजते थे। अब भी वचनेश जी से मिलने के लिये आने पर उनके घर की दीवालोंपर हनुमान जी एवं शेषशायी भगवान विष्णु के चित्र बने देखेंगे। माँ अब गृह-कार्य की व्यस्तता के कारण शिशु वचनेश जी को गोद न लेती थीं तो वह एक तुकबन्दी में गाया करते थे।
'इधर से लाई उधर धर दओ' उधर से लाई इधर धर दओ"

वचनेश जी को पाँच वर्ष की आयु के भीतर मुड़िया सीखने के लिये सेवाराम पांडेय के पास भेजा गया। वह अफीम खाया करते थे। जब उन्हें पीनक आजाती थी तब वह स्लेट पर चित्र बनाया करते थे। दंड के भय से वह ऐसे बने हुए चित्रों को थूक से बिगाड़ भी दिया करते थे। एक बार पांडेय ने वचनेश जी को इस अपराध के कारण पीटा इस पर वचनेश जी की माताजी ने मुड़िया का अध्ययन उसी दिन छुड़ा कर तहसीली स्कूल में उर्दू पढ़ने बैठा दिया। एक दिन मध्याह्न में जब वचनेश जी पढ़कर विद्यालय से लौट रहे थे तो मुहल्ले में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती से भेंट हो गई। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बालक वचनेश से पूछा क्या पढ़ते हो?

वचनेश जी— फारसी।

स्वामी जी—तुम कौन जाति।

वचनेश जी—ब्राह्मण।

स्वामी जी—तुम्हें हिन्दी संस्कृत पढ़ना चाहिए।

वचनेश जी—पिता जी जो पढ़ाते हैं सो पढ़ता हूँ।

स्वामी जी—तुम्हे पिता जी की अनुचित आज्ञा नहीं माननी चाहिये। देखो प्रह्लाद ने अपने पिता की आज्ञा नहीं मानी थी।

तत्काल ही घर पर आकर वचनेश जी ने अपने माता पिता से उर्दू-फारसी के स्थान पर हिन्दी संस्कृत पढ़ाने का आग्रह किया। उन्होंने वचनेश जी के बाल हठ की रक्षा करली। वचनेश जी का घर पर पढ़ना आरम्भ हुआ। 'अक्षर दीपिका' से वर्णमाला सीखकर उन्होंने घर पर 'ब्रजविलास' पढ़ना प्रारम्भ किया। उनका हिन्दी पढ़ने में ऐसा मन लगा कि शीघ्र ही उन्हें हिन्दी पढ़ना लिखना आगया। इसी समय परिवार में माँ की गौरी गवाने की अभिरुचि हुई। इसमें गौरी के सम्बन्ध के भजन गाये जाते थे। वचनेश जी नवीन भजन लिखकर अपनी माता जी से दो पैसे प्रति भजन प्राप्त किया करते थे। अनन्तर 'ब्रजविलास' की कथा के आधार पर वचनेश जी भजन बनाकर माताजी को देने लगे। इस कार्य के लिये उन्हें अपनी माता जी से एक आना प्रति भजन मिला करता था।

वचनेश जी के बाल जीवन के अध्ययन ने उन्हें कवि बना दिया और आस्तिक—भावना का उनके कवि जीवन से प्रारम्भ से ही गठबन्धन होगया। वचनेश जी किसी भी गुरु के समीप पिंगल शास्त्र का अध्ययन करने नहीं गये किन्तु अपने अध्यवसाय एवं अध्ययन से काव्य शास्त्र का उन्होंने पूर्ण रूप से अध्ययन कर आचार्यत्व प्राप्त किया। आज पिंगल एवं रस आदि के सम्बन्ध में उनकी निजी अनुभूतियां हैं। वचनेश जी कृष्ण के सखा भाव के उपासक हैं। उनके सम्पूर्ण काव्य में हास्य-काव्य तक में अपूर्व आस्तिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस

बड़ा प्रिय लगा। सौभाग्य से इसी समय एक साधु से उनकी भेंट हुई। यशोपरान्त उन्होंने उन्हें अपना गुरु माना और वैरागी होने की अपनी इच्छा प्रकट की। इस पर माता के षड्यन्त्र से उन्हीं साधु ने गुरुदक्षिणा के रूप में ६० वर्ष तक वैराग्य न लेने को उनसे प्रतिज्ञा ली। इस समय का वचनेश जी का काव्य शृंगार एवं वैराग्य रसात्मक है।

'भारत हितैषी' पत्र का प्रकाशन अब भी चल रहा था। उसमें उन के छोटे छोटे चुटकुले, रुपया कलम का झगड़ा, 'पार्वती और लक्ष्मी' का व्यंग विनोद, 'वैराग्य पचीसी' एवं स्फुट कविता में लेख प्रकाशित होते रहते थे।

कालाकाकर के राजा रामपालसिंह जी भी बड़े ही साहित्यिक एवं काव्यानुरागी थे। उनकी काव्य प्रतिभा से वह प्रभावित हो ही चुके थे। फलस्वरूप १८९१ ई० में (वचनेश जी १६ वर्ष की अवस्था में) उन्होंने वचनेश जी को कालाकाकर बुला लिया। वह उन से छन्द शास्त्र सीखते थे। वचनेश जी से पूर्व इस पद पर प० प्रतापनरायण मिश्र नियुक्त थे। रुष्ट होकर उनक चले जाने के कारण वचनेश जी की नियुक्त की आवश्यकता हुई थी।

कालाकाकर का जीवन

कालाकांकर में पहुंचकर वचनेश जी को मध्याह्न वेला में राजा साहब को छन्द शास्त्र समझाना पड़ता था। शेष समय वचनेश जी कविता सृजन करने में व्यस्त रहते थे। इस व्यस्तता से ये ऊब उठे थे। फलस्वरूप 'हिन्दोस्तान' में वह कविता के अतिरिक्त निबन्ध भी देने लगे। इस पर राजा साहब ने प्रसन्न होकर उनकी वेतन बृद्धि करदी थी। इस समय प्रारम्भ में वचनेश जी की माता जी उनके साथ रहीं अनन्तर उनकी पत्नी उनके साथ रहने लगी।

कालाकाकर के कर्मचारी मडली में दो विभाजन थे। एक भाग लिबरल कहलाता था। इस भाग के सदस्य राजासाहब के साथ मांस एवं मद्य का खान पान करने में अपना सौभाग्य समझते थे। दूसरा भाग उन लोगों का था जो सनातनी आचार विचार को पसन्द करते थे। दूसरा भाग कजरवेटिव कहलाता था। इन दोनो दलों में प्रतिस्पर्द्धा भी रहती थी। प्रथमदल दूसरे दल को अपने में मिलाने में प्रयत्नशील रहता था। राजा साहब के ये कृपा भाजन भी थे। इससे अहंकार वश कभी २ द्वितीय दल को हानि भी पहुचाने का अवसर ढूढते रहते थे। यों राजा साहब सदैव सहृदय रहते थे और द्वतीय दल की दृढ़ता की वह प्रशंसा भी किया करते थे। इस लिबरल दल की अशिष्टता एवं उदन्डता से वचनेश जी रुष्ट होकर कितनी ही बार फर्रुखाबाद चले आये किन्तु राजा साहब सदैव अनुरोध वश उन्हें पुन बुला लिया करते थे।

कालाकाकर में वचनेश जी के दल मे राजा साहब के भतीजे रामगुलाम सिंह थे जिनके नाम को परिवर्तन कर वचनेश जी ने रमेश सिंह कर दिया था। वह उन से अनकार सीखते थे। राजासाहब के अंग्रेजी आचरण मे असतुष्ट होकर उनके बाबा हनुमतसिंह ने रियासत के एक भाग का ट्रस्ट बनाकर रमेशसिंह के पिता (लाला रामप्रसाद सिंह) के नाम करदिया था। राजासाहब ने उनके अधिपत्य को हथिया लिया था। इससे लालारामप्रसाद सिंह राजासाहब पर अभियोग चला रहे थे। इस कारण राज परिवार में विद्वेष था। वचनेश जी रमेशसिंह को छुपकर पढ़ाते थे। बहुत से लड़के भी काव्य ज्ञान सीखते थे जिनमें से बहुत से अच्छे कवि भी बन गये।

राष्ट्रीय प्रगति में प्रोत्साहन देने के लिए जिस प्रकार कालाकांकर का राज परिवार अग्रसर था उसी प्रकार हिन्दी साहित्य और खडी बोली की सेवा करने के लिए भी यह परिवार प्रोत्साहित था। हिंदुस्तान' पत्र का उस समय बडा ही महत्व था। राधाचरण गोस्वामी एवं श्रीधर पाठक का इतिहास प्रसिद्ध ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली का विवाद इसी हिन्दोस्तान में उठाया गया था। अन्त में 'हिन्दोस्तान' सम्पादक द्वारा वह विवाद शान्त किया गया था।

यह बात दूसरी है कि चिरकाल के परिचय और अभ्यास तथा स्वरादिकों की कोमलता के कारण हिन्दी के उस रूप की कविता जिसको हम ब्रजभाषा कहते हैं

महाराष्ट्र परिवार ने उनका बड़ा साथ दिया। परिवार ने उनकी सेवा सुश्रूषा कर उन्हे पूर्ण स्वस्थ कर दिया। इसी समय २६ फरवरी १६०६ ई० को राजा रामपाल सिंह का देहान्त होगया। उनके निधन का तार वचनेश जी के पास पहुचा। अन्त में अपने स्नेही एवं शिष्य राजा रमेशसिंह के शोक भरे सन्देश ने वचनेश जी को विचलित कर दिया। वह पूर्ण स्वस्थ भी न होपाये थे कि कालाकांकर जाने के लिये उन्हे बाध्य होना पड़ा। वहां पहुचने में भी महाराष्ट्र सज्जन ने उन्हे पूर्ण सहयोग दिया था।

राजा रामपालसिंह के स्थान पर रमेशसिंह राज्याधिकारी हुये। वह वचनेश जी के अभिन्न मित्र और शिष्य थे। इस मैत्री एवं गुरुत्व भाव के कारण वह निश्चिन्त रूप से रहने लगे। कोई भी राजकीय एवं पारिवारिक कार्य वचनेश जी की अनुमति के बिना न किया जाता था।

उनके संरक्षण में 'सम्राट' पहले से ही निकल रहा था। अब उसके सम्पादन का पूर्ण दायित्व वचनेश जी पर डाल दिया गया। इस समय से वह पत्र साप्ताहिक कर दिया। उनके राजत्व काल में नाटक मन्डली एवं रामलीला की प्रगति में विशेष उन्नति हुई थी राजा रमेशसिंह अल्प जीवी ही रहे। भादों बदी ४ सम्बत १६६७ वि० को शिर पीड़ा से उनका निधन होगया। उनके निधन के शोक में वचनेश जी ने 'वज्रपात' नामक शोक काव्य लिखा। वचनेश साहित्य में केवल यह काव्य ही करुण रस में है। कवि ने इस काव्य के लिये लावनी छन्द अपनाया था। स्वर्गीय राजाने अपने पीछे अवधेश (छोटी रानी से केवल पाँच वर्ष के) एवं ब्रजेश (बड़ी रानी से केवल तीन वर्ष के) दो राजकुमार छोड़े। राजा अपने निधन के समय दोनो राजकुमारों को वचनेश जी के सुपुर्द कर गये थे। उनके तीसरा पुत्र भी हुआ था जिसका जन्म उनकी रुग्णावस्था में हुआ था। उसका नाम सुरेशसिंह रखा गया।

राजा रमेशसिंह के निधन पर कालाकांकर की रियासत कोर्ट आफ वार्डस होगई। नाबालिग अवधेश एवं ब्रजेश उनके निरीक्षण में रखे गये वचनेश द्वारा ही उनका अक्षरारम्भ कराया गया था कोर्ट आफ वार्डस की ओर से वचनेश जी को ३०) मासिक पर ट्यूटर के पद पर नियुक्त किया गया। स्वर्गीय राजा के वचनो का उत्तरदायित्व उन पर था इससे वह कम वेतन में ही कार्य करते रहे। दो वर्ष उपरान्त जब अवधेश लखनऊ के 'काल्वन स्कूल में प्रविष्ट करादिये गये तो कोर्टआफ वार्डस ने उनका वेतन बन्द कर दिया। इस पर बड़ी रानी ने उन्हे अपने सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त कर ३०) मासिक देना प्रारम्भ कर दिया।

प्रारम्भ से ही अवधेश को शिक्षा प्रदान करने में वचनेश जी ने स्वतन्त्र मनोवृत्ति से काम लिया था। उन्हो ने इसका दृढ संकल्प कर लिया था कि कालाकांकर राज-परिवार की लोक-विश्रुत राष्ट्रपिता का बीज उनमेंभी वपन हो। स्वभाविक शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से उन्होंने उनको पढ़ाना प्रारम्भ किया। वर्णमाला का ज्ञान ताशो द्वारा कराया था प्रत्येक अक्षर का उच्चारण मुंह के आवश्यक अंग से व्यवहारिक आधार द्वारा कराया गया था।

अवधेश का विवाह १० मई सन् १६२१ई०को हुआ था वचनेश जी के अध्यापन एवं संसर्ग से अवधेश जी की विचार धारा विचनेश जी के समान ही हो गई थी। विवाह भी वह लड़की को देखकर ही करना चाहते थे। किन्तु वचनेश जी के कहने से उन्होने बिना देखे ही लड़की से विवाह कर लिया। विवाहोपरान्त वचनेश जी को यह जान कर दुःख हुआ कि दहेज में आई हुई मोतियों की माला उन्होने कोर्ट आफ वार्डस के अंग्रेज मैनेजर की समवयस्का पुत्री को दे दी थी। एकान्त में वचनेशजी ने उनको डांटा और उस कृत्य को अनुचित बतलाया। इस पर अवधेश ने वचनेश जी से कहा 'अब तो मैं बड़ा हुआ आपको डांटना न चाहिये'।

अवधेश के इन वचनो से उन्हें बड़ा आघात लगा और उन्होने कालाकांकर परित्याग का पूर्ण निश्चय कर लिया। वह प्रतापगढ़ के राजा के सेक्रेट्रियट में कार्य करने लगे। वहां का साहित्य सेवा रहित कार्य उनको पसन्द न आया। वहां से वह रायबरेली चले गये। वहां मानस रामायण की कविता को वेद, शास्त्र एवं पुराणादि से प्रमाण देकर

त कर दिया। यह वन के पास ही रामपार्क में रहने
। उन्होंने निश्चिन्त होकर यहां ही अपनी कुटी में छन्दो
ते पर मनन करना प्रारम्भ किया। साथ ही सखा भाव से
ाथ-पत्रिका' भी लिखना प्रारम्भ किया। इस पत्रिका के
-एक गीत यह नित्य ही लिखा करते थे।

चनेश जी विद्यार्थियों को पढ़ाने में सदैव प्रवृत्त रहे। यह
वृत्ति आज भी उनमें विद्यमान है आज भी कोई जिज्ञासु
उनके समीप जाकर निराश होकर नहीं लौटता।
कालाकांकर के वाणप्रस्थी जीवन में ही उन्होंने हरदोई
जिला के मनजी नामक एक किसान के लड़के को बड़ी
संलग्नता से पढ़ाया था। वचनेश जी उसकी पुस्तकों और
भोजन की भी व्यवस्था करते थे। उसने क्रमशः
'विशारद' एवं 'साहित्यरत्न' परीक्षायें उत्तीर्ण करलीं थीं
वचनेश जी ने उसे 'सुधा प्रेस' में नियुक्त करा दिया
था। उसकी कवितायें 'दरिद्रनारायण' में निकलती रहती
थीं। खेद है कि वह थोड़े दिनों में ही काल-ग्रास हो गया।
मन'जी के साथ साथ श्री लक्ष्मीनारायण गौड़ (फर्रुखाबाद
के प्रसिद्ध कवि जिनका नाम 'विनोद' था) श्री रामकुमार मिश्र
(वचनेश जी के सुपुत्र) एवं दो तीन अन्य विद्यार्थी भी
पढ़ा करते थे। सभी ने 'विशारद' परीक्षा साथ साथ ही
उत्तीर्ण की थी।

इसी समय कालाकांकर राज्य के अधिपति श्री
अवधेशसिंह का अकाल निधन हो गया। यहां के
हनुमत्प्रेस' की व्यवस्था वचनेश जी के सुपुत्र श्री
रामकुमार मिश्र 'मानस' के हाथ में आई। इसी समय
वचनेश जी को छाती में फोड़ा निकला और
विवश हो उन्हें फर्रुखाबाद आना पड़ा। उस समय से
वचनेश जी यहीं हैं। कालाकांकर छोड़ने के बाद वचनेश जी
को कवि सम्मेलनों में सभापति बनाये जाने की परम्परा
सी चल पड़ी। झांसी, टीकमगढ़, मैनपुरी, श्री नाथ जी,
उदयपुर, सीतापुर, शाहजहांपुर, नैमशारण्य, लखीमपुर,
बस्ती, बदायूं, चित्रकूट, बांदा, कानपुर और लखनऊ आदि
के कवि सम्मेलनों में वह गये भी और सभापति के
पद से इन्हें सम्मानित भी किया गया। फर्रुखाबाद के
कवि सम्मेलनों का तो उन्हे चौधरी ही समझना चाहिये।

वचनेश जी के परिवार में दो पुत्रियां और एक
पुत्र श्री रामकुमार मिश्र हैं। श्री रामकुमार मिश्र के
दो पुत्र हुये किन्तु वे अकाल काल के ग्रास हो गये।
उनके पांच लड़कियां हैं जिनमें दो बड़ी लड़कियों के
विवाह हो चुके हैं शेषकुमारी हैं।

वचनेश जी के सिद्धान्त

वचनेश जी ने हिन्दी के सौभाग्य से दीर्घावस्था
प्राप्त की है। वह आज भी हमें आशीर्वाद देने और
हमारे आग्रहों की रक्षा के लिये विद्यमान हैं। यह हमारे
लिये गौरव और स्वाभिमान की बात है। उन में साहित्य
चर्चा एवं काव्य-चर्चा करने और सुनने में किसी युवक
से भी कम उत्साह और धैर्य नहीं। वह इस उतरती
अवस्था में भी बड़े सक्रिय हैं।

सनातनी परिवार में जन्म लेने पर भी उनमें
रूढ़वादिता के प्रति दुराग्रह नहीं। वह बड़े ही उदार और
शालीन हैं। काव्य-क्षेत्र में परम्परावादी होते हुये भी
साहित्य और काव्य की नूतन प्रगतियों का उन्हें सम्यक
ज्ञान है और अधिकार पूर्वक अपने विचार प्रकट करते हैं।
वचनेश जी के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मैं कुछ न कह कर
यही उचित समझता हूँ कि इस सम्बन्ध में उनके विचारों
को ही अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर दूं। उससे
वस्तुतः उनके व्यक्तित्व का अनुमान भी लग सकता है।
" मैं आध्यात्मिक रूप से पुराणों के वर्णित विषयों को
रूपक, श्लेष और अत्युक्त की सहायता से कहा हुआ
मानता हूं। इस प्रकार से समझने पर पुराणों के
विषयों का तात्पर्य बहुत सुन्दर ज्ञात होता है। ईश्वर
का प्रेम स्वामी और दास की अपेक्षा सखा भाव से
जचता है। महात्मा गांधी के सिद्धान्तों को मैं अपना सिद्धान्त
बनाता हूं। केवल कुछ विषयों में मैं उन के सिद्धान्तों में
सुधार चाहता हूं। कोई भी सिद्धान्त ऋषियों के कथित
सिद्धान्त से ऊहा पूह किये बिना सुधार विषय में मानना
चाहे वह राजनैतिक विषय में कितना ही अच्छा

बचनेश जी की कृतियों का परिचय

भारतेन्दु जी का जन्म ९ सितम्बर १८५० ई० एवं निधन ६ जनवरी १८८५ ई० है उन्होने ३४ वर्ष ३ मास २७ दिन जीवित रहकर हिन्दी की जो सेवा की उसे हिन्दी साहित्य का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है। काव्य नाटक, प्रहसन एवं मौलिक लेख लिखकर उन्होंने हिन्दी को नूतन जीवन दान दिया। यद्यपि परम्परागत काव्य के स्वरूप का वह परित्याग नहीं कर सके तथापि यह सत्य है कि राष्ट्र-प्रेम, भाषा प्रेम एवं देश की तत्कालीन परिस्थितियो का चित्रण कर सकीर्ण और सीमित काव्य को जीवन के चौरास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया। वस्तुत उन्होंने हिन्दी के आधुनिक युग को जन्म ही नहीं दिया, किन्तु उसका अपने अमर साहित्य द्वारा पोषण भी किया और अपने पीछे प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट एवं श्रीधर पाठक आदि कितने ही साहित्यिकों को उसकी सेवा करने का दायित्व भी सौंपा।

इसी भारतेन्दु युग में १८७५ ई० प० में बचनेश मिश्र का जन्म हुआ था। यही वह पवित्र वर्ष है जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर विश्व को वैदिक सस्कृति का परिचय दिया एवं मैडम ब्लेवटस्की और कर्नल अलकाट ने थियोसोफीकल सोसायटी की स्थापना कर भारतीयो और अन्य समुन्नत राष्ट्रो को भारतीय ब्रह्मज्ञान से अवगत कराया। भारतेन्दु के निधन के सम्वत्सर में बचनेश जी केवल १० वर्ष के थे। आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही उनका काव्य पहेलियो के द्वारा प्रस्फुटित होने लगा था।

१– देखे कर्म बैरागव तेरे।
हाड चबौरे साझ सबेरे ॥
२– पीरो घोड़ा काली लगाम।
मरती बेरा करै सलाम ॥

अपनी अवस्था के ही अल्हड़ एवं अबोध बालकों को छकाने के लिए उपर्युक्त कथित पहेलियो में कितना प्रवाह और भाषा में लोच है यह दृष्टव्य है। प्रथम एवं द्वितीय पहेलियों का उत्तर क्रमश 'शख' और 'खरबूजा' है जिनको बता सकना साधारण बालको के लिये कठिन है उसी अवस्था में अपनी मा की गौरी गोष्ठी की सफलता के लिये वह नित्य ही कुछ भजन बना दिया करते थे। इन रचनाओं के लिए बचनेश जी को प्रति भजन दो पैसा प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार काव्य की ओर उन की वृत्ति अग्रसर होती गई। महर्षि दयानन्द सरस्वती के सकेत पर वह हिन्दी की ओर विशेष रूप से अग्रसर हुए थे।

उन्होंने १८८७ ई० में 'भारत हितैषी' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया और इसके साथ ही उन्होंने 'विद्यावर्द्धिनी पाठशाला' की भी स्थापना की थी जिसमें निशुल्क शिक्षा दी जाती थी। उनका काव्यसृजन अब भी चल रहा था। इस समय ही कांग्रेस के सगठन कार्य के सम्बन्ध में राजा रामपालसिंह एवं प० मदनमोहन मालवीय फर्रुखाबाद पधारे। बचनेश जी से भेंट होने पर राजा साहब उनके छन्दज्ञान से बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने अपने परिवार में बचनेश जी को स्थान देकर अपने को बड़ा सौभाग्यशाली समझा। राजा साहब इनसे छन्द ज्ञान सीखते थे। बचनेश जी से पूर्व इस स्थान पर प० प्रतापनारायण मिश्र सुशोभित रहे थे।

कालाकाँकर राज्य में वह राजा रामपालसिंह, राजा रमेशसिंह एवं राजा अवधेशसिंह के राज्यकाल में रहे। यदाकदा रुठकर वह फर्रुखाबाद भी आजाते थे। इस प्रकार बचनेश जी का व्यक्तित्व कालाकाँकर और फर्रुखाबाद दोनों के–

किया। 'भर्तृहरि निर्वेद' नाटक के समान यह नाटक भी कालाकांकर में अभिनीत हुआ था। प्राचीन परिपाटी के अनुसार यह नाटक गद्य-पद्य मय है।

७ नवरत्न-(१६०६) ई० इस काव्य में भी विभिन्न विषय सम्मिलित हैं। 'मनोरंजिनी' में पचपन सवैया 'परमार्थ पचीसी' में पचीस सवैया 'मणि रत्न माला' में प्रश्नोत्तर के रूप में तेरह छन्द, 'मिश्र बत्तीसी' में तेंतीस सवैया 'हस्तामलक स्तोत्र' में चौदह छन्द, 'दुर्भिक्ष दमनाष्टक' में आठ दोहा सवैया एवं 'चतुर चालीसा' में इकतालीस दोहा संग्रहीत है। इस प्रकार जो प्रति मेरे देखने में आई है उसमें केवल सात विषय ही हैं। इस काव्य के दो उदाहरण देखिये।

जानि बालपने से गुपालहिं माखन चोरि घरैं घर खायो।
लै लकुटी तन कमरि ओढ़ि सो गायन के संग कानन धायो।
यों वचनेश किशोर भयो तब कुंजन रास विलास मचायो।
ऊधौ अचम्भो यहै हमको हरि योगको ज्ञान कहां सिखिआयो।
(मनोरंजनी- ५४)

भौन है जाको सबै ब्रह्माण्ड प्रदीप जहां रवि चन्द उजारे।
चौन को पंखा फरासी चलै वचनेश जू झाड़फनूस है तारे॥
माया नचै नित पातुर सो अनहद्द बजे घन नद्द नगारे।
ऐसे बड़े दरबार को छांड़ि कहा नर जाचत दीन के द्वारे।
(परमार्थ पचीसी- १)

इस काव्य के सभी अङ्ग अध्यात्मिक एवं जीवन-निर्माण से सम्बन्धित हैं।

८ धर्म-ध्वजा एवं (६) धर्म-पताका- इन दोनों पुस्तकों के विषय भी धार्मिक हैं। गाने योग्य भजनों का दोनों पुस्तकों में संग्रह है। कवि ने इन पुस्तकों में सनातनी परम्परा का ही सम्पोषण किया है।

१० युग-भक्त-इसमें ध्रुव एवं विदुर के भक्ति-पूरक आख्यानों को काव्य का स्वरूप प्रदान किया गया है। काव्य के लिये कवि ने घनाक्षरी छन्द को अपनाया है।

११ बजरंग बाल-चरित्र- सुग्रीव के यहां जाने से पूर्व हनुमान जी का बाल-वर्णन कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है इसकी प्रारम्भिक चौपाइयां देखिये—

जय बजरंग बली बरबीरा। मरकट बिकट रूप रनधीरा।
जय प्रभु असुर वंश-वन आगी। राम पदारविन्द अनुरागी।
ज्ञान निधान नीति नय नागर बुद्धि रासि गुन विद्या आगर।
बाल ब्रह्मचारी बलवंता तेज पुंज दृढ़ व्रत हनुमंता।

१२ 'शिव-पारवती-विवाह'-वचनेश जी ने इसकाव्य के लिये हरिगीतिका छन्द को अपनाया है। काव्य का विषय शृङ्गार पर आधारित है। कवि ने 'बारहमासा' का वर्णन भी किया है।

१३ 'पूरनभगत नाटक' १४ कनक तारा (एतिहासिक नाटक) १५ 'प्रहलाद चरित्र-नाटक' १६ 'रामलीला नाटक' १७ 'धनुष यज्ञ नाटक'।

उपर्युक्त सभी नाटक सामाजिक उत्सवों पर कालाकांकर में खेले जाते हैं। पहले वहां भी तुलसीकृत रामायण के पाठ के साथ ही रामलीला होती थी, किन्तु वचनेश जी ने 'रामलीला नाटक' एवं 'धनुषयज्ञ नाटक' रचकर रामलीला को उन्हीं के आधार पर खेलने की प्रेरणा दी। तब से वहा की रामलीला उन्हीं के आधार पर होती है। १८ 'पूंजी की टक्कर' १९ 'भंडाचार्ज' एवं २० 'क्या मुजायका?' आदि आदि वचनेश जी द्वारा प्रहसन लिखे गये हैं।

२१ बन्दाबाई- वचनेश जी का यह कल्पित उपन्यास है। यह एक स्त्री-पुरुष की प्रेम कहानी है। स्त्री पुरुष पर आसक्त होती है। मिलनोपरान्त वियोग के उपस्थित होने पर स्त्री को उसका वियोग असह्य होजाता है और उसी परिस्थिति में अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देती है।

२२ लालकुमारी-यह भी एक एतिहासिक उपन्यास है। इसमें एक मुसलमान नवाब की कहानी है। वह लालकुमारी नाम की किसी ठाकुर की लड़की पर रीझ गया। ठाकुर के परिवार पर उसने आक्रमण कर दिया सब प्राणी एक एक करके मारे गये। ठाकुर ने अपने प्राणोत्सर्ग करने से पूर्व अपनी कुमारी कन्या को अपने मित्र के यहां पहुंचा दिया। जब यह भी मारा

ने चारों वर्णों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं अन्त में कवि महोदय का कथन है—

ऊच नीच का भेद ये केवल दिखलाई ही परता है।
खून एक ही सकल अङ्गों में दौरा करता है॥
सबका स्वारथ एक एक उद्देश्य हेत सहचरता है।
कहें कहा तक, आतमा एक सबो का भरता है॥
अलग अलग करि कर्म भेद विधि भिन्न रूप के किये रचन।
ब्राह्मण मुख है, बाहु क्षत्री उरु वैश्य व शूद्र चरन॥
(वर्णाङ्ग व्यवस्था— १०)

इस प्रकार महाकवि वचनेश ने एकता की भावना को भी भरने का पूर्ण प्रयास किया है।

२७ ध्रुव चरित्र– (१९१४ई०) वचनेश जी ने इसे लावनी छन्द में रचा है। 'ध्रुव चरित्र' के काव्य का आख्यान भी पौराणिक है। कवि की आस्तिक भावना इस स्थल पर भी पूर्ण रूप से विद्यमान है। निम्न पंक्तियों से इस काव्य की कोटि का अनुमान लगाया जासकता है। नारद के ध्रुव के लिए वचन हैं—

"यद्यपि हैं व्यापक सबही थल निराकार अविकारे हैं।
भक्तन के हित–, प्रगट मधुवन में रूप सम्हारे हैं।
श्याम बरन अभिराम चतुर्भुज कोटि काम छवि वारे हैं।
पीत बसन तन–, गले बन माल मुकट सिर धारे हैं।
शख, चक्र औ गदा पद्म कर लिये यह नित करो मनन"।

श्री नारायण ॥ (ध्रुव चरित्र— ६)

२८ विनोद (१९२३ई०)-परिहास मूलक रचनाओं का यह प्रथम स्फुट कविताओं का सग्रह है। कवि ने इस काव्य की भूमिका में ही ब्रजभाषा, उर्दू एव खड़ी बोली का प्रश्न उठाया है। अन्त में उन्होंने अपनी विचार धारा से तीनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उचित ठहराया है।

रुपये हजारों हा ! खिलाते क्यो हरामियो को
'वचनेश,, क्यों में जमींदारी गिरों करते।
मचडाये घूमते क्यों गावें में भिखारी सम।
द्वार द्वार जाके क्यो किसी के पैर परते।
पक्ष लेगी कांग्रेस अछूतो का जो जानते तो।
राजा रामसिंह से रमैया नाम धरते।
डरते समाज से न कौंसिलो फसल भर
बूट गाँठा करते हमो पै वोट परते।
(विनोद—मेम्बरी के भुक्खड पृष्ट २१)

२९ श्री शिव सुमरनी (१९२४ ई०) शिव भक्ति सम्बन्धी रचनायें इसमें सम्मिलित हैं। कवि वचनेश ने घनाक्षरी, प्रभाती, दादरा, रेखता एव गजल आदि में यह स्तुतियां लिखी हैं।

मातु कहै यह मेरो तनय तिरिया कह मेरो है प्राण बसेरो।
पूत कहै उत मेरो पिता औ पिता कह अश मो आतमा केरो॥
औरहु बात औ गोत जिते वचनेश कहैं सब मेरोइ मेरो।
सौंपु शरीर य शंकर को बस या झगडा को यह निबटेरो॥

३० खून की होली (१९२५ ई०) इस नाटक का कथानक कालाकांकर के राज-वश से सम्बन्धित है। कालाकांकर का राज्य भी विसेन वश से है। विसेनों के मुख्य स्थान मझौली में श्रीराय उपाधिकारी महाराजो का राज्य था। उसी वश परम्परा के लोगों का मानिकपुर पर अधिकार था। इसी वश में बहादुरशाह और कल्यान साह थे। बहादुरसाह एव कल्यान साह ने रायहरिवशराय को आधा राज्य दे देने के लिए प्रार्थना की। इस प्रार्थना का कोई भी फल नहीं निकला। राजपूत रक्त था। दोनो दलो में सघर्ष हो गया। दोनों दलो के प्रमुख वीर और राज्याधिकारी मारे गये। केवल श्यामसिंह उदयसिंह शेष रह जाते हैं कुवर श्यामसिंह राज्याधिकारी होते हैं और उदयसिंह उनके सहायक होते हैं। इन्हीं कुवर श्यामसिंह की वश परम्परा कालाकांकर का राज–वश है।

इस नाटक में राय राया हरवशराय, युवराज जयसिंह, कुवर उदयसिंह एव युवराज श्यामसिंह आदि की प्रशसा में जो कवित्त और राजलक्ष्मी के द्वारा युद्ध वर्णन के जो छन्द लिये गये हैं वे तत्कालीन कवियों के बनाये हुये हैं। शेष रूपक, अन्य छन्द एव गाने आदि स्वय कवि वचनेश द्वारा रचित है।

छोटी २ रचनाओं को छोड़ कर शेष सभी रचनायें हनुमत् प्रेस कालाकांकर से ही प्रकाशित हुई।

उपर्युक्त सम्पूर्ण कृतियों के परिचय से कवि बचनेश जी की काव्य प्रवृत्तियों को भी सरलता से अध्ययन किया जा सकता है। उनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति वस्तुतः भक्ति भावना की ओर है। इसी से उनके आधे से अधिक काव्य में आध्यात्मिकता का दृष्टि कोण छितराया मिलेगा। हास्य एवं शृंगार का भी उनके काव्य में अच्छा समन्वय है। व्रज भाषा की स्वाभाविक सरल माधुरी उनको विशेष प्रिय है।

'खून की होली' रूपक में बचनेश जी ने स्वयं अपने सम्बन्ध में कहा है।

> शिशुपन ते कविता करी, बिनु गुर बिनु उपदेश।
> नृप रमेश मन भावतो, सहज सुकवि बचनेश॥

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि बचनेशजी में कविका स्वरू ही विशेष सम्मानीय है। उनके रूपकों की रचना इत महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने निबन्ध भी लिखे हैं जिनका प्रकाशन 'हिन्दोस्थान' (काला कांकर) में होता रहा है। उन्होंने कालाकांकर राज्य में रहकर 'हिन्दुस्थान' 'सम्राट' एवं 'दरिद्रनारायण' का भी सफल सम्पादन किया है।

प्रारंभ से उन्होंने व्रजभाषा काव्य की ही रच की है और आज भी उसी भाषा में रचना करते हिन्दी काव्य को आभारी किये हुए हैं, फिर भी उन्होंने स रचना खड़ी बोली में भी की है। लगभग अस्सी वर्ष के हो हुए भी उनमें किसी भी युवक की अपेक्षा अधिक उत्साह ए विश्वास है। इस से आज भी वह साहित्य सर्जना में प्र है। वस्तुतः वह हमारे जनपद के गौरव हैं भारती जननी कामना है कि वह दीर्घजीवी हों और अपनी साहि सेवा से हिंदी को आभारी किये रहें।

उसी पूत भावना से प्रेरित प्रस्तुत शबरी काव्य की रचना 'वचनेश' जी की भावपूर्ण कृति है। काव्य की पृष्ठ भूमि भक्ति मूर्ति शबरी का चरित्र निस्सन्देह बड़ा आकर्षक और पूर्ण है। रामायण महाकाव्य में वह भक्त की सजीव प्रतीक है। भगवान राम ने उसका आतिथ्य स्वीकार कर अपने हृदय की विशालता और उदारता का परिचय दिया है। बड़े बड़े ऋषि और साधक राम के दर्शनों के लिये अकुला रहे जीवन में भटके! यातनायें सहीं! किन्तु दर्शन न हुये और न उनसे भेंट हो सकी। धन्य रही भीलनी शबरी जिसने अपने सरल व्यवहारिक पवित्रात्मा एवं विशुद्ध निष्ठा से परमात्मा को अपना बनाया। जूठे बेरों से आतिथ्य! वह भी जगत के स्वामी को साधारण बात नहीं। शबरी की भक्ति और प्रेम के समक्ष इनका जो मूल्य हो सकता था राम ने वैसा ही आचरण किया। संसार ने आश्चर्य किया' करे! राम हृदय-पारखी थे। शबरी उसमें खरी उतरी। संसार के लिये वह अछूत थी तथा कर्म और साधना विहीन थी तथापि राम की परीक्षा में उत्तीर्ण थी इससे वह 'राम की थी'। 'हरि को भजै सो हरि का होई' भावना ने शबरी को सर्वोपरि प्रमाणित किया था।

'सत' 'चित' और 'आनन्द' त्रिगुणात्मक तत्वों से ही भगवान का स्वरूप निर्मित है। इन्हीं के समन्वय से भगवान का स्वरूप पुष्ट होकर प्रदर्शित रहता है। उपर्युक्त स्वरूप से पुष्ट भगवान की प्राप्ति भी कर्म ज्ञान और भक्ति पर ही आधारित है। यही वे सीढ़ियां हैं जिनसे होकर सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान तक पहुँच सकते हैं। कर्म *और ज्ञान का अस्तित्व वस्तुतः दैहिक एवं मानसिक* साधनाओं पर अवलम्बित है। इन साधनाओं का साफल्य भी साधक को आनन्दोन्मुख ही करता है। यों ये निष्फल और निष्प्रयोग नहीं हैं इनकी भी महत्ता है। इनसे मानसिक वृत्तियों के निर्माण एवं सुधार में आशातीत सहायता मिलती है। इसीसे तपस्वी और साधक इनको अपनाकर ब्रह्मानन्द का रसोपभोग करते हैं। इसके विपरीत वे व्यक्ति जिनके मानस में प्रेम और भक्ति का सरोवर लहराता रहता है। उन्हें कर्म और ज्ञान का सचय आवश्यक नहीं। वे इनके बिना भी सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान को प्राप्त करने के लिये सुसज्जित हैं। वे हरि के हैं और हरि उनके हैं। इस स्थल पर आकर ही जीवात्मा परमात्मतत्व को प्राप्त करलेती है। फिर भगवान और ऐसे अप्रतिभ भक्त में अन्तर का तत्व कहाँ! भक्त भगवानमय है और भगवान भक्तमय है।

उपर्युक्त भावना के अनुकूल ही शबरी विशुद्ध भक्ति और पवित्र प्रेम से युक्त थी। इसीसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक ने उसे अपना अभिन्न भक्त समझकर आतिथ्य ग्रहण किया। इस आतिथ्य में शबरी ही कृतकृत्य नहीं हुई राम भी हुये। जिस शबरी ने अपनी भावना से युग के महत्तम अवतारी को मोह लिया हो उसका चरित्र किसी भी भावुक कवि के काव्य का विषय हो सकता है। इस स्थल पर यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वचनेश जैसे कुशल कवि को प्राप्त कर यदि शबरी धन्य है तो शबरी जैसी भगवान की आराधिका को प्राप्त कर भावुक वचनेश भी धन्य हैं।

जीवन में अल्हड़ और अबोध वनकामिनी भीलनी शबरी वन के विशुद्ध वातावरण में अंकुरित हुई। वह कृत्रिम वातावरण ही उसका गुरु और हरित भरित वन ही उसके विद्यालय का उन्मुक्त क्षेत्र था। अपने जीवन सहचर हिरणियों, चकोरों और पपीहों के साथ ही तो वह अठखेलियां करती थी। वन्य पुष्प उसको मुस्काना सिखाते थे तो ओस के कण आंसू बहाने के अमर पाठ को और इंगित करते थे। क्रमशः अनुभूतियों की कक्षाओं में प्रविष्ट होती जारही थी विश्व सत्य को परिलक्षित कर उसके नियामक के सम्बन्ध में एक जिज्ञासा हुई। यह वह प्रश्न था जिसने विश्व के जिज्ञासुओं को भरमाया था। स्वयं शबरी भी उसमें भरम गई। जिज्ञासा का रहस्यात्मक अर्थ प्रारम्भ होचुका था उसकी इति कैसे मिले यह समस्या थी। 'निज नान्हरे होय विचारयो करै। भोली भाली शबरी के लिये साधन हो गया था।

नभ देखि सो श्यामल मानि लियो।
छवि भानु प्रभाहिं प्रमानि लियो।।

ऊन, अछूत, कुजाति, विजाति
सुजाति बनी का पतङ्ग गड़ाये !
देखति न कोउ आवत जात।
विमोह को लोलन नैन मड़ाए।
प्राकृत मन्दपनो अपनो नहि
सोचति, स्वर्ग लौं चित्त चढ़ाये
धूरि लौं धूरि न चदन होय
उतग मतग कै मूड़ चढ़ाये ।

बेचारी का दोष था तो इतना ही कि अपना द्वार स्वच्छ करने के समय हरि-प्रेम में वह ऐसी छकी थी कि एक मुनि को न देख सकी और एक तिनका उनके ऊपर पड़ गया। एक तिनका के पड़ने से घाव तो हो गया न था; किन्तु उस बेचारी के लिये सहनशीलता का द्वार भी बद था। अपराध के आपत्तिजनक न होते हुए भी उसका अछूत होना ही किस अपराध से कम था। बेचारे मतङ्ग को भी उसे सर चढ़ाने की फबती सहन करनी पड़ी। श्लेष का सौन्दर्य भी उनको मुनि के वचन-बाण से मुक्त न रख सका। शबरी का अपराध हो या इससे

सहमी सबरी सिर नाय खरी,
भरी अँखियाँ, अँसुआ टपकै ।
जबहीं मांगै छिमा नत ह्वै,
तबहीं मुनि लै लकुटी लपकैं।

यह छूत का भूत मुनि के पीछे इस प्रकार का लगा कि स्नान करने के कारण पपा सर तक खारी होगया। मतग मुनि का आश्रम इस छूत की चर्चा से पवित्र होगया इसका लाभ भी मतग और शबरी ही उठा सके।

मुख सो हरि-ध्यान करै सबरी,
मुनि की चिरकाल समाधि घटी ।
नित साँझ सबेरे प्रभा नभ-ब्याज,
हँसै वह सावरो पीतपटी ॥

मुनि और शबरी का जीवन अपने प्रियतम की झाकी देखता हुआ आनद से कट रहा था। शबरी राम-रस से छकी हो रै और मुनि के दुलार भरे आश्रम के कारण जीवन में निश्चिन्त थी, परतु क्रूर काल उसकी परीक्षा लेने के लिये अग्रसर हो हुआ। मुनि ने जीवन-समाप्ति को अनुभव कर उसका इंगित-मात्र शबरी से किया। वह सक पका गई। जीवन का सम्बन्ध आज जिसका जा रहा था कितनी विवश थी; किन्तु जीवन का अमर सत्य कब टल सकता था? अब मुनि का आशीर्वाद ही उसका सर्बस्व था। जिसपर उसके जीवन की आधार-शिला आश्रित थी-

मुनीश कह्यो—'न स्यया कछ सोच,
भए दिन पूरन देह नसैहे।
बनी रहु आश्रम आयसु मानि,
अवश्य सुना तो तेरी बनि जैहे ॥
ललै अवलोकन को नित जाहि,
धरे तपसी-वपु -या बन ऐहे ।
अछूत जहान की छूति सों छूति,
सु राम तेरे घर पाहुन ह्वैहे ॥

मुनि के निधनोपरात यदि कोई आशा अवशिष्ट भी थी तो वह राम मिलन की ही थी। यह आशा ही उसे सचेतन और सप्राण किये थे। इस उद्देश्य के साथ ही वह अपने जीवन के अस्तित्व को सोचा करती थी।

रामहि ना मिलिहैं मोहि तो
जनमी जग क्यो, तन को कह ह्वै है।
जातना ही नित भोगिबो तो
यह पातकी जीवन को कह ह्वै है।
ह्वै है नही अपने मन की
यहै होनी तौ, या मन को का ह्वै है।
एसेहि बैस बिनाइबे तो
इन बैस, धरी छन को कह ह्वै है।

अपने देवता से भेंट न हो जीवन की साध यों ही अकुरित होकर मुर्झा जावे। इससे अधिक जीवन का निष्प्रयोजन क्या ? पलासन में आग लगी, अनुभव कर अपने निसार जीवन से मुक्त होने में ही वह अपनी निष्कृति समझती है। उसका विरही-माद उसे पगलाये है। उसके जीवन का उद्देश्य क्या यों ही भटक जावेगा। अभी उसके समक्ष मुनि के आशीर्वाद से अभिसिचित उसकी आशा-लतिका हरित-भरित है।

फिर साहस मारा कठिनता से ये शब्द निकल सके।

'प्रभु हौं पतिता पग की रज लौं
कह भाखौं करी करुना तुम गाढ़ी'

बेचारी अधिक न कह सकी तो क्या राम तो हृदय पारखी हैं उन्होंने शबरी को भली प्रकार समझ लिया। शबरी को भी राम का लोक मिला—

तजि के सब भोग—विलासन
राम की राह गही शबरी।
'शबरी-गृह राम बिराम लियो।'

जब मुनियों को ज्ञात हुआ तब बड़े आश्चर्य चकित होकर रह गये। सोचने लगे आज मर्यादा पुरुषोत्तम की मर्यादा कहां चली गई। जब झूठे बेरों के आतिथ्य का वृत सुना तो किं कर्तव्य बिमूढ़ होकर रह गये —

चकराय कोउ मुंह बाय रहे,
कोउ दाँतन जीभ दबाय रहे।
कोउ लाल ह्वै गाल फुलाय रहे,
कोउ थूथन सो लटकाय रहे।
कोउ नैनन सैन चलाय रहे,
कोउ सोचन सीस नवाय रहे।
कोउ हाथ दै माथ सकाय रहे,
लखि भीलनि के हरि खाय रहे।

मुनियों ने राम के इस रहस्य के सम्बन्ध में पूछा। राम ने अपने हृदय की पवित्र भावना को उनके समक्ष व्यक्त किया।

प्रेमहि पावनकारो सदा,
सु बसै मम भक्तन के सत भायन।
भावित ह्वै तिन भायन सों,
सुविकारिनि सकिल लहौ इन पायन।
राम कहौ मुनि-मन्डली तें,
तजि मान बनो सब प्रेम परायन।
आपने प्रेम तरी मुनि-नारि,
न पायन में कछु मेरे रसायन।

इतना ही नहीं जिस पंपा-सर का जल राम के चरणों से पवित्र नहीं हुआ शबरी के स्नान से ही वह पवित्र होगया। इस प्रकार राम ने भगवान से भक्त बड़ा है प्रमाणित कर दिया।

शबरी को वही सद्गति प्राप्त हुई जो संसार में भगवान के किसी बड़े से बड़े भक्त को मिलती है। वह अछूत थी तो क्या? साधना—विहीन थी तो क्या? अब उसकी प्रेम की सरसी छलकी ही पड़ती थी तब राम उस में अवगाहन न करते तो कहाँ करते। रूढ़ियों के परम्परा पालन में कृत्रिमता और आडम्बर का प्रविष्ट होजाना स्वाभाविक है; किन्तु भीतर से वे कितनी खोखली और निरर्थक हैं। इसे स्वयं रूढ़िवादी भी समझते हैं; किन्तु अपनी ठसक और सम्मान के लिये हठवादिता का आश्रय लिये रह करते है जो वे हैं नहीं। इसी से उनका अहंकार का ढूह यथार्थ के एक झोंके के समक्ष ढह जाता है।

शबरी भई आई—गई, 'बचनेश'
न फेर कबौं भव में अब आइ है।
पथ प्रेम को ऐसो चलाय गई,
दृगमूद चलै सोउ प्रीतम पाइ है।
बनचारिन ह्वै जो दिखाय गई,
जुग पै जुग जाय न गाय सिराइ है।
जब लौं रहै राम को नाम बन्यो,
तब लौं सबरीहु को नाम न जाइ है।

शबरी निर्वाण को प्राप्त हुई। सदैव को राम लोक में पहुंच गई। इस प्रकार उसने केवल प्रेम के आग्रह से जीवन के उस महामहिम को प्राप्त कर लिया जिसके लिये साधु भी निरन्तर तरसा करते हैं। वस्तुतः भावुक भावनाओं से ओत प्रोत शबरी का चरित्र गेय है और वरेण्य है। उसके व्यक्तित्व से अछूत-वर्ग ही धन्य न हुआ, संसार ही कृतकृत्य न हुआ, किन्तु त्रिलोकेश्वर तक अपनी प्रेम की भूख को मिटाकर उसी के होकर रह गये। उसका चरित्र वस्तुतः कितना महत्तम है। वह नारी-समाज की गर्व है और भक्त वर्ग में शिरोमणि है। 'शबरी, की कोमल सृष्टि से 'बचनेश, ने केवल हिन्दी को ही आभारी नहीं

वचनेश परिहास

नत-सा शृङ्गार है उभाड़ के पतनकारी
करुण पनाली-सा पतन में प्रधान है।
अद्भुत चका के चित्त घुमनी-सा शून्य कर,
भीम में जड़त्व रौद्र शोषक कृशान है।
त्यों बीभत्स है विशूचिका-सी हानिकारी पर,
'वचनेश' वीर हास्य दो ही में उठान है।
शान्त है संजीवन सकल दोषहारी शुभ,
देखो निज अङ्ग अनुभव ही प्रमाण है।

उपर्युक्त घनाक्षरी में स्वयं कवि 'वचनेश' ने सभी रसों के गुण-दोषों का कथन कर 'वीर' और 'हास्य' रसों की महत्ता प्रमाणित करदी है। 'वीर' रस हमारे अङ्गो-प्रत्यङ्गों में स्फूर्ति एवं उत्साह भरकर हमारे जीवन का सचालन करता है। फलस्वरूप यह रस विकासोन्मुख है। 'वीर' रस के समान ही हास्य रस की भी महत्ता है। हम स्वास्थ्य लाभ के साथ साथ परमानन्द के रसास्वादन का भी अनुभव करते हैं। इसी से वीर रस के साथ हास्य रस का भी काव्य में प्रमुख स्थान है।

कवि जीवन के साथ साथ अपने अध्ययन एवं मननशीलता के कारण अलङ्कार, रस एवं छन्दों आदि के सम्बन्ध में कवि वचनेश ने नवीन प्रयोग किए हैं, जिससे उन्हें आचार्य-पद मिला है कहने का तात्पर्य यह है कि काव्य के सभी अङ्गों के सम्बन्ध में उनकी निजी अनुभूतियां भी हैं। यूं तो सभी रसों में उन्होंने सफल काव्य का सृजन किया है; किन्तु हास्य के द्वारा वह किसी आधुनिक कवि से कहीं अधिक स्वस्थ और शिष्ट काव्य प्रदान कर सके हैं।

हास्य के सम्बन्ध में संस्कृत-आचार्यों के क्या दृष्टिकोण हैं, यह विचार करना भी यहां अनुचित न होगा। पीयूषवर्षी अभिनव जयदेव ने अपने चन्द्रलोक के षष्ठ मयूख में हास्य रस का निम्न स्वरूप वर्णित किया है—

हास स्थायी रसो हास्यो विभावार्थैर्यथा क्रमम्।
वैरूप्य फुल्लगण्डत्वावहित्थाद्यैः समन्वित.॥

साहित्य-दर्पणकार ने हास्य के छः भेद किए हैं—

ज्येष्ठाना स्मितहसिते मध्याना विहसितावहसिते च।
नीचानामपहसित तथातिहसित तदेष षड् भेद:॥

अभिनव जयदेव की स्थायी भाव एवं विभाव की योजना से आचार्य वचनेश भी सहमत हैं; किन्तु अनुभव की बात के वह विरोधी हैं। उनका विरोध निम्नांश से पूर्ण व्यक्त हो जाता है—

'विकृत वस्तु (जन आकार, स्वभाव, दोष इत्यादि) विभाव और उसे देख सुनकर हंसी आना अनुभाव है। इनमें से केवल विभाव का वर्णन वाञ्छनीय है। यदि साथ ही में हँसी अनुभाव का भी वर्णन कर दिया जावे तो रस परिपाक बिगड जाता है। इसलिए हँसने का काम श्रोता या दृष्टा के लिए छोड दिया जाता है। कारण यह है कि और रसों में उनके भावों का भोक्ता जब कभी साथ में रहता है तभी उस पर हुए अनुभाव भी वर्णित होते हैं, इसमें भोक्ता वर्णन से पृथक श्रोता या दृष्टा होता है और उसी पर अनुभाव 'हँसी' सँघटित होता है।

'फुल्लगण्डत्व' (गालफुलाना) आदि को अभिनव जयदेव अनुभाव बतलाते हैं। यदि उसे आश्रय (नायक) पक्ष में लेते हैं तो निसन्देह हास्य में कृत्रिमता आजावेगी- इसमें सन्देह नहीं। फलस्वरूप अनुभाव की भावना त्याज्य ही है और इस भावना में वचनेश जी का दृष्टिकोण न्याय

भाषा भेष भूषा वही भाव परतंत्रता के
 ग्राज भी वही है ध्वनि साहब सलामी की ।
घूस मूस दूसरे का मुंह ताकना है वही
 लड़ना भगड़ना न लाज बदनामी की ।
यारू ने दई है प्राण दान का कलेश सह
 'बचनेश' पदवी प्रजा को देश स्वामी की ।
भ्रकने हैं जौहर जवाहर दिखा दिखा के
 छोड़ते नहीं हैं लोग ग्रादत गुलामी की ।

राष्ट्र के स्वतंत्र होजाने पर देशवासी यदि परम्परा के स्वभावों और परिपाटियों का परित्याग करदें तो देश का कल्याण हो सकता है। यहां गुलामी से उत्पन्न दुर्बलताओं से कवि ने हास्य को उद्दीप्त किया है।

उपर्युक्त के समान ही देश की वर्तमान स्थिति से कवि ने स्वयमेव 'राम राज्य, बन जाने की बात कही है-

ग्रन्न नहीं पावेंगे तो ग्राप ही रहेंगे व्रत
 वस्त्र नहीं पावेंगे तो साधुता निभावेंगे ।
नारियों के देने से तलाक तज नारी प्रेम
 'बचनेश' लोग ब्रह्मचारी बन जावेंगे ।
दुःख यदि पावेंगे तो हरि को भजेंगे सब
 जात पात छूटे राम रूप में समावेंगे ।
हम राष्ट्र राना राम राज्य बहुराना हमें
 सबरी प्रजा को धरमातमा बनावेंगे ॥

स्वामी करपात्री द्वारा जिस रामराज के निर्माण का ग्रान्दोलन देश के समक्ष चल रहा है कवि बचनेश उस सकीर्ण सम्प्रदायिक दृष्टिकोण में अपने को ग्राबद्ध नहीं रखना चहते हैं। उससे परे उदार और विशद दृष्टि कोण लेकर देश को ग्राध्यात्मिक क्षेत्र का रामराज बना देना चाहते हैं। ग्रन्न के ग्रभाव में व्रत, वस्त्र के ग्रभाव में साधुता, नारी सभा को तलाक प्रथा से नारी-प्रेम का परित्याग और ब्रह्मचारी बनने की सुविधा, दुःख एवं कष्ट की दशा में सबका 'राम राम' स्मरण और जाति पांति का परित्याग स्वाभाविक होजावेगा ग्रादि २ उपर्युक्त परिस्थितियों से 'राम राज' का निर्माण स्वाभाविक है।

परिहास के लिए सामाजिक विषयों की सख्या ग्रन्य विषयों की ग्रपेक्षा बहुत बड़ी है। नये फैशन, नारी की समानता की समस्या, कवि बनने का उन्माद ग्रदालत, घूस, कन्ट्रोल, काव्य कुञ्ज समाज, तम्बाखू, गया,पान तमाखू भगड़ा, विश्व स्वामी को इस्तीफा तथा ग्रन्य सामाजिक विचारों को लेकर बचनेश जी ने हास्य सामिग्री प्रस्तुत की है। कृत्रिम बाबुग्रों के ग्राडम्बर को देखिये—

कन्ठ बंड मेरे सिखलादे गिट पिट ऐसी
 बिना पास लोक ग्रेजुएट नाम धरदे ।
रोब दे कि जाऊँ जिस होटल में कुक एक
 प्लेट ग्रामलेट दे उधार जाम भरदे ।
बचनेश लेश परवा न धर देश की है
 योग ग्रंगरेजी वेश फैशन का करदे ।
वरदे! प्रसन्न है तो इतना ही वर दे कि
 साहब समझ कोई मेम हमें वरदे ॥

प्रचलित शृंगार की ग्राज सज्जा का प्रभाव भी देखने योग्य है—

पौडर लगाये ग्रङ्ग गालों पर पिंक किये
 कठिन परखना है गोरी है कि काली है ।
क्रीम को चुपर चमकाये चेहरे हैं चारू
 कौन जान पाये ग्रवयसी हैं कि बाली हैं ।
बातों में सप्रेम धन्यवाद किंतु ग्रन्तर का
 क्या पता है शील से भरी या कि खाली है ।
'बचनेश' इनको बनाना घरवाली यार
 सोच के समझ के ये टेढ़ी मांगवाली हैं ।

'मांगवाली' में श्लेष शब्द का प्रयोग सुन्दर बन पड़ा है। टेढ़ी मांग रखने का स्वभाव एवं विविध प्रकार के पदार्थों की मांग करने वाली—दोनो स्वरूप ही भारतीय नारी को मर्यादा का ग्रतिक्रमण करते हैं। इसी से कवि इस विषय को ग्रपने हास्य का विषय बना सका है।

जाने कितनी न साठ सालें गई बीत तो भी,
अच्छे आप साहब हैं पेन्शन नहीं देते हैं।

एक जिन्दगी में मजा लाखों जिन्दगी का लिया,
खूब छक चुके हैं इस्तीफा, अब लीजिये।
जान अनजान में कसूर जो हुआ हो उसे,
तावेदार जान के हुजूर माफ कीजिये।
ताव नहीं तन में जवाब दे गया है बल,
देना नहीं पेन्शन तो जाने दें, न खीजिये।
'वचनेश' सिर्फ बरखास्त है हमारी यही,
इस नौकरी से बरखास्त कर दीजिये॥

इस प्रकार के इस्तीफा में कितनी सरसता है। जीवन की बाजी को पूरा क[र] आज शान्त होजाना चाहता है।

कवि वचनेश के परिहास विषय का की भावधारा का अध्ययन कर हम निस्सन्देह कह हैं कि उन्होंने सर्दव शिष्ट हास्य प्रदान क[र]ने की चेष्टा की। दीर्घायु के अनुभवों से युक्त कवि से वस्तुत. ऐसी आशा भी थी। अवशिष्ट जीवन में वह इसी प्रकार का हास्य- सृजित करते रहें ईश्वर से हमारी यही कामन[ा]

निराला जी की सम्मति

मैंने श्री वचनेश जी की 'शबरी' रचना पढ़ी। मुझे उसमें आद्यन्त काव्य का सरस प्रवाह मिला। वचनेश जी वास्तव में कवि हैं। मैं उनकी रचनाओं से पहले भी प्रभावित हो चुका हूँ। कवित्व में उनका हास्य, चुटकियाँ हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं.—जूड़ी में छायावाद जो उन्होंने दर्शाया है, वह मुझे बड़ा सरस और सुन्दर मालूम दिया। वह इस प्रकार है।

चढ़ आई जूड़ी, 'कट कट' बोले दाँत, वाणी,
अगति, अतुक लगी छन्द—से सिरजने।
जोर विषमज्वर है, आँखों की विषम गति,
छाया लगी काया सी अनूप रूप सजने।
'वचनेश' बन गया आज मैं निराला कवि,
उड़ के अनत को लगा है मन भजने।
खाई भी कुनैन, मची कानों बीच 'झनझन',
जान पड़ता है हृत्तन्त्री लगी बजने।

हास्य के प्रौढ़ कवि ने 'शबरी' को भक्ति में भी गहन बना दिया है; पढ़कर हृदय लोकोत्तरानन्द में मज्जित हो जाता है। ऐसी विशुद्ध भाव-प्रधान रचनाएँ कम देखने को मिलती हैं।

अलङ्कारों का निरूपण प्राय: 'काव्यादर्श', 'काव्य प्रकाश' 'साहित्यदर्पण' और उससे भी अधिक 'चन्द्रालोक' एवं कुवलयानन्द' के आधार पर किया गया है। ध्वनि सिद्धांत का प्रभाव हिन्दी रीति शास्त्र पर व्यापक रीति से पड़ा है। रीति काल के अनेक आचार्यों जैसे कुलपति, देवसूरति, कुमार मणि, श्री पति, सोमनाथ, भिखारीदास, प्रताप सिंह, लछिराम आदि ने अपने ग्रंथों में ध्वनि सिद्धांत का सजीव एवं वस्तुत प्रथा से मौलिक वर्णन किया है।

उपर्युक्त संस्कृत काव्य सिद्धांतों एवं ग्रन्थों की पृष्ठ भूमि में हिन्दी रीति शास्त्र का जो निर्माण हुआ है उस से प्राचीन हिन्दी काव्य पूर्ण रूप से प्रभावित है। प्राचीन काल का कथन रीति कालीन काव्य ही नहीं वरन् भक्ति कालीन काव्य भी इससे प्रभावित है। उपरोक्त कथन तुलसी तथा सूर जैसे भक्ति काल के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं से सिद्ध किया जा सकता है। अब रही आधुनिक काव्य की बात, उस सम्बन्धमें इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यद्यपि आधुनिक काव्य प्रत्यक्ष रूपेण उससे प्रभावित नहीं दिखता फिर भी उसमें इन सिद्धान्तों का नितान्त अभाव नहीं है। आचार्य बचनेश जी के रूप में हमें प्राचीन एवं नवीन के बीच की एक कड़ी मिलती है। यह हमारा सौभाग्य है कि वे इस समय हमारे बीच म उपस्थित हैं और इस सम्बन्ध में हम उनके विचारों को भी सरलता पूर्वक प्राप्त कर सकते हैं। एक समय इस सम्बन्ध में बात करते हुये उन्हों ने स्पष्ट कहा कि ये सिद्धान्त तो चिरन्तन हैं इन से किसी काल में भी इनकार नहीं किया जा सकता अब हम इन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में आचार्य बचनेश जी के कुछ मन्तव्यों का निदर्शन करने का प्रयास करेंगे। ध्वनि के सम्बन्ध में आपका स्पष्ट मत है कि बिना व्यङ्ग्य के काव्य में रस का परिपाक ही नहीं होता। इस सम्बन्ध में भी आपके दो पद उल्लेखनीय हैं जो कविता सीखने वालों के लिये गुर का कार्य करेंगे।

काम क्रोध आदि हैं मनोविकार भाव वहु,
थायी थिर व्यभिचारी आते और जाते हैं।
कारण विभाव दो आलम्ब औ उद्दीपन हैं,
एव अनुभाव का जो सात्विक कहाते हैं।
सामग्री यही लेकर भावालङ्कार युक्त,
प्रकृति प्रयुक्त अनुकूल दृश्य गाते हैं।
व्यञ्जना में दस श्रोता चित्तको मग्न कर,
कवि बचनेश देश वेश यश पाते हैं ॥१॥
× × × ×
कवि बचनेश जब भाव का न नाम लेके,
केवल विभाव अनुभाव ही है कहता।
भाव जानने को तब श्रोता चित्त अन्तरमुख,
होके रस आत्मा में स्वरस रस लहता।
लीनता ही अन्तरात्मा में है रसानन्द,
प्राणी जिस हेतु नित्य लालायित रहता।
योग से दुसाध्य अथ भोग से असाध्य वह,
काव्य के प्रयोग से सहज ही उमहता ॥२॥

उपरोक्त पदों द्वारा आचार्य बचनेश जी ने व्यङ्ग्य द्वारा काव्य में रस परिपाक करने का गुर बताया है तथा द्वितीय में रस की महत्ता और उसके संस्थान पर भी एक दार्शनिक दृष्टि निक्षेप किया है। उनका यह निर्देश रस के दार्शनिक स्वरूप की ओर हमें आकृष्ट करता है अतः हम यहा पर दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर ही रस के स्वरूप की कुछ विवेचना करते हुये आचार्य बचनेश जी के मत का, जो उनमें एक भेंट के समय प्राप्त हुआ है, उल्लेख करेंगे।

भारतवर्ष विश्व में दार्शनिकों की भूमि के नाम से विख्यात है। अत यहा पर काव्य की आत्मा रस का पल्लवन भी दार्शनिक आधारभूमि पर ही होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। हम देखेंगे कि मीमांसा, न्याय, सांख्य, शैव तथा वेदान्त दर्शनों ने रस विचार को प्रभावित ही नहीं किया, प्रत्युत उसे एक दिशा भी प्रदान की है।

'रस-सूत्र' के प्रथम व्याख्याकार भट्ट लोल्लट का 'आरोप-वाद' 'मीमांसा' की भूमि पर स्थित है अतएव व्याख्या में उनके द्वारा कथित—"स च रस मुख्यया वृत्त्या रामादावनु कार्यनुकर्तरि च नटे रामादिरूपतानुसन्धान बलात्" वाक्य में प्रयुक्त 'अनुसन्धान' शब्द का विचार करते हुए परवर्ती आलोचकों ने उसका अर्थ 'आरोप' बताया है और सम्पूर्ण पंक्ति का अर्थ इस प्रकार किया है कि "नट में वास्तविक अनुकार्य रामादि का आरोप करके सामाजिक चमत्कृत होता है" इस अर्थ में आए हुए 'आरोप'

बात कहकर (परब्रह्मास्वादविमेन भोगेन परभुज्यते इति) मानों दो विरोधी बातों का आश्रय लिया है। सांख्य में यह स्पष्ट कहा गया है कि व्यक्ति दो पदार्थों में से किसी एक का ही अवलम्ब ग्रहण करता है या तो वह भोग अथवा सुखदुखानुभूति की ओर आकृष्ट होता है अथवा अपवर्ग अर्थात मोक्ष की ओर। अतएव दोनों दो विरोधी स्थितियां हैं। किन्तु भट्ट नायक ने दोनों को स्वीकार करके सम्भवत: यह प्रदर्शित करना चाहा है कि एक ओर तो यह स्थिति वास्तविक सासांरिक सुख-दु:खादि अनुभव सापेक्ष स्थिति से भिन्न है और दूसरी ओर यह साक्षात ब्रह्मास्वाद न होकर उसके सदृश मात्र है।

चौथे व्याख्याता आचार्य अभिनव गुप्त का अभिव्यक्तिवाद 'शैवदर्शन' से प्रभावित है। उन्होंने रस दशा को 'वीतविघ्न प्रतीति' माना है और उसे निर्विघ्न संवित बताया है। इस संवित के अन्य पर्याय के रूप में उन्होंने चमत्कार रस, स्फुरता आदि कई नाम भी रखे हैं। इनमें चमत्कार, का शैवागमों में जो वर्णन किया गया है उसके आधार पर हम उसे विमर्श दशा भी कह सकते हैं। शैव दर्शन में चमत्कार और विमर्श का पर्याय के रूप में प्रयोग किया भी गया है। तात्पर्य यह कि रसानुभूति की दशा विमर्श दशा है। दार्शनिक विचार से विमर्श का तात्पर्य है स्वतंत्र इच्छा। शैवागमों में जिस परम शिव का वर्णन किया गया है उसी की स्वतन्त्र इच्छा के परिणाम स्वरूप रस जगत की अभिव्यक्ति कही गई है। वह परम शिव माया जनित देश काल की बाधा से सर्वथा स्वतन्त्र है। स्वतन्त्र होने ही के कारण यह दशा विघ्न विनिर्मुक्त संविति, रसना चर्वणा, निर्वृति अथवा प्रमातृ-विश्रांति आदि नामों से भी पुकारी गई है, यथा-"तथाहि लोके सकल विघ्नविनिर्मुक्ता संवित्तिरेव चमत्कार निर्वेश रसनास्वादनभोगसमापत्तिलय विश्रांत्यादि शब्दैरभिधीयते।

इसी आधार पर अभिनव ने रस को विघ्नविनिर्मुक्त प्रतीति माना और स्थायी भावों को हमारे हृदय में पूर्व से ही वासना रूप में स्थित स्वीकार किया। जिस प्रकार स्रष्टा परम शिव की इच्छा मात्र से सृष्टि की अभिव्यक्ति होती है उसी प्रकार सहृदय के हृदय में पूर्व से ही स्थायी भाव वासना रूप में अवस्थित हैं। और समय पाकर वही रस रूप में व्यक्त हो जाते हैं। किन्तु जिस प्रकार सदाशिव की इच्छा विघ्नहीन है उसी प्रकार रस की अभिव्यक्ति के लिए भी सहृदय का हृदय अभिनव द्वारा गिनाये गए सात विघ्नों से मुक्त रहना चाहिए। तभी एक प्रकार की विश्रांति का अनुभव होता है।

आगे चलकर पंडित राज जगन्नाथ ने "रस सूत्र" की व्याख्या में वेदान्त का प्रयोग करते हुए 'आवरणभंग' की प्रक्रिया जोड़ दी है। उनके विचार से आवरण भंग हो जाने के अनन्तर ही वृत्ति में स्वप्रकाशरूप आनन्दात्मक चित्त का प्रतिबिम्ब पड़ता है तदनन्तर वह स्थिति आती है जिसमें चित और चैतन्य का भेद प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार वृत्ति चिन्मयी हो जाती है। ऐसा न होने पर विभाव आदि के आधार पर वृत्ति की स्वप्रकाशिता उत्पन्न हो जाने पर भी उसकी आनन्दात्मकता सिद्ध नहीं होती।

वेदान्त में चित्त के प्रतिबिम्ब का ही दूसरा नाम है—आभास। इसी से चित्त का आभास होता है। जिस कारण उसे साक्षिभास्य कहा है। अतएव कहा जा सकता है कि रस चित्त के प्रतिबिम्ब में प्रकाशित होने वाले विभाव अनुभाव एवं संचारी भाव से मिश्रित रति आदि स्थायीभाव के रूप में प्रकट एक चित्तवृत्ति ही है। रस की उत्पत्ति और विनाश के सम्बन्ध में भी उन्होंने विचार करते हुए कहा कि "रस को ध्वनित करने वाले विभावादिकों के अथवा उनके संयोग से उत्पन्न किए हुए अज्ञान रूप आवरण के भंग की उत्पत्ति और विनाश के कारण ही रस की उत्पत्ति और विनाश मान लिए जाते हैं"। रस का सम्बन्ध सविकल्प समाधि से जोड़ने की चेष्टा भी पंडित राज जगन्नाथ ने की है।

इस रसास्वाद के आनन्द का प्रमाण पंडित राज ने श्रुतियों की "रसोवैसः" तथा "रसह्येवायंलब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" पंक्तियों का सहारा लेकर उपस्थित किया। इस प्रकार श्रुति का सहारा लेने से रस के एक होते हुए भी उस की अनेकता प्रतिपादित होगई क्योंकि चिदानन्द के समान

प्रथम सर्वोत्कृष्ट उपाय योग है जो सम्पूर्ण विषय भावों के त्याग करने पर साधक को सदा के लिये आनन्द स्वरूप बना देता है। इससे द्वितीय श्रेणी पर कुछ सरल उपाय उपासना है जो सम्पूर्ण विषय और भावों में भगवान की भावना के द्वारा भक्त को चिर काल के लिये आनन्द में मग्न कर देता है। तृतीय श्रेणी का इन सब से सरल उपाय काव्य है जो कवि और काव्य रसिकों को विषय भावों में लिप्त न करके उन्हीं के वर्णन (वा श्रवण और मनन) के द्वारा उस स्वच्छ रस का अधिक समय तक आस्वादन कराता है। यह अति सरल साधन होने से उस सर्वोच्च परमानन्द तक पहुंचने की इच्छा रखने वालों के लिये प्रथम सोपान है, अतः मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि जहा तक सम्भव हो, सांसारिक झंझटो से चित्त को हटा कर काव्य रस के उपभोग द्वारा उस परम रस का आस्वादन करके अपने जीवन का कृतार्थ करें"।

आचार्य बचनेशजी द्वारा किया हुआ यह उपरोक्त रस निरूपण दार्शनिक होते हुये भी सहज बोध गम्य है। इसकी बोध गम्यता दार्शनिक के साथ ही साथ बचनेशजी को आचार्य के पद पर भी प्रतिष्ठित करती है।

बचनेश जी के आचार्यत्व की एक सबसे बडी विशेषता यह है कि काव्य शास्त्र के गहन एवं दुरूह विषयों की व्याख्या वे इस रीति से करते हैं कि विषय की दुरहता मानो स्वतः सुगमता एवं आनन्द में परिणित हो जाती है। जिस प्रकार कोई आचार्य कहते हैं कि रसों का राजा शृङ्गार है, कोई कहते हैं कि 'एको रसः करुणएव' किन्तु बचनेश जी कहा करते हैं कि रस राज तो वात्सल्य ही है। कारण कि यह सभी रसों पर हावी रहता है। शृङ्गारादि सभी रसों पर अवस्थानुसार अन्यान्य रस भी अधिकार कर बैठते है। किन्तु वात्सल्य पर किसी भी अवस्था में कोई अन्य रस अधिकार नहीं कर सकता। और वात्सल्य ही एक ऐसा रस है जिसके गीत प्रकृति से स्वयं स्फूर्त हुए हैं। न जाने कितने गीत वात्सल्य से अभिभूत माताओं के कोमल हृदयों से छलक पड़े हैं। उनकी जोड़ का साहित्य अन्य रसों में प्राप्त होना दुर्लभ है। वे गीत ससार में लोरी आदि के रूप में इतने अधिक हैं कि अन्य किसी भी रस की कवितायें उतने परिमाण में मिलना दुर्लभ है।

आचार्य बचनेश जी ने 'भारती-भूषण' नाम से एक पुस्तक अलङ्कार शास्त्र पर भी लिखी थी जो किसी समय कालाकांकरसे निकलने वाले हिन्दुस्थान दैनिक पत्र में प्रकाशित हुई थी। इसमें सौ से अधिक अलङ्कारों का वर्णन है। दुर्भाग्य से वह खोज के पश्चात भी प्राप्त न हो सकी। आचार्य जी क एक अन्य महत्वपूर्ण रचना' छन्दोगति' है। आज वर्षों से वे उसके निर्माण में व्यस्त है वह अभी अपूर्ण है, इसका परिचय आगे के स्वतन्त्र लेख में दिया जारहा है। इस प्रकार हम देखते ह कि आचार्य बचनेश जो अपनी प्रखर प्रतिभा के द्वारा हमारे सामने आज काव्य शास्त्रीय सभी विषयों पर एक मौलिक चिन्तन की किरण डाल रहे हैं।
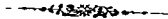
था। नारद और बाल्मीकि का यह सम्वाद काव्य के चिरन्तन सत्य को ही प्रकट नही करता यह यह निर्देश करता है कि छन्द शक्ति का उपयोग किस प्रकार होना चाहिए। आदि कवि ने उस महत्साधन का लोक कल्याण के हेतु जो कुछ उपयोग किया वह तो मानव जगत के लिए एक चिरन्तन निधि है। रामायण में जिन चरित्रों की आकलना हुई है वे सर्व देशीय, सर्वकालीन, एव सर्व जनीन भावनाओं के सजीव चित्र हैं। विश्व मानव की सभी प्रकार की साधनायें सीताराम के रूप में मूर्त हो गई हैं। छन्द शक्ति की इसी व्यापकता तथा महिमा को आचार्य वचनेश जी ने भी भली भांति अनुभव किया तथा 'छन्दोगति' नामक एक ग्रन्थ के प्रणयन में आजकल व्यस्त हैं। यह ग्रन्थ प्रकाशित होने पर छन्द शास्त्र के सम्बन्ध में एक अपूर्व अनुसन्धान होगा। उसका कुछ संक्षिप्त परिचय यहा पर देने का प्रयास किया जा रहा है।

छन्दोगति

आचार्य वचनेश जी ने छन्दोगति के मूलतत्व की खोज का प्रारम्भ स० १६६२ में किया। सिद्धि प्राप्त करने के लिये उन्हे एकान्त वास की आवश्यकता प्रतीत हुई तो वे हरद्वार चले गये। उनका कथन है कि जब वे पर्वत शृंखलाओं के मध्य में किसी निर्जन स्थान में खड़े होकर 'ॐ,ॐ' उच्चारण करते थे तो चारो ओर से जो प्रतिध्वनि होती थी, उसी से इस छन्दोगति का प्रादुर्भाव हुआ है। समस्त सृष्टि का मूल ही छन्दोगति का मूल है। इसका उद्भव नैसर्गिक है। निम्नांकित नियमों तथा सिद्धातो से यह बात भली भांति स्पष्ट होगी कि अभी तक के लिखे गये छन्द शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थो में छन्दोगति सर्वाधिक सहज एव प्रकृति के निकटतम है।

छन्दोगति छन्दों की आभ्यान्तरिक यतियों (विरामों) पर निर्भर है। पिंगलों में केवल छन्द पदों को दो एक माध्यम यतियों का विवेचन पाया जाता है, परन्तु केवल उतनी ही यतियों से छन्द नही बनता, उनके अन्तरगत और भी अनेकानेक सूक्ष्म यतियां रहती हैं जिनके रद्दोबदल से विविध छन्द बनते हैं। छांदिक यतियां शाब्दांशिक यतियों पर ही रक्खी जासकती है, इस लिये सर्व प्रथम शब्दांशिक यतियों का ही ज्ञान आवश्यक है।

'शब्दांश' और उनकी यतियां

यहां 'शब्द' केवल उतने ही मूल रूप को मानना चाहिये जिस में किसी दूसरे शब्द का संयोग न हो; जैसे वचन गृह, रचना आदि। सामासिक शब्द, यदि उसमें स्वर संधि नहीं है, सख्या अनुसार पृथक-पृथक कई शब्द माने जायेंगे, जैसे 'वनगमन' 'प्रतिक्रमण' आदि दो दो शब्द हैं, 'चिदानन्द' 'अनशन' आदि स्वर संधि होने से एक एक शब्द हैं। इसी प्रकार उपसर्ग भी (जैसे प्रति, अनु, उप आदि) स्वतन्त्र शब्द हैं। शब्दान्तर्गत दीर्घ वर्ण सदा द्विकल शब्दांश रहता है पर जहां पर लघुवर्ण एकत्रित होते हैं वहा पर स्वराघात होता है। किसी वर्ण के बाद के वर्ण पर गिरने को स्वराघात कहते हैं। जैसे 'पर' शब्द के उच्चारण में पकार के अकार का रकार पर आघात अथवा 'सकल' शब्द में सकार को छोड़ कर ककार के अकार का लकार पर आघात। यह आघातक और आघातित वर्ण मिल कर गुरुवत द्विकल शब्दांश बन जाते हैं। और आदि में छोडा हुआ जो एक लघु ('सकल' के सकार की भांति) रह जाता है वह एक कल शब्दांश होता है। इन शब्दांशों के बनने का प्राकृत नियम यह है कि जहां पर युक् (जुस्त) सख्या में लघु वर्ण एकत्र पाये जाते हैं वहां पर वे सब द्विकल शब्दांश पाये जाते हैं। और जहाँ पर अयुक (ताक) सख्या में होते है वहां एक लघु वर्ण को आदि में एक कल शब्दांश के रूप में छोड़ कर शेष सब द्विकल शब्दांश बनते हैं। एक और त्रिकल शब्दांश शब्दान्त में गुरु लघु (SI) होने पर दीर्घ स्वर के आघात से बनता है। तीनों शब्दांशों के अन्त में और शब्दांश में सूक्ष्म यतियां रहती हैं। लिखने के सुभीते के लिये इन शब्दांशों की कला, सख्यानुसार आंकिक रूप मान लेना चाहिये। उदाहरणार्थ एक मात्रा से चार मात्रा के शब्दों तक

इस प्रकार त्रिवर्ण-अ उ म से ओम् बनने में आवृत्ति, दीर्घता और योग तीन प्रक्रियायें हुई हैं। इनमें आवृत्ति और दीर्घता किसी भी रूप को द्विगुण करती हैं। आवृत्ति उसे दुहराकर द्विगुण करती है इससे मध्य में यति रहती है और दीर्घता उसको द्विगुणाकार करदेती है। जिससे उसके मध्य में यति नहीं रहती, पर परिमाण (वजन व कला संख्या) में दोनों समान अथवा पर्यायी होते हैं। तीसरी प्रक्रिया योग है जिससे यौगिक साम्यक रूप बनता है। इस बने हुए रूप का अधिकांश पहले और न्यूनांश अन्त में रखना चाहिए। इनके मध्य में यति रहती है। इस प्रकार कोई रूप (यथा ओम) सिद्ध होने के बाद फिर उसमें विपर्यय होता है; जैसे ओम (२ १) से म उ (।ऽ) या म, अ, उ (।,॥)। यह विपर्यय क्या आवृत्ति क्या दीर्घाकार और क्या यौगिक सब रूपों का होता है। परन्तु जिस रूप का विपर्यय होता है विपर्ययी रूप उसकी संख्या में समान होने पर भी पर्यायी नहीं होता बल्कि उसी गति-चक्र के भीतर एक नवीन रूप धारण करता है जिसके आघात में विपर्यय होने से कुछ अंतर हो जाता है। परन्तु त्रिमात्रिक रूप (३) के अन्तरगत उक्त विपर्यय के विकार को न मानकर दोनों को पर्यायी मान लिया है क्योंकि इसमें जो एक मात्रा के अन्तर से यति आती है उसे ठीक कर लेने की विशिष्टता रचना सहन कर लेती है।

जिन प्रकृत नियमों (आवृत्ति, दीर्घता, योग) से सपुवर्ण से त्रिकल तक के रूप बन जाते हैं उन्हीं से ४, ५, ६ कलात्मक रूप बनाकर पूर्वोक्त स्वाभाविक रूपों के साथ एक से छ: कलाओं तक के गण मान लीजिए। यह जाति छन्दों के गण होंगे। गण की परिभाषा यही होनी चाहिए कि छन्द की रचना उनकी अन्तिम यतियों ही पर निर्भर रहे। उनके मध्य में यदि कहीं भी स्वाभाविक यति हो तो उससे छन्दोभंग न हो। यह परिभाषा ५ कलागण में लागू नहीं होती, इसलिए उनके समष्टि रूप को गण न मान कर उनसे यौगिक विशिष्ट रूप पृथक पृथक गण माने गये हैं। अस्तु पचकल समष्टिरूप में कोई गण नहीं है। प्रत्येक गण के नाम सत्वर वर्ण रख दिए गये हैं जिनको गणानुसार एकत्र करके छंद की गति का सांकेतिक नाम बना लेना चाहिये। नाम रखने में यदि कोई हलन्त वर्ण आ जायगा तो वह कोई गण सूचक न होगा।

नीचे गणों के आंकिक रूप, वर्ण, आंतरिक यतियों के उत्पन्न भेद, प्रक्रिया और उदाहरण साथ दिये जाते हैं।

ब्रेकिट के भीतर के रूपों को परस्पर पर्यायी मानिए।

आंकिक रूप और वर्ण	प्रक्रिया	आंतरिक रूप वर्ण	उदाहरण
१ — स्वर	स्वयम् सिद्ध	१	। — अ
२ = अ, ध, स,	{ १ का आवृत { १ का दीर्घाकार	२ "	॥ = हर। वर। विभु। प्रभु ऽ = श्री
३ ए, न —	२ और १ का योग	२१ क, ख,	ऽ। — राम। श्याम। धीश। ईश। (इसे पद्यकार दीर्घ वर्ण के मध्य में यति करके १२ (।,॥) भी कह लेते हैं। यथा, राम को र, अ म।)
	योग का विपर्यय	१२ ग घ	अचल। अमल। सदय। सखा। (इसे पद्यकार २१ के अन्तर्गत अन्तिम द्विकल के मध्य में यति करके २१ (॥,।) भी कह लेते हैं। यथा, अचल को अच,ल।)

किसी भी छन्द पाद की गति रचना को अभ्यस्त करने के लिए उसके अनुकूल गणों के उदाहरणों में दिये हुए ईश्वर नामो या इन दो तीन आदि पाठ्य रूपों को एकत्र कर वार वार जपना चाहिए।

इन जातिगणों की आवृत्ति, दीर्घता और योग से मूल पाद बनते हैं। इन्ही मूल पादो के छन्दों (जैसे सप्तमात्रिक में ४, ३ या अष्टमात्रिक ४, ४ आदि) के अनुसार ही संगीत की तालों की रचना भी हुई है अर्थात् उक्त प्रक्रिया की आवृत के अनुसार उनकी आवृत और दीर्घता के अनुसार द्रुति से विलम्बित रूप बनते हैं, एवम् विपर्यय से तालो के उठान बदलते हैं।

मूल पादों को दो तीन चार आवृत्तियों से, दीर्घता से और दीर्घाकार की आवृत्तियों से अनेक छन्द बनते हैं। प्रत्येक छन्द पाद के अन्त से एक एक मात्रा लेकर आदि में जोड़ने से उसी गति के और भी विभिन्न छन्द बन जाते हैं। सब गतियों की आवृति और एकादि विपर्यय से जो छन्द बनते हैं वे पूर्ण छन्द हैं अर्थात् उनके पढ़ते व गाते समय एक मात्राकाल तक भी पादांत में या कहीं पर रुकने का अवकाश नही है। इन्ही पूर्ण छन्दो के अन्तिम शब्दांशो को न्यून करके अपूर्ण छन्द पाद बनते हैं जिनके गाते समय पादांत में उतनी मात्राओं तक रुक कर या अन्तिम स्वर को बढ़ाकर पाद पूर्ति करनी पड़ती है। वस्तुत: यह मात्रा त्रुटि गाने में सुनने वालो को रोचक और गाने वालों को सांस लेने का अवकाश पाने से सुखकर ज्ञात होती है। इन अपूर्ण छन्दो के लाक्षणिक नाम भी रख लेना चाहिए इस न्यूनी करण प्रक्रिया में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। पादांत की उतनी ही मात्राओं या शब्दांशों को न्यून करें जितने से गति का ठाठ न बिगड़े। इस प्रकार किसी द्राबृत का लगभग डेढ़ अंश तो रह ही जाना चाहिए और अन्तिम स्वर खींचने की अपनी शक्ति भी होनी चाहिए।

शब्दांशिक और वृत्त छन्द

जाति छन्द के अन्तरगत प्रति शब्दांश के स्थान नियमन पूर्वक शब्दांशिक छन्द बनते हैं। इसलिए जाति छन्द के तीन चौकल आदि गणों के अन्तरगत जो शब्दांशिक यतियाँ आती हैं, शब्दांशिक छन्दो में वे ही छान्दिक यतियाँ मानी जाती हैं। इस प्रकार एक शब्दांशिक पाद में जिस क्रम से शब्दांश आवेंगे ठीक उसी क्रम से दूसरे पाद में भी रहेंगे। एक एक जाति छन्द में कई कई शब्दांशिक छन्द होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जाति छन्दों के शब्दांशिक रूप बनेंगे। एक जाति गति के जितने शब्दांशिक रूप बने हैं वे अलग अलग छन्द होंगे। और परस्पर मिल कर उस जाति गति के द्राबृत रूप के अन्तर्गत सब प्रथक २ रूप होंगे। जैसे (८८) के अन्तर्गत पांच शब्दांशिक छन्द बने हैं। उसके द्राबृत रूप (४४४४) यह पांचो मिलकर पचीस(५ × ५)छन्द होंगे। इसी प्रकार प्रत्येक गति की आवृति और विपर्यय से और पादांत के न्यूनीकरण से जितने छन्द सिद्ध होते हैं उनकी सख्या लाखों में होगी। इन शब्दांशिक छन्दों के एक से लेकर सम्पूर्ण द्विकल शब्दांशों के स्थान में द्वितव या गुरु वर्णो को रख कर वृत्त या वार्णिक छन्द बनेंगे जिनकी सख्या कोटियों में होगी। ये सब छन्द गय होंगे क्योंकि जाति गति सब में विद्यमान रहेगी। इन सब छन्दों में से आज तक जितने छन्द विश्व में बने उनका परिमाण एक घट जल में बिन्दु के समान है।

मुक्तक छंद

पहले कहा गया है कि जाति छन्द रचना के जो योगावृति विपर्यय आदि के नियम हैं उन्ही से उन्ही गतियों के मुक्तक छन्द बनते हैं, केवल इतना अन्तर है कि जाति छन्द मात्राओं की गणना पर निर्भर है तथा मुक्तक वर्णों की गणना पर वर्ण चाहे लघु हो या दीर्घ मुक्तक छन्द में कोई बाधा नही पड़ती। वस्तुत छोटे बड़े वर्ग के विवेक से मुक्त होने ही से इनका नाम मुक्तक रखा गया है। कारण यह है कि मुक्तक छन्द में लघुदीर्घ दोनो प्रकार के वर्ण समकाल में पढ़े जाते हैं। अर्थात पाठक जितना समय एक दीर्घ वर्ण के उच्चारण में लगाता है उतना ही लघु वर्ण के उच्चारण में ऐसा न करने से गति भंग होती है। छन्द के इतिहास में सबसे पहले मुक्तक छंदों का विकास हुआ है। हमारा तो सम्पूर्ण प्राचीन वेद शास्त्र इन्ही मुक्तक छन्दो ही में पाया जाता है। तालों के मात्रा समय निर्धारण से भी यही प्रकट होता है कि वे मुक्तक छन्दो ही को प्रधान मानकर बनाई गई है। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि मुक्तक गणों में लघु गुरु वर्ण का विभेद नही माना जाता

शबरी-समीक्षा
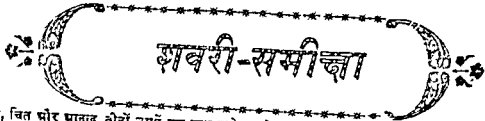
सत्, चित् और आनन्द, तीनों उसमें एक साथ पाये जाते हैं, "सत्य शिव सुन्दर" के स्वरूप में ही ये तीनों गुण क्रमशः प्रस्फुटित होते हैं; और उनको प्राप्त करने के लिए कर्म, ज्ञान, और उपासना ही एक मात्र उपाय हैं। किन्तु जहाँ सत् सत्य तथा कर्म में जीवन की कठोरता स्पष्ट देख पड़ती है, चित्, शिवम् और ज्ञान में दुरुहता तथा सात्विक रुक्षता का अनुभव होता है वही आनन्द सुन्दरता का रूप किये उपासना मार्ग में बिखरा पड़ा मिलता है। इसी कारण जहां कर्म की कठोरता और ज्ञान की रुक्षता अनेकों को डरा देती है, तहाँ उपासना मार्ग का आनन्द, उस आनन्द का वह सौन्दर्य और उस सौन्दर्य के वे प्रेमरूपी पाश अनेकों को अनजाने खींच लेते हैं और मनुष्य को उस अदृष्ट जगत्पिता से मुठभेड़ करवा देते हैं।

उस आनन्दमयी भावना का वह अदृष्ट किन्तु विमोहक, सुदृढ़ आकर्षण ही प्रेम कहाता है और इसी कारण जहाँ २ सौन्दर्य बिखरा पड़ा होता है आनन्द की तरगें उठती हैं और उस अनन्त परम आत्मा की प्रेममयी भावनाएँ उमड़ती हैं। प्रेम का वह अदृष्ट पाश निरन्तर उलझता जाता है; अधिकाधिक सुदृढ़ होता जाता है। और जब यह पाश दो आत्माओं में भी देख पड़ते हैं तब वह ससारिक प्रेम कहाता, किन्तु वहाँ भी सौन्दर्य, आनन्द और प्रेम तीनों उलझे मिलते है और एक ऐसी अनबूझ पहेली पैदा कर देते हैं जिसे कवि भवभूति भी केवल यही कहकर टाल् सका कि

"व्यतिशजति पदार्थानन्तरः कोपिहेतु"।

पुनः जब २ आनन्द के वे अदृष्ट पाश प्रेम के स्वरूप में देख पड़ते हैं, तब तब प्रेमपात्र में अनुभूत सौन्दर्य, फूट पड़ता है और वह सौन्दर्य, प्रेम की उमड़ती हुई भावना के साथ ही दिन पर दिन निखरता जाता है, अधिकाधिक मोहक, आकर्षक होता है। और जब जब आत्मा परम आत्मा की और आकर्षित होती है। जब जब मनुष्य उ आनन्द-कन्दन, सौन्दर्य-सागर तथा चिरप्रेमी से मिलने को मचल बैठता है'''''सौन्दर्य और आनन्द के वे बिखरे हुये छितरे कण, प्रेम के अदृष्टपाशों से सौन्दर्य और आनन्द के सागर की ओर खिचते हैं उससे एकीभूत होने की उत्कंठा अधिकाधिक तीव्र होती जाती है,''''''तब तो उस राह में सहायक होने वाली निर्जीव वस्तुएँ भी उस प्रेमी के लिये प्यारी हो जाती हैं। वे अपने प्रेमपात्र तक उसे पहुँचा देंगी,'' '''प्रेमी हर्ष मे पागल हो जाना आनन्द में भ्रमता हुआ उनसे चिपट जाता है। प्रहलाद ने उस तपतपाये हुये खम्भे को गले लगाया ईसा लकड़ी के उस कठोर क्रास पर ही स्वयं लटक गया, हर्षातिरेक से उसका बदन फूट पड़ा और रुधिर के आनन्दाश्रु बहे, और वह दिव्य प्रेमी मंसूर हसते हसते उस तीखी दर्दनाक शूली पर चढ़ गया।

किन्तु निराकार की भी भावना होती है, और अनेकों आत्माएँ एक साकार-स्वरूप को गले लगाने के लिए या उसकी सेवा कर उसी के प्रेम में घुल जाने में ही आनन्दातिरेक का अनुभव करती हैं। और तब''''''प्रेम का वह अदृष्ट आकर्षण आत्मा की वह महान इच्छा और उसी को वह तीव्र प्रेरणा'''' आनन्द के वे बिखरे हुए परमाणु अनजाने एक ही स्थान में एकत्रित होने लगते हैं, सौन्दर्य घनीभूत होता है; और तब वह दूसरी आत्मा आनन्द के इस अतिरेक का अनुभव कर, सौन्दर्य के स्वरूप को धारणकर अधिकाधिक उन्नत होती है और धीरे धीरे उस आत्मा रूपी चन्द्र की कलायें विकसित होती हैं और उस बढ़ते हुये चन्द्रबिम्ब में परम आत्मा प्रतिबम्बित होने लगती है। अधिकाधिक कलाओं को प्राप्त कर, धीरे २ उस परम आत्मा की महती ज्योति फैलने लगती है और वह

अन्हवायो करें प्रमुप्रान, हिये
की हिलोर—हिंडोर झुलायो करें।
निज वेदना वीर के मग क्यों
बिनती करि ताहि मनायो करें।

परन्तु इससे उन ज्ञानी तपस्वियों का समाधान क्योंकर होता? यद्यपि मातग ऋषि ने उसे उपदेश देकर अपनी शिष्या बनाया, उन ज्ञानी तथा उच्चवर्णजों के लिये तो वह वही अछूत थी। एक मुनि ने कहा भी—

उत, अछूत, कुजाति, बिजाति!
दुजाति बनी का पलड़ चढाये।
देखति ना कोउ आवत जात
विमोह की खोलन नैन मदाये।
प्राकृत मदपनो अपनो नहि
सोचति, स्वर्ग लौं चित्त बढाये।
धूरि तौ धूरि, न चदन होय
उतग मतग के मूड़ चढाये।
× × ×

युग पर युग बीत गए और मदमस्त यौवन प्रेम—प्रतीक्षा में बीता; प्रौढ़त्व भी ऐंठता हुआ निकल गया,····परन्तु उसकी रग २ में, उसके अग २ में उसकी प्रेम-भावना अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। उस निराकार की निर्गुण विमलता वाह्यान्तरिक स्वरूप में अधिकाधिक व्यक्त होने लगी। किन्तु उसके दर्शन की वह प्यासी प्रेमदुग्ध में उफान आया, परिधि को छोड़कर उमड़ पड़ा और उस उफान के श्वेतफेन······।

बरसं बहु वंस को बीत गई,
उर की बढ़ि मुरछई सोस छई।
कृसता भव—वासना को बढ़ि के
मन तें तन आगन उम्हई।
अभिलाष बढो मिलवे की इतो
अमना—हियते हरि—होय भई।
तिन त्यागि अदेहपनो अपनो
अवधेस के गेह में देह लई।

और अपनी उससे मिलने को, उसे जलकर एकबारगी भस्म हो जाने से बचाने के लिये उस निर्गुण को सगुण होना पड़ा।······फिर भी अभी प्रतीक्षा का अन्त नहीं हो पाया, पृथ्वी तल पर आकर भी वह अभी राजप्रासाद में सुख नींद सोता था ऐश्वर्य पूर्ण जीवन बिताता था, और अपनी माया को ढूंढता था।······किन्तु यह कब तक?······ जीवन भर की प्रतीक्षा स्नेह की वह प्रचण्ड साधना, अपने व्यक्तित्व का वह तर्पण····· कितना महान आकर्षण होता है, इनमें—

प्रेम को चुम्बक ऐसो खरो
गुन में ध्रुव—चुम्बक हूँ को लजायो।
लौह की ठौर त्रिलोक को पारस
उत्तर तें खिचि दच्छिन आयो।
× × ×

और वह भी अकेला न आया, अपनी माया को भी साथ लाया। तब यदि पतिगा खिचा चला आवे अपने रग—विरगे पखो के लिए उस दहकती हुई बत्ती पर भस्म होने को, और यदि लौह की वह जड सुई भी अपना ताज वाला सिर धुन धुनकर अनजाने ध्रुव की उस अमिट अचल द्युति की ओर इङ्गित करदे, तो कौन सी आश्चर्य की बात होती है।
× × ×

किन्तु उसे तो उसके गुण भी छोड़ गये और वह बेचारी अधिकाधिक चचल हो गई। उसकी वह एकाकी प्रतीक्षा और उस कठोर समय में भी निराधार·····। किन्तु कुछ ही काल के बाद—

सरसी उद्वेग भरी इत सास
बही उत वेगवती ह्वै बयार।
इत सचित—कर्म—निपात भयो
उत पात पुरातन को पतझार।
उमगें रस—राग—भरे सतभाव
भयो उत पल्लव—पुज—उभार।
हरि—आवन की चरचा इत त्यों
मधु—आगम की कलकठ—पुकार।

आवो सनेही सदा के सला
फिर ते वह तापस वेष बनावो ॥
सग लै मोहिं चलो अपनी
अनुरागिनि वा सबरी सों मिलावो।
जानिवो चाहौं सु पाहुनी कैसो
लुभावनी जामैं न जूठ बचावो।
रीझि गये जिन बेरन पै
उनको रस मोहुकों नेकु चखावो।

और अब जब कवि अपने उस श्यामसखा को लेकर उन मीठे परन्तु जूठे बेरों की मिठास चखने का प्रयास कर रहा है वह चाहता है कि अपने मित्रों को भी साथ ले चले उस वन में उस पुराने गए बीते युग में तथा उस भीलनी के घर। मुझे तो कवि ने न्योता दिया है साथ चलने का और औरों को साथ लाने के लिए भी आग्रह किया है।......और आज फिर शबरी अपने उन्हीं का स्वा करने की प्रतीक्षा कर रही है पर इस बार वे अकेले जावेंगे उसका वह कवि भी जावेगा और उ साथ होंगे उन्हीं के दूसरे संगी साथी।...... परन्तु कवि हमारी बाट देख रहा है......क्या उसे अ अधिक देर तक हमारी प्रतीक्षा करना होगी।......अ अब उसको एकबार फिर अपने उससे मिलने के लि प्रतीक्षा करवाना बड़ी निष्ठुरता होगी। और आज तो उसके वे फिर एक बार वही श्यामल रूप धारण किये परन्तु अंधेरी रात के उस घनघोर अंधेरे में कवि के श्यामसखा, मथुरा के उस नटवर का चोला पहने, नटवर बने चुपके से चले आरहे है। अब देरी अधिक हो गई है चलें वह श्यामसखा आवे उससे पहले ही कवि के पास पहुंच जावें कि श्यामसखा के आगमन के साथ ही शबरी तक पहुंचने के लिए चल पड़ें।

श्री रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', एम० ए०

राम काव्य-पर शुद्ध व्रजभाषा में रचनाओं की एक बड़ी कमी थी। प्रसन्नता की बात है कि श्रीयुत बचनेश जी ने 'शबरी' खण्ड काव्य लिखकर इस कमी की पूर्ति करने का पथ प्रदर्शन किया है। व्रजभाषा में ऐसी रचनाएं भी जिन्हें महा काव्य और खण्ड काव्य की सज्ञा यथार्थ रूप से दी जा सके प्रायः नहीं के बराबर है किन्तु शबरी ने इस बात की भी पूर्ति की।

भीलनी शबरी के बाल्यकाल के विकास, उसमें प्रकृति-निरीक्षण और उसकी दशाओं के चारु चित्रण एवम् वर्णन-शैली में सरसता तथा सराहनीय स्वाभाविकता है। भाषा-भाव में प्रवाह और प्रभाव है। शब्द सगठन, चित्र चित्रण बड़ा ही सुन्दर और सुबोध है इसलिए वाक्य विन्यास भी अति मनोरम, मधुर, मंजुल और मृदुल हो गया है। प्रत्येक पद रस-भाव से भरा खूब खरा और निखरा हुआ है। इस प्रकार यह रचना एक सर्वथा सफलकृति ठहरती है और निर्विवाद रूप से साधु वाद की अधिकारिणी है। बचनेश जी से ऐसी ही रचना की आशा थी। हमारा विचार है कि प्रत्येक काव्य-कला-प्रेमी भावुक या सहृदय व्यक्ति इसे चाहेगा और सराहेगा। हिन्दी ससार में इस नवीन और मौलिक रचना का पूर्णतया समादर होगा।

पं० माहावीरप्रसाद द्विवेदी

पण्डित बचनेश मिश्र की पुस्तक 'शबरी' में भक्ति भाव-दर्शक बड़ी सरस कविता है। अतएव वह सर्वथा प्रशसनीय है।

महा कवि श्री हरिऔध जी

आपकी व्रजभाषा- कविता मुझ को सदा प्यारी लगी है। शबरी भी आपकी कवित्व-शक्ति की परिचा-यिका है, अतएव मनोहारिणी है। इस ग्रथ में जो मौलिकता पाई जाती है और उसमें जैसी सुन्दर भाव-व्यंजना है वह प्रशंसनीय ही नहीं उदात्त भी है। जिस समय व्रजभाषा अनादृत हो रही है उस समय उसमें सफलता के साथ नये गुल फूल खिलाना आप जैसे सहृदयों ही का काम है। मैं ग्रन्थ देखकर आनन्दित हुआ। ग्रन्थ भावमय और सुन्दर है, अवश्य मुद्रित कराइए। कविता- मर्मज्ञों में आप के ग्रन्थ का आदर होगा। कोई अरसिक अरसिकता करेगा तो उसकी चिन्ताही क्या, 'कहा भयो दिनकौ विभव देख्यो जो न उलूक"। 'हम तो इस बात के मानने वाले हैं कि 'बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय'। आपने अनूठी बातें कहीं हैं, किसी व्रजभाषा विरोधी को वे न रुचें तो भले ही न रुचें, इसकी परवा क्या" ?

कर सके ।

यद्यपि कबीर की बानी निर्गुण बानी कहलाती है पर उपासना क्षेत्र में ब्रह्म निर्गुण नहीं बना रह सकता । सेव्य सेवक भाव में स्वामी में कृपा, क्षमा औदार्य्य आदि गुणों का आरोप हो ही जाता है इसी से कबीर के वचनों में कहीं तो निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म सत्ता का सकेत मिलता है । यथा:—

पंडित मिथ्या करहु विचारा ना वह सृष्टि, न सिरजनहारा ॥
जोति सरुप काल नहिउ हँवा बचन न आहि सरीरा ॥
थूल अथूल पवन नहि पावक रवि ससि धरनि न धीरा ॥
और कहीं सर्ववाद की झलक मिलती है । यथा—
आपुहि देवा आपुहि पाती । आपुहि कुल आपुहि है जाती ॥
और कहीं सोपधि ईश्वर की यथा:—

साईं के सब जीव हैं कीरी कुंजर दोय ।

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि कबीर में ज्ञान मार्ग की जहां तक बातें हैं वे सब हिन्दू शास्त्रों की हैं जिनका सचय उन्होंने रामानंद जी के उपदेशों से किया था इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में हठ योगियों के साधनात्मक रहस्यवाद, वैष्णवों की अहिंसा और सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद का प्रभाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है । सूफियों की भांति यह ब्रह्म को प्रियतम अथवा माशूक मानते थे और मृत्यु उस अखंड सत्ता से जीवात्मा के मिलन की मधुर एवं पावनवेला यथा:—

साईं के संग सासुर आई ।
संग न सूती, स्वाद न माना, गा जीवन सपने की नाईं ॥
जना चारि मिलि लगन सुधायो, जना पांच मिलि माड़ो छायो ॥
भयो विवाह चली बिनु दूलह, बाट जात समधी समझाई ॥

उपर लिखित अन्योक्ति इनके अध्यात्म वाद को भली प्रकार स्पष्ट करती है । कबीर अपने श्रोताओं को अपने वाग्वैचित्र्य से चकित कर यह दिखाना चाहते थे कि उन्हों ने ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है ।

गुरु नानक:—सिख सम्प्रदाय के आदि गुरु गुरु नानक महान भक्त थे । इसी से वह ऐसा मार्ग ग्रहण करना चाहते थे जो कि हिन्दू व मुसलमान दोनों को ही समान रुप से ग्राह्य हो । कबीरदास की निर्गुण उपासना ने इनको आकृष्ट किया । यह पढ़े लिखे नहीं थे । अपने गाने के लिए भजन बनाया करते थे जिनका संग्रह ग्रंथ साहब में किया गया है ये भजन एक भक्त के सीधे सादे विचारों की सरल भाषा में अभिव्यक्ति हैं यह ब्रज भाषा, खड़ी बोली और पंजाबी में हैं ।

जायसी:—मलिक मुहम्मद जायसी ने कबीर के विपरीत मानव हृदय को स्पर्श करने का प्रयत्न किया । कबीर की झाड़ फटकार जातियों और मनुष्यों में द्वेष ही बढ़ा सकी यह मनुष्य २ के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है जीवन में जिस हृदय साम्य का अनुभव कभी कभी मनुष्य किया करता है उसे व्यक्त न कर सकी । जायसी आदि प्रेम मार्गियों ने सामान्य मानवीय प्रेम के आधार पर पवित्र ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति का मार्ग दिखाया । परन्तु ईश्वरीय साधना का यह मार्ग सुगम नहीं । यह उन्होंने रतनसेन के मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन कर स्पष्ट कर दिया है । जायसीकार पद्मनी का रुप वर्णन केवल एक सुन्दरी का वर्णन मात्र नहीं । वह सौंदर्य की लोकोत्तर भावना में मग्न करने वाला है । सम्पूर्ण सृष्टि उस अनन्त सौंदर्य के विरह में व्याकुल है, यथा:—
उन बानन्ह अस को जो न मारा । बेधि रहा सगरो संसारा ॥

तुलसीदास:—श्री तुलसीदास जी जनता के प्रतिनिधि कवि हैं । इनका आविर्भाव उस काल में हुआ था जब कि जनता मुसलमानी शासन के अत्याचारों के बोझ से त्राहि त्राहि कर रही थी । इन्होंने उसके सम्मुख मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को सर्व शक्ति मान दुष्ट दलन रुप में प्रस्तुत किया यह सगुण रुप जनता को सान्त्वना देने का उत्तम आधार सिद्ध हुआ । इनकी भक्ति स्वामी भाव की है । यह रामचन्द्र के अनन्य भक्त थे पर इनका स्वामी कठोर नहीं है । वह भक्तों पर सदैव कृपा रखता है पतित पावन है । इसी से आप कहते हैं—

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।

इनकी भक्ति का धर्म, कर्म और योग आदि से विरोध नहीं

निर्गुण सत्ता अव्यक्त और अनिर्दिष्ट है। सम्पूर्ण जगत में व्यक्त सगुण सत्ता के साथ इसकी समता करना व्यर्थ है —

"मुनि है कथा कौन निर्गुन की, रचि पचि बात बनावत।
सगुन–सुमेरु प्रगट देखियत, तुम तृन की ओट दुरावत"॥

सूर की भक्ति सखा भाव की है। श्रीकृष्ण उनके स्वामी नहीं हैं। इसी से वह उनकी प्रत्येक बात का विश्लेषण कर सके और स्थान स्थान पर उन्हें उपालम्भ आदि दे सके —

"ऊधो कारे सबहि बुरे"।

कवि वचनेश:—फरुखाबाद निवासी कवि वचनेश उत्तर भारतकी भक्त कवि परम्परा रूपी उद्यान के एक सौरभ युक्त पुष्प है। इनकी रचनाएं कवित्व चमत्कार या प्रतिभा प्रदर्शन करने का साधन नहीं वह एक भक्त के हृदय के उद्गार है। उसकी स्वानुभूति का दिग्दर्शन है। इनके लिए भी यही कहना उचित है कि यह पहले भक्त और बाद में कवि हैं। इसी से इन्होने अलकार आदि की ओर कोई ध्यान न दिया। पर इसका यह अर्थ नही कि इनकी कविता अलकार विहीन है। स्थान स्थान पर अलकारों ने उसकी शोभा की वृद्धि की है पर यह स्वाभाविक रूप से ही आगए है। कवि ने उन्हें लाने का प्रयास नही किया है। यही कारण है कि इनकी कविता केशवदास की कविता की भांति अलकारों के बोझ से दबी हुई नहीं है। अलकारों ने उसके स्वाभाविक सौन्दर्य को केवल विकसित भर किया है उस पर झूठा आवरन नहीं चढ़ाया।

इन्हों ने केवल फुटकर पद ही नही लिखे। 'शबरी नामक खड काव्य इनकी प्रतिभा का अपूर्व निदर्शन है। 'प्रणय–पत्रिका' जो अभी अप्रकाशित है, में इनकी सखाभाव की उपासना का प्रस्फुटन हुआ है आपकी रचना का विषय राम, कृष्ण और निर्गुण सत्ता सभी है। कबीर, सूर और तुलसी की भांति इनके लिए एक पक्ष में आकर्षण नहीं। निर्गुण और सगुण सत्ता दोनों ही विश्वास योग्य हैं। राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं है वरन् दोनों ही आराधना के विषय है। यह विचारधारा इनकी उच्च कोटि की समन्वयवादी प्रवृति को भली भांति स्पष्ट करती है। गोस्वामी जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और राम और शिव भक्ति का समन्वय करने की चेष्टा की। इन्हों ने और भी आगे बढ़ कर निर्गुण और सगुण तथा राम भक्ति और कृष्ण भक्ति की महान परम्पराओं के समन्वय की चेष्टा की है।

इतना होते हुए भी सगुणोपासना ने इन्हें अधिक आकृष्ट किया है। इसमें भी कृष्ण रूप अधिक आकर्षक है इस में आश्चर्य भी क्या क्योंकि वे चित चोर जो हैं। पर यह अकेले ही इस विद्या में पारगत नहीं है। राधा भी इस विद्या की पडित हैं। पर अपने दोष का दूसरे पर आरोप करना केवल कृष्ण को आता है। यह लोग चाहे जितना छिपावे भक्तों से इनकी एक भी चाल छिपी नहीं। कवि ने कृष्ण की इसी मनोवृत्ति को आधार बना कर 'प्रेमाभियोग' की कितनी सुन्दर कल्पना की है—

कोतवाल ललिता विशाखा जमादार बनी
चन्द्रावलि चारु वेष लेखक के ह्वै गई।
औरो जिती गोपी सबै सुघर सिपाही रूप
पुलिस प्रबन्ध चौकी ठौर–ठौर ठै गई।
भाखै 'वचनेश' नई लीला भई वृन्दावन
कुज कोतवाली में निरालो छवि छै गई।
बनि फरियादी कान्ह कीन्हीं फरियाद आय
हाय मेरो राधिका चुराय चित्त लैगई॥
अब छलिया कृष्ण की रिपोर्ट इस रूपक में देखिए—

"सेंध उर ऐन दै नुकीले नैन-सावर सों
निर्भुकि प्रभा सो पल में प्रवेश कै गई।
तोरि तोरि धीरज के सुमति पिटारे खोलि
सारे साज ज्ञान मान छिति छितेरे गई।
रपट लिखाई कान्ह जाई वृषभानुजू की
अजब अचान आजु गजब ढहै गई।

अभ्यास करते हैं तथा आनन्द ही हमारा प्रेम पात्र रहता है। केवल कस्तूरी मृग की तरह भ्रम से हम उसे अपने अन्त में न ढूंढ कर अन्यान्य वाह्य वस्तुओं में मान लेते हैं। .... इस आनन्द रूप के अन्तर्गत भी यह उक्त सत्, चित, आनन्द भेदों से हमें त्रिरूप दर्शाता है—१ सब में व्यापक रहने वाला विष्णु, २ सब में रमने वाला राम और ३ सब को अपने में खींचने वाला कृष्ण। ... ..और रूपों की अपेक्षा कृष्ण रूप हमारे अति समीप भी है क्यों कि यह गोलोक में है। हम भी गोलोक (इन्द्रीय लोक) के वासी हैं।'

मानव सौन्दर्य का भूखा है। सौन्दर्य उसे तृप्ति एवं सुख देता है। *"A thing of beauty is joy forever"* कवि इसे स्वीकार करते हुये यह निश्चय करता है कि सौन्दर्य ईश्वरीय वस्तु है। सौन्दर्य उस अखण्ड सत्ता की झलक है जो सारे जगत में व्याप्त है।

कवि के विचार में पवित्र और दृढ़ प्रेम वही है जो सांसारिक कलङ्कों को अलङ्कार और विपत्तियों को शृङ्गार मानता है। इसी लगन अथवा चाह को "राधा कहा गया है। विश्व में दो ही वस्तुयें है—ईश्वर और उसकी चाह जो कि उसी का अङ्ग है।

चाह और ईश्वर अभिन्न हैं। कृष्ण इसी राधा को रिझाने के लिए तरह तरह के चरित्र करते है। ऐसी दशा में यदि विहारी की भांति राधिका को प्रसन्न करले तो कृष्ण तो उसके वश में आ ही जायेंगे। इसी विचार से कवि ने अपने को राधा का सेवक माना है—

"तुम्हारी चाह राधिका, श्याम।
अति कोमल सुकुमार रसीली,
त्रिभुवन रूप———विराम॥
जाके वश तुम रहत स्ववश ह्वै
धरत वेश अभिराम।
जाको मान मनावन को प्रिय
तजत न गोपुर—धाम॥
जाके बिना दरश तव दुर्लभ
ज्यों दृग बिनु निज धाम।
वाही को अनुचर 'ह्वै रहिहौं
त्याग आन सब काम॥
मिलिहौं तुमहिं अवसि मिलिहौं अब
फसौं न माया—दाम।
प्रिय बचनेश तासु दुति आगे
दुरैं न तव तनु श्याम॥"

कवि की प्रतिभा बहुमुखी है। उसने केवल सगुणोपासना के निरूपण में ही चमत्कार नहीं दिखाया अपितु निर्गुण ब्रह्म के निरूपण में भी अद्भुत सफलता प्राप्त की। इस विषय में इनको रचनाएं कबीर से समता करने योग्य हैं। देखिए माया और ब्रह्म का निरूपण—

जुलुम जोते भैया तुम्हारी लुगैया।
तुमहिं बन्द रक्खे है तेहरी कोठरिया
पुकारे न पहुँचे किसी की दुहैया।
किसी को चढ़ावें किसी को उतारें।
किसी को दिखा छवि बनावें हैं छैंया।
लिए संग दस नायका एक भडुआ
फसावें जगाय काम रस्ता चलैया।
तुम्हीं ध्यान ना दोगे जो अपने घरैं,
तौ है कौन 'बचनेश' दूसर सुनैया।"

जीव की स्थिति बड़ी सङ्कटापूर्ण है। यहाँ समझिए कि दो नावों पर उसे पैर रख कर चलना पड़ता है। एक ओर माया और दूसरी ओर ब्रह्म। इन विरोधी सत्ताओं में वह किस के अनुसार चले। देखिए कवि का इस स्थिति का स्पष्टीकरण—

"मैं इन दोनों का बिचमनिया।
किसको गहौं कौनको त्यागौं,
तुम राजा यह रनियां।
इनकी सुनौं तौ तुम रिस,
तुम्हरी सुनौं तो यह अनमनियां।
इनके हाथ सौंपि तुम सरबस,

श्री रामकुमार वर्मा

'शबरी' के दर्शन हुए। ब्रजभाषा की इस छोटी सी रचना में मुझे काव्य की छटा प्रचुर मात्रा में देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आपकी भाषा में प्रवाह है और भावों में नवीनता। इस सरस रचना के लिये मेरी बधाई स्वीकार कीजिए। यह पुस्तक हिन्दी में आदर की अधिकारिणी है।

श्री रमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश'

'शबरी' के रचयिता वयोवृद्ध महाकवि वचनेश जी साहित्य की तपोभूमि कालाकांकर के एक तपस्वी हैं। ·····आपकी शबरी तो एक ऐसी अनूतपूर्व चीज बन गयी है कि पढ़ते ही हृदय मुग्ध हो जाता है।·· कहीं रोते ही बनता है तो कहीं हसी रोके से भी नहीं रुकती। यही कवि की सफलता है। मतिरामकी मिठास पद्माकर का प्रवाह और रसखान की सरसता इसमें सर्वत्र विद्यमान है।

श्री सनेही जी

श्री वचनेश जी ने शबरी नामक एक खण्ड काव्य की रचना सवैया छन्द में की है। काव्य कौशल और सामयिकता दोनों दृष्टियों से ग्रन्थ महत्व पूर्ण हुआ है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

पग प्रेम को एसो बनाय गई

दृग मूंदि चलं सोउ प्रीतम पाइहैं'।

'शबरी' एक मुक्तक-खण्ड-काव्य है, जिस में उस मूर्तिमयी ममता का स्मरण वन्दन है, जिसके जूठे बेर खाकर भगवान ने अमृत लाभ किया था

आपकी भाषा में शुद्धता और परिमार्जित हार्थों की प्राञ्जलता है। शब्द चित्र अंकित करने में आपके नव्य अवलोकन का भी परिचय मिलता है। आपकी यह वयोवृद्ध रचना उस वृद्धा अनुरागिनी की आत्मा को ब्रजभाषा का कोमल कलित तरुण संगीत प्रदान करने में सफल हुई है। यह आपके अनवरत कवित्व का सुफल है। आपकी सुकृति के लिये बधाई।

० सुकदेव विहारी मिश्र

'शबरी' ग्रन्थ की कविता भक्तिभाव-पूरित सर्वथा प्रशसनीय है। ऐसे सरस ग्रन्थ बहुत कम देखने में आते हैं। मैं आपको इसके लिये बधाई देता हूँ।

प्यार की प्यास

प्यार का प्यासा है ससार।
१—खोजती है खिलकर कलियां,
कहां अलियों की आवलियां,
पंखुरियां खोल सुवास पसार।
प्यार का प्यासा है ससार॥
२—बढ रहे गगन ओर तरुवर,
बुलाते पत्र हिला नभचर,
लिए फल फूल मंजु उपहार।
प्यार का प्यासा है ससार॥
३—उच्च पद तज नदिया बहकर,
चाहतीं बहु चोटें सहकर।
सिन्धु सगम जो निज सहार,
प्यार का प्यासा है ससार।
४—भागती सलज निशा लखकर,
खेलता खेल नित्य दिनकर।
बंटता विधु बनकर अंकवार,
प्यार का प्यासा है ससार।
५—जीव यह विपुल रूप भरता,
न भव सभव दुख से डरता,
जोड़ता सुत दारा परिवार।
प्यार का प्यासा है ससार।
६—पर किसी को न तुष्टि आती।
ओस चाट न प्यास जाती।
भरा भवनिधि जीवन में खार,
प्यार का प्यासा है ससार॥
७—अरे घनश्याम! सुरस बरसा,
न बूदा बादो कर तरसा।
हुए है नीरस उर कासार,
प्यार का प्यासा है ससार।
८—उमड़ हो जाय एक सब सर,
रहे बचनेश न कुछ अतर।
चतुर्दिग हो लहराता प्यार,
प्यार का प्यासा है ससार।

ग्रीष्म

उदित अखडमारतड ज्यों प्रलय के रुद्र,
सहत मरीचिन प्रचड ज्वाल बरसे।
तावा सी तपति भूमि आवा से अवास भये,
तावा से जरत जन्तु दावातक भर मे।
कहे बचनेश नरनारि की कहानी कहा,
सुर मेरु वासी भे महीं न पाव परसे।
कौल कमलासन पयोधि कमलेश बसे,
हिमगिर गौरी नाथ ग्रीषम के डरसे।

ग्रीष्म राज शासन (वृटिश राज्य पर ढार)

ग्रीष्म महाराज जी तुम्हारे राज शासन में,
प्रखर करों ने नर नारि ऐसे ताये हैं
उद्यम विहीन श्रम छाड़कर दीन दुर्बल हो,
पति पतिनी से पुत्र मां से बिलगाये हैं।
खद्दर बिसार तन धारे तनजेब सब,
कुल ललना भी कुल लाज बिसराये हैं।
नीरस भई है भूमि तृसना बढ़ी है भूरि,
त्राहि घनश्याम घनश्याम रटलाये हैं।

बुढापे में बालपन

दांत हैं न मुह में जवान तुतलाती रहा।
खाने योग्य दूध या मुलायम सा खाना है।
हाजमा की कमी बात कफ की बढ़ोतरी है
डगमग किसी के सहारे चलपाना है।
होता हर काम में निहारना पराया मुख।
बचनेश एक बस खीजना खिजाना है,
है न ये बुढापा मिला बालकों का बाना मुझे।
जान पड़ता है किसी मा की गोद जाना है,

व्याकरण से देखो

मान न दिखाओ प्रिय! हम तुम एक ही है,
शब्द मात्र दो हैं एक बोलने का अनुक्रम।
छोटा औ बडा है कौन 'हम तुम' में लखो तो,
बचनेश दोनों सर्वनाम सर्वाकार सम।
एक हो समास में रहें तो है भलाई न तु,
सधि टूटते ही वैयाकरण भरेंगे दम।
मानने पडेगा अन्य पुरुष समक्ष तब,
मध्यम पुरुष तुम उत्तम पुरुष हम।

प्यार की प्यास

प्यार का प्यासा है ससार।
१—खोजती हैं खिलकर कलियां,
कहां अलियों को आवलियां,
पंखुरियां खोल सुवास पसार।
प्यार का प्यासा है ससार॥
२—बढ रहे गगन ओर तरुवर,
बुलाते पत्र हिला नभचर,
लिए फल फूल मधु उपहार।
प्यार का प्यासा है ससार॥
३—उच्च पद तज नदियां बहकर,
चाहतीं बहु चोटें सहकर।
सिन्धु सगम जो निज सहार,
प्यार का प्यासा है ससार।
४—भागती मलज निशा ललकर,
खेलता खेल नित्य दिनकर।
बैठता विधु बनकर अंकवार,
प्यार का प्यासा है ससार।
५—जीव यह विपुल रूप भरता,
न भव सभव दुख से डरता,
जोडता सुत दारा परिवार।
प्यार का प्यासा है ससार।
६—पर किसी को न तुष्टि आती।
ओस चाटे न प्यास जाती।
नरा भवनिधि जीवन में खार,
प्यार का प्यासा है ससार॥
७—अरे घनश्याम! सुरस बरसा,
न बूंदा बादी कर तरसा।
हुए हैं नीरस उर कासार,
प्यार का प्यासा है ससार।
८—उमड हो जाय एक सब सर,
रहे बचनेश न कुछ अतर।
चतुर्दिश हो लहराता प्यार,
प्यार का प्यासा है ससार।

ग्रीष्म

उदित अखण्डमारतण्ड ज्यों प्रलय के रुद्र,
सहस मरीचिन प्रचण्ड ज्वाल बरसे।
तावा सी तपति भूमि आवा से अवास भये,
लावा से जरत जन्तु धावातक अर से।
कहे बचनेश नरनारि की कहानी कहा,
सुर मंद वासी भे मही न पाव परसे।
कौल कमलासन पयोधि कमलेश बसे,
हिमगिर गौरी नाथ ग्रीषम के डरसे।

ग्रीष्म राज शासन (बृटिश राज्य पर दाय)

ग्रीष्म महाराज जो तुम्हारे राज शासन में,
प्रखर करो ने नर नारि ऐसे तायें।
उद्यम विहीन श्रम छोड़कर दीन दुर्बल हो,
पति पतिनी से पुत्र मां से बिलगायें हैं
खद्दर बिसार तन धारे तनजेब सब,
कुल ललना भी कुल लाज बिसरायें हैं
नीरस भई है भूमि तृसना बढ़ी है भूरि,
त्राहि घनश्याम घनश्याम रटलायें हैं।

बुढापे में बालपन

दांत हैं न मुह में जवान तुतलाती रही।
खाने योग्य दूध या मुलायम सा खाना है।
हाजमा की कमी बात कफ की बढ़ोतरी है
डगमग किसी के सहारे चलपाना है।
होता हर काम में निहारना पराया मुख।
बचनेश एक मल खीजना खिजाना है,
है न ये बुढापा मिला बालकों का बाना मुझे।
जान पड़ता है किसी मां की गोद जाना है,

व्याकरण से देखो

मान न दिखाओ प्रिय! हम तुम एक ही है,
शब्द मात्र दो हैं एक बोलने का क्रम।
छोटा औ बडा है कौन 'हम तुम' में लखो तो,
बचनेश दोनों सर्वनाम सर्वाकार सम।
एक हो समास में रहें तो है भलाई न तु,
सधि टूटते ही वैयाकरण भरेंगे दम।
मानने पड़ेगा अन्य पुरुष समक्ष तब,
मध्यम पुरुष तुम उतम पुरुष हम।

पञ्चाल प्रदेश का इतिहास

वैदिक काल

यद्यपि किसी भी प्रदेश विशेष का श्रृंखलाबद्ध इतिहास मिलना प्रायः दु:साध्य सा है किन्तु फिर भी सम्पन्न वैदिक साहित्य, रामायण और महाभारत, पुराण, *संस्कृत साहित्य के अन्य काव्य ग्रंथों, जन श्रुतियों तथा* पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री से किसी भी प्रदेश की साहित्य सामग्री संक्षिप्त रूप से तो निकाली ही जा सकती है। कहीं २ पर ऐतिहासिक सामग्री संदिग्ध अवश्य ज्ञात होने लगती है किन्तु इसका कारण हमारी अत्यधिक प्राचीनता ही है : कितने ही आख्यान भिन्न भिन्न युगों में परिवर्तित रूप से हमारे सामने आ जाते हैं जिससे समय का निर्धारण करना कठिन हो जाता है किन्तु उचित और सतर्क विश्लेषण द्वारा इतिहास की गतिविधि पुष्ट ही होती जाती है। पंचाल प्रदेश सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री की भी ठीक यही दशा है। यह जनपद उतना ही प्राचीन ज्ञात होता है जितना कि आर्यों का इस भव्य भारत भूमि का आवास। आर्यों के ऋग्वैदिक काल में जब कि आर्य शक्ति का केन्द्र ब्रह्मावर्त था उस समय भी पंचाल एक समुन्नत जनपद था —

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचाला शूरसेनका।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै: ब्रह्मावर्त्तादनन्तर॥ (मनु० २, १६)

मार्कण्डेय पुराण में भी पंचाल जनपद की सीमा वर्णित है। (३५१–५२ पृष्ठ)

इस जनपद का नाम पंचाल कैसे पड़ा —यह विवादास्पद है। विभिन्न कालों में विभिन्न जन श्रुतियां इस सम्बन्ध में मिलती हैं। कहाजाता है कि भरतवंशी राजा भर्म्यश्व के पांच पुत्रों के नाम पर इस प्रान्त का नाम 'पंचाल' पड़ा। पांच राज्यवंश (क्रिवि, तुर्वसु, केशिन, सृंजय, सोमक) प्रधानतया यहाँ राज्य करते रहे, एल वंश के राजाओं का यहां राज्य रहा अतएव यह 'पंचाल' कहलाया। पांच नदियों (गंगा, रामगंगा, काली, यमुना, चम्बल) द्वारा सिंचित यह भूमि पंचाल के नाम से प्रसिद्ध हुई इत्यादि भिन्न भिन्न मत विभिन्न कालों में प्रचलित रहे हैं। जो भी हो आर्य विस्तार के ऋग्वैदिक काल से ही यह जनपद विशेष प्रसिद्ध रहा और आर्यों की प्रत्येक प्रकार की प्रगति का कार्य क्षेत्र रहा।

आर्य अनुश्रुति और परम्परा के अनुसार हमारे सर्व प्रथम लोकनायक स्वायम्भुव मनु ही प्रतिष्ठित हुए। १४ मनुओं की दीर्घ परम्परा में सर्व प्रथम उक्त मनु ही थे जो आर्यों के सर्व प्रथम राजा मानेगए और जिनके पश्चात कई राज्य वंशों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्ही सूर्य वंशी मनु ने सर्व प्रथम राज्य की स्थापना की और समाज व्यवस्था के नियम बनाए। मनु के बड़े पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था जो मध्यदेश के राजा हुए जिनकी राजधानी अयोध्या थी। इसी ऐक्ष्वाक्व सूर्यवंश में मान्धाता हरिश्चन्द्र, भागीरथ, दिलीप,रघु, दशरथ और रामचन्द्र जैसे प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुए। दूसरे पुत्र नेदिष्ट थे जिन्हे तिरहुत का राज्य मिला जिसमें आगे चलकर वैशाल राजा हुआ जिसकी राजधानी वैशाली बौद्ध इतिहास में प्रसिद्ध है। करुष को शोण नदी के पश्चिम और गंगा के दक्षिण का प्रदेश मिला शर्याति को आधुनिक गुजरात का प्रदेश मिला जिसके पुत्र आनर्त ने आनर्त राज्य की स्थापना की जिसकी राजधानी द्वारिका थी। मनु के यही चार पुत्र अधिक प्रतापी थे।

मनु के एक पुत्री थी जिसका नाम इला था। इला के पुत्र पुरुरवा ऐल हुए जिनका राज्य प्रयाग के आस पास था और राजधानी प्रतिष्ठान थी। इला के वंशज चन्द्रवंशी कहलाए। पुरुरवा एल के पुत्र अमावसु ने कान्यकुब्ज और इनके पोते काश ने काशी की स्थापना की थी इसी वंश में नहुष और ययाति बड़े ही प्रतापी राजा हुए। ययाति ने तो अपना राज्य विस्तार इतना किया कि चक्रवर्ती पद पाया। इन्ही ययाति के पांच पुत्र थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। प्रतिष्ठान का ऐलवंश पुरु के नाम पर ही पौरव कहलाया। यदु के वंशज यादव। अयोध्या के पश्चिम में अनु का राज्य और द्रुह्यु का राज्य यमुना और सरस्वती के बीच का था। इन्ही द्रुह्यु का एक वंशज गान्धार था। जिसने गांधार राज्य स्थापित किया। अनु के वंशज आनव पंजाब की ओर बढ़ते गए जिन्होने यौधेय, कैकय, शिवि, मद्र, अम्बष्ट और सौवीर राज्यों की स्थापना की।

जित होकर हस्तिनापुर का राजा सवरण सिंधु नदी की : चला गया। वैदिक कालीन यह युद्धपरुपणी (रावी के पर हुआ था)। राजा सुदास × के समय में पचाल द को सर्वतोमुखी उन्नति × हुई। इस समय त राज्य की सीमा पूर्व में अयोध्या तक थी। पश्चिम ावी तक, दक्षिण में चम्बल तक और उत्तर में सारा प्रान्त उसके अधीन था।

पचाल के प्रसिद्ध राजा सुदास के पश्चात् पचाल र पुन: अवनति की ओर बढ़ा। उसके उत्तराधिकारी ने योग्य न थे। उधर हस्तिनापुर के नरेश सवरण ने शक्ति जुटाई और हस्तिनापुर राज्य छीन लिया। *र पचाल को भी जीत लिया। सवरण का पुत्र प्रतापी* हुआ। कुरु ने दक्षिणी पचाल को जीत कर अपने ा की हार का बदला लिया कुरु ने अब हस्तिनापुर का ज्य विस्तार किया। राजा कुरु इतना प्रतापी हुआ कि े के समय से भरत वश कुरु वश के नाम से प्रसिद्ध ा इसके वशज कौरव और राज्य कुरु कहलाया। इस य पचाल भी इसी के अधीन था अतएव यह विस्तृत ज्य 'कुरु पचाल' के नाम से प्रसिद्ध रहा। राजा कुरु का ज्य सारे पचाल को लेते हुए प्रयाग से लेकर सरस्वती ी तक विस्तृत था।

कुछ काल पश्चात् पचाल के राज्य पुन स्वतत्र गए। प्रसिद्ध कुरु वशी राजा अश्वमधदत्त के समकालीन चाल राजा प्रवाहण जैवलि थे। य अपने समय के महान् ार्शनिक कहे जाते हैं। इन के समय दर्शन शास्त्र को लोग रुचि उत्पन्न हुई। इन के पास कितने हो तत्वदर्शी ान शास्त्र का अध्ययन करने आया करते थे। एक ार ऋषिकुमार श्वेतकतु परीक्षार्थ जैवलि के पास भेजे ए किन्तु परीक्षा में उत्तीर्ण न हो पाए। अपने पिता ारुणि के पास आए। +आरुणि ने भी अपने को असमर्थ मझ कर पुत्र को लेकर तत्वज्ञान की पुन शिक्षा लेने क लिए दार्शनिक जैवलि के पास पहुच और वहां रहकर दोनों ने आत्म विद्या का उच्च ज्ञान प्राप्त किया।

कुरु और पचाल का विविध वर्णन वाजसनेयी सहिता ११-३-३-७ काठक स० १०,६ कौषीतकी उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण तथा जैमिनीय ब्राह्मण में अत्यधिक मिलता है।

वैदिक रचनाओं से ज्ञात होता है कि पचाल जनपद *में शुद्ध वैदिक धर्म पर विशेष जोर रहा। यहाँ* अश्वमेध यज्ञ तथा राजसूय यज्ञ भी बहुत हुए। पचालो की 'यज्ञ प्रणाली' तो सारे आर्यावर्त में प्रसिद्ध थी। इस जनपद की भाषा को वैदिक साहित्य में 'श्रेष्ठ भाषा' के नाम से पुकारा गया है। पचाल विद्वानो और तत्वज्ञानियों ने सहिता और ब्राह्मण ग्रथो की रचनाओं में पूर्ण योग दिया था × विद्या और कला कौशल का यह केन्द्र रहा। काम्पिल्य शिक्षा का एक बहुत बडा केन्द्र था।

महाभारत-काल

वैदिक कालीन राज्य वशो की परम्परा पचाल में निरन्तर चलती आई। महाभारत काल में राजा पृषत् क पश्चात् राजा द्रुपद क समय में हम पुन पचाल को वैभव शील देखते हैं, पहिले तो राजा द्रुपद उत्तर तथा दक्षिण दोनो पचालो क स्वामी थे किन्तु एक विशेष घटना वश दोनों पचाल अलग अलग हो गए।

घटना इस प्रकार थी +भरद्वाज आश्रम में द्रोण और द्रुपद सहपाठी थे एक दूसरे के परम मित्र थे। शिक्षा दीक्षा पाने क पश्चात् द्रुपद द्रुपदपुर (काम्पिल्य) क राजा हो गए। द्रोण धनुर्वेद की शिक्षा लेने परशुराम के पास चले गए। वहां से लौटकर द्रोण एक बार द्रुपद के यहां पहुचे। जा कर कहा 'राजन्' "मैं आपका प्रिय सखा द्रोण हू, आपन मुझे पहिचान तो लिया"। द्रुपद क्रोध में आकर बोले 'ब्राह्मण तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं हुई। भला मुझे अपना मित्र बतलाते समय तुम्हें कुछ भी हिचकिचाहट न मालूम हुई। राजाओं की मित्रता

× अग्निपुराण २७७-२० , मत्स्य १, १४०,६
+बृहदारण्यक उप०६,१,१,७,छांदोग्य उपनिषद १,८,१,५,२,१
'श्वेतहेतुर्हवा आरुणेय: पांचालानां परिसदमाजगाम।
स आजगाम जयवलिम प्रवाहणम् परिचय माणम्॥"

× शतपथ ५,५,३,३, तैत्तरीय ब्राह्मण १,८,४,१,२
— महाभारत आदि पर्व अ० १४१

का दसवां चक्रवर्ती राजा था ४ इसका नाम हरिषेण लिखा है। ब्रह्मदत्त नामक एक दूसरे सार्व भौम राजा का वर्णन है इसी प्रकार महा उम्मग जातक में △ उत्तर पांचाल के राजा का नाम चूलनी 'ब्रह्मदत्त' कहा गया है। इसने राज्य विस्तार करने में विशेष कौशल दिखाया था।

जैन ग्रथों के अनुसार महावीर स्वामी ने जनता को यहीं से धर्म का उपदेश दिया था। जैनियों के १३ वें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म कम्पिल में ही हुआ + था और वे सदा यहीं रहे। कम्पिल में शिकार खेलते समय ही उन्हें ससार से विरक्ति हो गई थी। स्वय ऋषभदेव ने अपना धर्मोपदेश काम्पिल्य नगरी में ही दिया था ∵। आत्रेय सहिता के रचयिता आचार्य अत्रिय ने अग्निवेश शिष्य को यहीं पर शल्य क्रिया की शिक्षा दी थी।

बौद्ध और जैन साहित्य में पचाल सम्बन्धी विवरण अनेक मिलते हैं प्रसिद्ध बौद्ध ग्रथ 'अगुतर निकाय' में वर्णित १६ महाजनपदो में पचाल का प्रमुख स्थान है। इस महाजनपद का पूरा २ वर्णन हमें जैन भगवती सूत्र में भी मिलता है। यह राज्य सघराज्य कहा गया है। कम्पिल इस की राजधानी थी। बौद्ध काल में सकिशा एक बड़ा तीर्थ बन गया था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षुणी उत्पला का नाम बौद्ध साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगा

सांख्यकार कपिल के प्रधान शिष्य आसुरि नामक आचार्य का आश्रम गगा तट पर यहीं था जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण में कई बार आया है। एतरेय ब्राह्मण ग्रथ की रचना भी पचाल में ही हुई। प्राय. सभी ऐतिहासिको का मत है कि सूत्र ग्रथों (श्रौत, धर्म, गृह्य) की रचना पचाल एवं कान्य कुब्ज प्रदेश में ही हुई।

महात्मा बुद्ध के पश्चात् लगभग एक शताब्दी तक पचाल स्वतन्त्र राज्य के रूप में रहा। चौथी शती में महापद्मनन्द ने उसे आधीन बनालिया। नदों के पश्चात क्रमश मौर्य और शुंग वशों के आधीन यह प्रान्त आगया। ऐसा ज्ञात होता है कि शुग काल में यह प्रदेश विशेष सुखी रहा। जो सामग्री यहा शुग कालीन मिली है वह अवश्य उन्नत अवस्था की सूचक है। यहा सद्रुगुप्त, सूर्यमित्र, फल्गुनमित्र, ध्रुवमित्र, विश्वामित्र, जयमित्र, इन्द्रमित्र, अग्निमित्र, भानुमित्र, भद्रघोस, जेठमित्र, भूमि मित्र आदि शासको के समय के सिक्के मिले हैं। इन मित्र वशी शासको का इन सिक्कों पर एक सीधी पक्ति में नाम और दूसरी ओर कोई देव प्रतिमा अकित है। ईसवी सन् के आरम्भ में उत्तर पंचाल का राजा अषाढसेन था जिसके समय के दो लेख कौशाम्बी के पास पभोसा में मिले हैं। एक लेख में असाढ़सेन को राजा बृहस्पतिसेन का मामा कहा है। मित्रवशी शासको के बाद अहिच्छत्र के एक राजा अच्युत का पता चलता है जिसको *समुद्र गुप्त ने अपने आधीन बनाया था* —

पचाल कुषाण और गुप्त राजाओं के पश्चात् मौखरी, गुर्जर, प्रतीहार, तथा गहरवाल वशी शासकों के अधिकार में रहा जिसका *वर्णन आगे प्रस्तुत किया जावेगा।*

बौद्ध कालीन युग में जो वर्णन जातकों द्वारा प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार पचाल व्यापार की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था। नदियों द्वारा सहस्रो नाविक व्यापारियों को लेकर आया जाया करते थे। उनके वर्णन के अनुसार पचाल प्रदेश अति धनी था। मकान पत्थर ईंट और लकड़ी तीनों के बनते थे। विनय पिटक में उस मसाले का वर्णन आया है जिससे मकानो पर यहां प्लास्टर किया जाता था।

---

४ (बौद्ध जातकों से यह ज्ञात होता है कि "स्वय तथागत काम्पिल्य में आये थे तब इसे किम्पिला कहते थे। सकाश्य एक दूसरा स्थान था जो गगा से दूर एक छोटी नदी के किनारे बसा था। कान्यकुब्ज से नदी द्वारा व्यापार होता था। तथागत ने अपनी माता माया देवी को उपदेश देने के लिये स्वर्गलोक में जाकर वास किया देव लोक से वह इसी नगरी में उतरे। सांकाश्य का मुख्य विहार बहुत सुन्दर था।")

× जै नप्रन्य—विविध तीर्थ कल्प

△ काम्पिल्यपुर तीर्थ कल्प—(स० २५)

+ (तिलोय पराणति, अ० २)

∵ महापुराण (५६८, ६८१)

× अहिच्छत्र के विशेष विवरण अहिच्छत्र नामक निवन्ध में मिलेंगे।

ए प्रस्ताव किया किन्तु कामना सफल न हुई। कुपित कर उन्हें सबको श्राप दिया अथवा यह भी कहा जाता है कि किसी औषधि का सबके ऊपर प्रयोग किया। सबकी व कन्याएं कुब्जी होगई। इन्हीं कुब्जी कन्याओं की इस यकर घटना के कारण इस स्थान का नाम 'कन्याकुब्ज' । 'कान्यकुब्ज' पड़गया। धीरे धीरे बिगड़ते हुए यह शब्द न्नौज या कनौज रह गया।

इसी वंश में पुन एक प्रतापी व्यक्ति गाधि हुए जो हाजाता है कि ऋषि विश्वामित्र के पिता थे। इनके नाम र भी कन्नौज का नाम 'गाधिपुर' या 'गाधिनगर' ड़ा *।

इसके पश्चात् कहा जाता है कि गाधि के पुत्र विश्वामित्र जब तपस्या के लिए चले गए तो राजा जनक के भाई कुशध्वज ने इसका भार सभाला अतएव इस स्थान का नाम कुशस्थली पड़ा। कुशस्थली नाम पड़ने के अन्य प्रमाण भी मिले हैं। + जिनमें कहा गया है कि यह स्थान कुश नामक घास की उत्पत्ति के लिए विशेष प्रसिद्ध था। यवाल की यज्ञस्थलियां सदा से विख्यात रही हैं। विदेशी यात्रियों ने भी यहा पर कुश के बड़े बड़े खेत देखे थे। अतएव यह भी कारण हो सकता है कि इस स्थान का नाम 'कुशस्थली' रहा। 'कुशिका' के नाम से भी यह स्थान प्रसिद्ध रहा है। गहड़वाल राजाओं ने जिन तीर्थों की रक्षा की थी। उनमें कुशिका का नाम भी है जिसे कान्यकुब्ज कहा गया है ह्वेनचांग ने इसका नाम 'कुसुमपुर' भी (पुष्पों का नगर) भी कहा है। हो सकता है कि अपने वैभव के दिनों में यह पुष्पों का नगर रहा हो और कुसुमपुर भी कहलाता रहा हो —।

कान्य कुब्ज केवल इस नगर का नाम न था किन्तु इस प्रदेश विशेष का नाम विख्यात रहा। महोदय नाम राजधानी का रहा और कान्य कुब्ज पूरे प्रदेश का—ऐसी भी स्थित पर्याप्त समय तक रही। मुसलमान इतिहासकारों ने इसे मध्यदेश की राजधानी कहा है। कान्यकुब्ज प्रदेश का नाम चलते चलते स्थान विशेष का नाम भी पड़गया और बाद में कन्नौज के नाम से अभिहित रहगया।

यह पहिले बताया जा चुका है कि कान्य कुब्ज नगर सर्व प्रथम अमावसु द्वारा बसाया गया था जिस समय कि प्रतिष्ठान पुर की स्थापना हुई थी। अन्य ग्रंथों में भी इसके और नाम भी मिलते हैं। कान्य कुब्ज महात्मय में इसे वाराणसी भी कहा गया है। एक ही नाम के कई स्थान हो सकते हैं किन्तु यह नाम कभी विशेष रूप से कन्नौज के लिए प्रचलित न हुआ। कहा जाता है कि राजा बलि की भी यह राजधानी रहा। यहां राजा बलि ने १०० यज्ञ किए थे। वामन अवतार यहीं हुआ था।

कन्नौज में बलिका कुआ नामक स्थान प्रख्यात रहा है। यहा अभी तक परम्परागत मेला लगता है। स्नानार्थ धर्म यात्री भी आया करते हैं और इसी प्राचीन परम्परा को जीवित किए हुए है पौराणिक गाथा के अनुसार राजा वेण की कथा भी इसी स्थान से सम्बद्ध है। वेणु की सात बहिने थीं—इनके नाम से लोक गाथा में सात देवियो ने स्थान ग्रहण किया जो अब भी कन्नौज की धार्मिक परम्परा में विद्यमान हैं—इनके नाम आज के ये हैं— (१) क्षमकरी देवी, (२) फूलमती देवी (३) देवी सदोह (४) गोवर्द्धिनी देवी (५) शीतला देवी (६) दुर्गा देवी (७) भगवती भवानी। कन्नौज में इन देवियो की पूजा अभी तक होती आरही है। सम्भव है इस धार्मिक परम्परा में ऐतिहासिक बीज स्थित हों।

इस प्रदेश का एक विवरण हमें महाभारत में और भी मिलता है जो विशेष उल्लेखनीय है। कौरव पांडवों के विग्रह के सम्बन्ध में एक बार युधिष्ठिर ने जो पांच नगर राज्य कौरवों से मांगे थे उनमें कन्नौज भी एक था—(१) कुशस्थली, + (२) विकशथला

---

* महोदयम् गाधिपुरम् कल्पद्रुकोष, शब्दकल्पद्रुम' राजतरंगिणी

+ कुशस्थलम् कान्यकुब्जम् अभिधान सग्रह २।१६३। शब्द कल्पद्रुम, हर्ष चरित पृ०६०३ महाभारत उद्योगपर्व – बलि। पृष्ठ २०७

श्री महाभारम् ३० –१६, १,७७

(६) माकन्दी (कम्पिल) (४) वार्णवत और पांचवां कोई थी। कुशस्थली + कन्नौज था। इस समय यह नगर अवश्य उन्नत रहा होगा।

यह भी कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध त्रयस्त्रिंशा स्वर्ग से स्वमेव कान्यकुब्ज में ही अवतीर्ण हुए थे। उसी स्थान पर एक स्तूप है जो भगवान बुद्ध के ८ स्तूपों में पाचवां स्तूप × माना जाता है। यहां पर भगवान बुद्ध ने उपदेश किया था जिसमें कहा था कि—शरीर एक बुलबुले के समान है जो किसी भी समय नष्ट हो सकता है।

मौर्य शासकों के समय कन्नौज एक उन्नत नगर की भांति बना रहा। पहिले जैसी उसकी प्रधानता न रही। अशोक की मृत्यु के पश्चात जब उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न होगया तो कन्नौज का भी कोई विवरण प्रमुख रूप से नहीं मिलता है। ईसा के १५० वर्ष पूर्व पतंजलि के महाभाष्य में हमें कान्य कुब्ज के पुनः दर्शन होते हैं। पतंजलि ने × अहिच्छत्री और कान्यकुब्जी महिलाओं के नाम लिए हैं। अतएव अवश्य ये दोनों स्थान तत्कालीन समाज में ख्यातिप्राप्त रहे होंगे। इस के पश्चात् पुनः ५ वीं शताब्दी में फाहियान द्वारा वर्णित हमें कन्नौज का वर्णन— मिलता है।

लगभग ईसा के ५०० वर्ष बाद गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हुआ इसके पश्चात् भारतीय राजनीति में विभिन्न राज्यवंशों ने अपनी अपनी सत्ता जमाना प्रारम्भ की उत्तरी भारत में पुष्य भूति वंश की विशेष प्रधानता हुई और दक्षिण में चालुक्य वंश की। ५००ई० के लगभग हूणों ने भारत पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये। सेनापति तोरमाण की अध्यक्षता में हूणों का प्रबल आक्रमण भारत पर हुआ। ये लोग भारत भूमि को रौंदते हुये मध्यभारत तक पहुंच गए। सन् ५१० ई० में भानु गुप्त ने मालवा के राजा यशोधर्मन की सहायता को मध्यभारत से निकाल दिया। इसके बाद का पुत्र मिहिकुल कुछ समय तक पंजाब, और सीमान्त प्रदेश में राज्य करता रहा। ५ के लगभग यशोधर्मन ने उसको हराकर और पंजाब से भी निकाल दिया। हूणों राजनैतिक संगठन का अभाव था अतएव साम्राज्य को दुर्बल स्थिति में भी भारत टिक सके। इतना अवश्य हुआ कि . . दिनो दिन निर्बल होता गया और प्रान्तीय सामंत होते गए। इसी समय मालवा में औलिकर वंश का यशोधर्मन बड़ा प्रतापी हुआ उसने राजस्थान से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से लेकर उड़ीसा तक जमाई गुजरात में वल्लभी राज्य की स्थापना। दक्षिण में पल्लव, चोल, कदम्बल प्रबल हो गए। महा और कर्नाटक में चालुक्य वंश की नींव पड़ी। इन प्रान्तीय राजाओं में कान्य कुब्ज मौखरि वंश और स्थानेश्वर (थानेश्वर) का पुष्यभूति सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। मौखरिवंश की राजधा कन्नौज × थी इस वंश के राजा ईशानवर्मन ने आंध्रों को जीता, चालुक्यों को परास्त किया और गौडों को र रक्खा था।

ऐसा ज्ञात होता है कि मौखरि वंश के प्रवर्तक हरिवर्मन थे जिन्होंने मौखरि वंश को विख्यात किया। हरिवमन के पुत्र आदित्यवर्मन हुए यह ब्राह्मण धर्म के विशेष उपासक थे और इन्होने कई यज्ञ भी किए। इन्होंने महाराजा की उपाधि धारण की और गुप्त वंशज हर्षगुप्त नामक राजा को बहिन हर्षगुप्त से विवाह किया था। मौखरिवंश के राजा संभवत पहिले गुप्तवंश के सम्राटों के सामन्त थे। जब गुप्त साम्राज्य निर्बल हुआ तो ये अपने प्रदेश के शासक बन बैठे। मौखरि वंश के प्रथम तीन राजा यही थे— हरि वर्मा, आदित्य वर्मा और ईश्वर वर्मा आदित्य वर्मा के पुत्र ईश्वर वर्मा का समय लगभग ५२४ ई० से ५५० तक हैं। ईश्वर वर्मा ने हूणों को परास्त करने में यशोधर्मन का साथ दिया था और

+ वाटर्स पृष्ठ ३३७

× कीलहोर्न—महाभाष्य ३३ पृष्ट।
बील कृत—फाहियान की यात्रा।

चतुर्भुजी देवी— कन्नौज (आठवीं शती)

(६) माकन्दी (कम्पिल) (४) वार्णवत और पांचवां कोई थी। कुशस्थली + कन्नौज था। इस समय यह नगर अवश्य उन्नत रहा होगा।

यह भी कहा जाता है कि भगवान् बुद्ध त्रयस्त्रिंशा स्वर्ग से स्वमेव कान्यकुब्ज में ही अवतीर्ण हुये थे। उसी स्थान पर एक स्तूप है जो भगवान बुद्ध के ८ स्तूपों में पांचवां स्तूप × माना जाता है। यहां पर भगवान बुद्ध ने उपदेश किया था जिसमें कहा था कि —शरीर एक बुलबुले के समान है जो किसी भी समय नष्ट हो सकता है।

मौर्य शासकों के समय कन्नौज एक उन्नत नगर की भांति बना रहा। पहिले जैसी उसकी प्रधानता न रही। अशोक की मृत्यु के पश्चात जब उसका साम्राज्य छिन्न भिन्न होगया तो कन्नौज का भी कोई विवरण प्रमुख रूप से नहीं मिलता है। ईसा के १५० वर्ष पूर्व पतंजलि के महाभाष्य में हमें कान्य कुब्ज के पुन दर्शन होते हैं। पतंजलि ने × अहिच्छत्री और कान्यकुब्जी महिलाओं के नाम लिए हैं। अतएव अवश्य ये दोनों स्थान तत्कालीन समाज में ख्यातिप्राप्त रहे होंगे। इस के पश्चात् पुन: ५ वीं शताब्दी में फाहयान द्वारा वर्णित हमें कन्नौज का वर्णन— मिलता है।

लगभग ईसा के ५०० वर्ष बाद गुप्त साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हुआ इसके पश्चात् भारतीय राजनीति में विभिन्न राज्यवंशों ने अपनी अपनी सत्ता जमाना प्रारम्भ की उत्तरी भारत में पुष्य भूति वंश को विशेष प्रधानता हुई और दक्षिण में चालुक्य वंश की। ५००ई० के लगभग हूणों ने भारत पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये। सेनापति तोरमाण की अध्यक्षता में हूणों का प्रबल आक्रमण भारत पर हुआ। ये लोग भारत भूमि को रौंदते हुये मध्यभारत तक पहुंच गए। सन् ५१० ई० में भानु गुप्त ने मालवा के राजा यशोधर्मन की सहायता से ... को मध्यभारत से निकाल दिया। इसके बाद ... का पुत्र मिहिरकुल कुछ समय तक पंजाब, और सीमान्त प्रदेश में राज्य करता रहा। ५२८ ई० के लगभग यशोधर्मन ने उसको हराकर और पंजाब से भी निकाल दिया। हूणों के राजनैतिक संगठन का अभाव था अतएव वे ... साम्राज्य की दुर्बल स्थिति में भी भारत टिक सके। इतना अवश्य हुआ कि ... दिनों दिन निर्बल होता गया और प्रान्तीय सामन्त ... होते गए। इसी समय मालवा में औलिकर वंश का राजा यशोधर्मन बड़ा प्रतापी हुआ उसने राजस्थान से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से लेकर उड़ीसा तक ... जमाई गुजरात में वल्लभी राज्य की स्थापना हुई, दक्षिण में अल्लव, चोल, कदम्बवंश प्रबल हो गए। महाराष्ट्र और कर्नाटक में चालुक्य वंश की नींव पड़ी। इन ... प्रान्तीय राजाओं में कान्य कुब्ज के मौखरि वंश और स्थानेश्वर (थानेश्वर) का पुष्यभूति ... सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। मौखरिवंश की राजधानी कन्नौज × थी इस वंश के राजा ईशानवर्मन ने आन्ध्रों को जीता, चालुक्यों को परास्त किया और गौडों को ... रक्खा था।

ऐसा ज्ञात होता है कि मौखरि वंश के प्रवर्तक हरिवर्मन थे जिन्होंने मौखरि वंश को विख्यात किया। हरिवर्मन के पुत्र आदित्यवर्मन हुए यह ब्राह्मण धर्म के विशेष उपासक थे और इन्होंने कई यज्ञ भी किए। इन्होंने महाराजा की उपाधि धारण की और गुप्त वंशज हर्षगुप्त नामक राजा की बहिन हर्षगुप्ता से विवाह किया था। मौखरिवंश के राजा संभवत पहिले गुप्तवंश के सम्राटों के सामन्त थे। जब गुप्त साम्राज्य निर्बल हुआ तो ये अपने प्रदेश के शासक बन बैठे। मौखरि वंश के प्रथम तीन राजा यही थे– हरि वर्मा, आदित्य वर्मा और ईश्वर वर्मा आदित्य वर्मा के पुत्र ईश्वर वर्मा का समय लगभग ५२४ ई० से ५५० तक है। ईश्वर वर्मा ने हूणों को परास्त करने में यशोधर्मन का साथ दिया था और

+ वाटर्स पृष्ट ३३७

× — कीलहोर्न—महाभाष्य ३३ पृष्ट।
बील कृत—फाहियान की यात्रा।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाग द्वारा कुछ विवरण यहां दिया जा रहा है। यह चीनी यात्री हर्ष के समय कन्नौज आया था। इस यात्री ने कन्नौज के वैभव की मनोरजक कहानी लिखी है। उसका कथन है :— "उत्तरी भारत का सर्वोन्नत नगर कन्नौज गगा के दोनो ओर बसा हुआ था चीनी यात्री के आगमन पर जो महोत्सव हुआ था उसमें २० देशो के राजा एकत्र थे। श्रमणो और ब्राह्मणो से सारा नगर भरा हुआ दिखाई देता था। गगा के पश्चिमी ओर एक सघाराम का निर्माण कराया गया था। इसके पूर्व में १०० फीट ऊंचाई का एक स्तम्भ बनवाया गया था जिसके बीच में भगवान बुद्ध की पूरी मूर्ति सोने द्वारा निर्मित स्थापित की गई थी। इसी समय यह महोत्सव २१ दिन तक चला था जिसमें भोजन और दान की समुचित व्यवस्था थी। सारा नगर सुगन्धित पुष्पों का अनोखा उपवन ज्ञात होता था। सोने और चांदी, हीरा, जवाहिरात आदि सामान्य जनता में सर्वत्र उपयोग में आते हुए दिखाई पड़ते थे। हाथियो और सुसज्जित सैनिको की भरमार थी। सम्राट के यहा कितनी ही विचार-परिषदें हुई थी जिनमें विद्वानो के विचार विमर्श हुआ करते थे। सारा नगर विद्या और कला का केन्द्र बन गया था। भारत भर में दूसरा ऐसा समुन्नत नगर उसे देखने को न मिला। नगर ३ मील से अधिक लम्बाई मे बसा हुआ था। १०० बौद्ध विहार ऐसे थे जिनमें लगभग दस हजार बौद्ध भिक्षु रहा करते थे। गगा द्वारा व्यापारी प्रयाग और काशी से आया जाया करते थे। सारा गगा तट नावों और नाविकों से भरा रहता था। आदि"।

सन् ६४८ई० में सम्राट् हर्ष की मृत्यु होगई। उसका कोई उत्तराधिकारी न था अतएव उसका मन्त्री अरुणाश्व अथवा अर्जुन कन्नौज का राजा हुआ। शासन में अव्यवस्था फैलने लगी। भारती इतिहास का गौरवमय युग समाप्त होगया। सारा देश पुनः छोटे छोटे राज्यो में बट गया। हर्ष के पश्चात् उसका मन्त्री भी चीनी राजदूत द्वारा पराजित किया गया। इसके पश्चात् कुछ समय का एक ऐसा अन्धकारमय काल आता है जिसमें कन्नौज के वास्तविक शासक का पता नहीं चलता है किन्तु ८ वी शताब्दी में यहां पुनः पुराने मौखरि वश का प्रादुर्भाव हुआ। इस वश का पुन. एक प्रतापी राजा यशोवर्मन् के नाम से हुआ है जिसने मगध, वंग, मलय, महाराष्ट्र मरु पन्जाब पर शासन किया। इसकी राजसभा में कन्नौज नगरी ने पुनः एक उच्चकोटि के साहित्यकार के दर्शन किए। इनका नाम भवभूति था। इन्होंने उत्तर राम चरित, महावीरचरित मालतीमाधव नाटक लिख कर संस्कृत साहित्य को धनी बनाया। इसी समय प्राकृत के अमर लेखक 'गोड वहो' के रचयिता वाक्पति राज हुए। यशोवर्मन को ७४० ई० के लगभग काश्मीर के राजा ललतादित्य से पराजित होना पड़ा। इसके पश्चात कन्नौज से मौखरि वश का इतिहास सदा के लिये लुप्तप्राय हो गया। यशोवर्माका समय ७२५ ई० से ७५० तक रख जा सकता है। इस के पश्चात् कन्नौज काश्मीर राज्य का अग बनकर रह गया।

काश्मीर के राजा ललितादित्य की मृत्यु ७६० ई० के लगभग हुई। इसके पश्चात् उसके सभी उत्तराधिकारी निर्बल शासक हुये। अतएव सन् ७६० ई० के पश्चात् कन्नौज का राज्य पुनः स्वतन्त्र होगया। काश्मीर के अन्तिम शासको में विनयादित्य जयापीड पुनः विख्यात शासक हुआ। उसका राज्य काल ७७९—८१० तक माना जाता है। इसने फिर काश्मीर की शक्ति को बढ़ाया और कन्नौज को फिर से जीता। इस समय कन्नौज में वज्रायुध नाम का राजा राज्य करता था। प्रसिद्ध नाटक कार राज शेखर ने अपनी कर्पूंमजरी में वज्रायुध को पचाल का सुविख्यात राजा बताया है। कन्नौज उसकी राजधानी थी। वज्रायुध का समय सन् ७७० के लगभग हो सकता है। जैन हरि वश के अनुसार हमें ज्ञात होता है कि इन्द्रायुध नाम के राजा ने कन्नौज की राजधानी पर ७८३-८४ में राज्य किया। इस के पश्चात चाक्रायुध हुआ। यह तीनो राजा एक ही वश के ज्ञात होते है। वास्तव में यशोवर्मा के पश्चात कन्नौज में ऐसे राजाओ का राज्य था जो 'आयुध-वशी' थे और जिनमें वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध नाम के राजा प्रसिद्ध हुए।

तल रामायण और बाल भारत आदि ग्रंथों की रचना की थी। महेन्द्रका राज्य १७ वर्ष तक रहा। इन का उत्तराधिकारी महीपाल हुआ जो एक कुशल शासक था। किन्तु महीपाल के शासन काल में अन्य राजा स्वतंत्र होने लगे इसी समय राष्ट्र कूट राजा इन्द्र ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया और कन्नौज जैसी सुदृढ़ नगरी को विध्वंस कर डाला। राष्ट्र कूटों के इस आक्रमण से गुर्जर प्रतिहारों की प्रतिष्ठा समाप्त प्राय हो गई। दशवीं शताब्दी के अन्त में प्रतिहार राजा राज्यपाल कन्नौज की गद्दी पर थे।

सन् ६७५ ई० के पश्चात् गजनी के बादशाह सुबुक्तगीन ने भारत पर आक्रमण किया। कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार राजा राज्य पाल ने अन्य राजाओं के साथ संगठन में सम्मिलत होकर विदेशी आक्रमण का सामना किया। खुर्रम नदी की घाटी में युद्ध हुआ और सुबुक्तगीन की विजय हुई।

सुबुक्तगीन के पश्चात् सन् १०१६ ई० म महमूद गजनी ने भारत पर एक भयकर आक्रमण किया। पंजाब होता हुआ वह एक लाख सैनिकों के साथ भारत के सर्व श्रेष्ठ नगर कन्नौज पर चढ़ आया। गुर्जर प्रतिहार राजा राज्यपाल को परास्त किया कन्नौज को बुरी तरह लूटा गया। महमूद ने केवल एक दिन में सारा नगर ले लिया। लगभग दस हजार मंदिर विध्वस कर दिए गए। सारा नगर राख की ढेर बन गया। हजारों वर्षों का वैभव मिट्टी के तले आगया। राज्यपाल ने डर कर महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। भारतीय राजाओं ने इसे सहन नहीं किया। फलस्वरुप चन्देल राजा गण्ड ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी और उसके पुत्र विद्याधर ने राज्य पाल को मार कर उसके पुत्र त्रिलोचन पाल को राज गद्दी पर बैठाया। जब ये समाचार महमूद गजनी ने सुना तो उसने पुन: कन्नौज पर आक्रमण किया। त्रिलोचन पाल डर कर भाग गया। इस वंश का अन्तिम राजा यशपाल था जो १०३६ तक कन्नौज पर रहा। ये राजा निर्बल थे और इनके साथ ही साथ कन्नौज की अवनति होती गई।

—"Mahmood saw the city whi h raised its head to the skies which in strength and sculpture might justly boast to have no equal" Muhamda's letter to the Governor of Gazani. Again "There are innumerable temples No other city can be constructed like this even in two centuries after a millions and millions of Dena-ia" But our Army destroyed the whole city in a short period

इसके पश्चात् सन १०८५ ई० में गहड़वाल वंश के राजा चन्द्रदेव ने कन्नौज को जीता और अपनी राजधानी बनाकर शासन प्रारम्भ किया। इस वंश का उदय मिर्जापुर जिले में हुआ था। ये लोग प्राचीन चन्द्रवंशी थे। इनकी पहिली राजधानी वाराणसी थी। राजा चन्द्रदेव ने काशी, अयोध्या, हस्तिनापुर और कन्नौज को अपने शासन में किया था। अतएव इतिहास में वह इन स्थानों का त्राता कहागया है। सन् ११०० में चन्द्रदेव की मृत्यु होगई। इसके पश्चात् एक दुर्बल शासक मदनपाल ने १११४ तक राज्य किया। इसका पुत्र गोविन्दचन्द्र १११४ में राजा हुआ। यह बड़ा प्रतापी था। इसने अपने राज्य का विस्तार भी किया और कन्नौज की उन्नति भी गोविन्दचन्द्र प्रांव थ प्राय काशी रहा करते थे। पंडितों का इनके यहा बड़ा आदर था। काशी गोविन्दचन्द्र के समय में विद्या का केन्द्र बन गई थी। इसका पुत्र विजयचन्द्र सन् ११५५ में कन्नौज का शासक बना और ११७० तक राज्य करता रहा सन् ११७० ई० में राजा जयचन्द्र कन्नौज की गद्दी पर आरुढ़ हुए।

जयचन्द की माता का नाम चन्द्रलेखा था जो कि 'रम्भा मंजरी' द्वारा ज्ञात होता है। जयचन्द का नाम एसा इसलिए पड़ा कि —जैसा कहा जाता है–जिस दिन इनके पितामह को दशार्ण प्रदेश में विजय प्राप्त हुई उसी दिन इनका जन्म हुआ था। जयचन्द को युवराज बनाने का समारोह बड़े धूम धाम से १६ जून ११६८ ई० (१०मी असाढ़ १२२४ वि०) कन्नौज में हुआ था।

दिल्ली में यवन शासन का प्रारम्भिक काल

१३वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की राजधानी (दि)ल्ली में गुलाम बादशाहों का शासन प्रारम्भ हो गया था। (कन्न)ौज और उसके आस-पास का प्रदेश गुलामों के अधिकार (में) आ गया, परन्तु फिर भी इस प्रदेश के राजपूत समय समय अपनी स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करते रहे। १३वीं (शता)ब्दी के मध्य में इस प्रदेश की स्थिति लग-भग अराज-(क)ता की थी। सारे प्रदेश में लुटेरों का बोल-बाला था। (क)म्पिल और भोजपुर इन लुटेरों के मुख्य गढ़ थे। इनका (आ)तंक यहा तक बढ़ा कि बलबन को स्वयं यहाँ आना (प)ड़ा। उक्त दोनो ही स्थानों पर उसने किले बनवाये और (प्र)देश को लुटेरों के आतंक से मुक्त किया। बलबन ने (इ)तना अच्छा प्रबन्ध कर दिया था कि इसके साठ वर्ष बाद (इस)का वर्णन करता हुआ जियाउद्दीन बर्नी लिखता है कि (स)ड़के चोरों और लुटेरों से खाली थीं।

मुहम्मद तुगलक के शासन-काल में एक बार फिर इस प्रदेश पर संकट आया। १३४० ई० में विद्रोही को दबाने के हेतु उसने कन्नौज से लेकर डलमऊ (तहसील जिला रायबरेली) तक का सारा प्रदेश उजाड़ डाला। इसके बाद समय समय पर कन्नौज और उसके आस-पास का प्रदेश तत्कालीन राजवंशों और उनके विरोधियों की सेनाओं का क्रीडा-क्षेत्र बना रहा। उपजाऊ होने के कारण सभी दल इसे अपने हाथ में रखना चाहते थे और संघ-संचालन की दृष्टि से भी इसका महत्व था। दिल्ली और जौनपुर के मध्य काफी समय तक सत्ता की जो खींचातानी चली उसमें इस प्रदेश का भाग्य इधर-उधर हिलता-डोलता रहा। खोर और कम्पिल के राजपूत लोग निरंतर अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करते रहे। बहलोल लोदी के समय में खोर के राठौर राजा रायकरन का प्रभाव काफी बढ़ गया था। बहलोल लोदी और जौनपुर के मध्य जो संघर्ष हुआ उसमें बहलोल का पक्ष काफी समय तक निर्बल रहा। इस कार्य में कम्पिल और शमसाबाद, जौनपुर के हाथों में रहे। अन्त में १४७८-७९ ई० में जाकर बहलोल, जौनपुर के राजा हुसेन को हरा पाया और यह सारा प्रदेश दिल्ली राज्य में मिला लिया गया। जौनपुर की गद्दी पर बहलोल का पुत्र बारबक लोदी बैठा। बहलोल के मरने के बाद उसके तृतीय पुत्र सिकंदर लोदी और बारबक के मध्य युद्ध हुआ, जिस में सिकंदर विजयी हुआ और दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। सिकंदर लोदी ने १५०० ई० में शमसाबाद के इमाद और सुलेमान फर्मुली नामक भाइयों को दे दिया।

सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। जौनपुर के साथ उसका जो संघर्ष हुआ उसमें कन्नौज का कुछ विशेष हाथ न रहा। इतना अवश्य हुआ कि जिस समय इब्राहीम की फौजें उसके भाई पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ रहीं थी, तो यहाँ पर उनमें आकर विरोधी दल के कई विद्रोही सम्मिलित हुए थे। शमसाबाद की स्थिति यथापूर्व रही।

जहीरुद्दीन मुहम्मद से मुहम्मद खाँ

जब इब्राहीम लोदी को हरा कर बाबर दिल्ली का बादशाह हुआ तो उसने अवध और कन्नौज इन दोनों प्रदेशों को अपने एक मित्र और सम्बन्धी मुहम्मद सुल्तान मिर्जा को दे दिया। परन्तु शीघ्र ही ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे यह सारा प्रदेश विद्रोहियों और विरोधियों के हाथ में चला जायगा। शमसाबाद से जो उसके सूबेदार मन्नुत मुहम्मद निजाबाजको हटा कर पठानों ने अपना आधिपत्य जमा ही लिया था। बाबर की बहादुरी और युद्ध कुशलता ने शीघ्र ही फिर इस प्रदेश को उसके अधिकार में ला दिया। शमसा-बाद को लेकर बाबर ने रणथम्भौर के किले के बदले में उसे विक्रमाजीत सिसोदिया को दिया। विक्रमाजीत के पास इस अदला-बदली को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा भी न था क्योंकि यदि वह ऐसा न करता तो उसकी भी वही दशा होती जो उसके पिता या मविनोराय की हुई थी।

बाबर की मृत्यु सन् १५३० ई० में हो गई। दिल्ली

लिये शीघ्र ही उसे पदच्युत कर दिया गया।

अकबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जहांगीर सन् १६०५ ई० में गद्दी पर बैठा। उसने सन् १६१० ई० में कन्नौज का शासन मिर्जा अब्दुर्रहीम, जो कि बैराम खां का पुत्र था, के हाथों में दिया। उस समय इस सारे प्रदेश में लुटेरों के कारण अत्यन्त अशान्ति फैली हुई थी। रहीम को इनको कठोरता से दबा देने की आज्ञा दी गई थी। परन्तु उन्हें इस कार्य को पूरा किये बिना ही दक्षिण जाना पड़ा। रहीम के बाद इस प्रदेश का शासन पिहानी के मीरन को दिया गया। इसकी मृत्यु सन् १६२० में हुई।

मुहम्मद खां बंगश— सन् १६२० ई० से लेकर सन् १७०७ ई० तक, अर्थात जहांगीर का शेष राज्य काल, शाहजहां का शासन काल एवं औरंगजेब के शासन काल के समय इस प्रदेश में कोई उल्लेखनीय घटना घटित नहीं हुई। हां इतना अवश्य है कि इसी काल में सन् १६६५ ई० में मऊ रशीदाबाद में मुहम्मद खां नाम के एक बंगश पठान ने जन्म लिया जो कि आगे चल कर इस प्रदेश के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस व्यक्ति ने एक प्रकार से इस प्रदेश में एक नय राज्य की नींव डाली थी। लगभग अट्ठाइस वर्ष की अवस्था में यह पठानों के उन जत्थों में सम्मिलित हो गया जो बुंदेलखन्ड इत्यादि के राजाओं की ओर से धन लेकर किराय के सैनिकों की भांति लड़ा करते थे। अपनी योग्यता एवं वीरता के कारण शीघ्र इसका नाम एवं प्रभाव फैलने लगा और इसने अपना एक सुदृढ़ दल सगठित कर लिया। यद्यपि मुहम्मद खां पर्याप्त प्रभाव शाली हो चुका था परन्तु फिर भी सन् १७१२ ई० के पूर्व उसे किसी बड़े काम में अपनी योग्यता का परिचय देने का अवसर प्राप्त न हुआ। इसी वर्ष फर्रुखसियर का जहांदारशाह से राज्य के लिये युद्ध हुआ था। फर्रुखसियर उस समय फतेहपुर जिले के खजुहा नामक स्थान पर था। यहीं से उसने मुहम्मद खां को अपनी ओर होकर लड़ने का निमंत्रण भेजा। आगरे के समीप सामूगढ़ का जो युद्ध फर्रुखसियर और जहांदारशाह में १ जनवरी सन् १७१३ ई० को हुआ। इसमें मुहम्मद खां १२००० लोगों के साथ फर्रुखसियर की ओर से लड़ा और अच्छी वीरता का परिचय दिया। इन सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उसको नवाब की पदवी तथा बुन्देलखण्ड और इस प्रदेश में जागीर प्राप्त हुई। इसके बाद मुहम्मद खां ने सफलता पूर्वक अनूपशहर के राजा मेवा पर आक्रमण किया और इलाहाबाद के गिरधर बहादुर के विरुद्ध जो आक्रमण हुआ था उसमें सहायता की। तदनन्तर वह घर लौट आया और यहां आकर मुहम्मदाबाद और कायमगज को बसाने के कार्य में लगगया। इनमें से प्रथम मुहम्मदाबाद तो फर्रुखाबाद से लगभग १४ मील दूर है और इसमें खिलमापुर, कबीरपुर, रोहिला, मुहम्मदपुर तथा तकीपुर इन पांच गांवों की भूमि सम्मिलित है। एक ऊंचे टीले पर जिसे काल का खेड़ा कहा जाता है नवाब ने एक दुर्ग बनवाया जिसके कि अब केवल खंडहर ही विद्यमान है। इसका उच्चतम स्थान ट्रिगोनोमीट्रिकल सर्वे (*Trignometrical Survey*) के काम में आता था। ऐसा कहा जाता है कि फर्रुखसियर यह सुन कर कि मुहम्मद खां ने अपने नाम से नगर की नीव डाली है असन्तुष्ट हुआ। उसके असन्तोष को दूर करने के लिए ही मुहम्मद खां ने फर्रुखाबाद बसाने की घोषणा की और बसाया। यह नगर भीखम पुरा देवठान की भूमि पर बसाया गया। दूसरा स्थान कायमगंज मुहम्मद खां ने अपने बड़े बेटे कायम खां के नाम से बसाया। यह स्थान मऊ-रशीदाबाद से अधिक दूर नहीं है और इसमें मऊ-रशीदाबाद, चलौली, कुबेरपुर तथा साभनपर की भूमि सम्मिलित है।

ऊपर मुहम्मद खां के द्वारा बसाय हुए जिन नगरों के बारे में लिखा जा चुका है इन सब में आगे चल कर फर्रुखाबाद अत्यन्त महत्वशाली हो गया। इसका महत्व यहां तक बढ़ा कि हर्ष के युग से महत्वशाली चले आये हुए कन्नौज का महत्व तक इसकी तुलना में इतना कम हो गया कि इसी समय रेवरेन्ड टनट ने जो इस प्रदेश में यात्री के रूप में आये थे लिखा है कि कन्नौज का प्रान्त नितांत शून्य है जहां इधर उधर दूर दूर तम्बाकू के खेत दिखाई पड़जाते हैं वास्तव में इस समय तक कन्नौज की प्राचीन गरिमा नवीन आक्रमणकारियों द्वारा इतनी ध्वस्त की जा चुकी थी कि जिससे खंडहर भी शेष न रह पाए थे। सन् १८०० ई० में पुनः एक अंग्रेज मेजर थान ने

इसलिये शीघ्र ही उसे पदच्युत कर दिया गया।

अकबर की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जहांगीर सन् १६०५ ई० में गद्दी पर बैठा। उसने सन् १६१० ई० में कन्नौज का शासन मिर्जा अब्दुर्रहीम, जो कि बैराम खां का पुत्र था, के हाथो में दिया। उस समय इस सारे प्रदेश में लुटेरो के कारण अत्यन्त अशान्ति फैली हुई थी। रहीम को इनको कठोरता से दबा देने की आज्ञा दी गई थी। परन्तु उन्हे इस कार्य का पूरा किए बिना ही दक्षिण जाना पड़ा। रहीम के बाद इस प्रदेश का शासन पिहानी के मीरन को दिया गया। इसकी मृत्यु सन् १६२० में हुई।

मुहम्मद खाँ बंगश— सन् १६२० ई० से लेकर सन् १७०७ ई० तक, अर्थात जहांगीर का शेष राज्य काल, शाहजहां का शासन काल एव औरंगजेब के शासन काल के समय इस प्रदेश में कोई उल्लेखनीय घटना घटित नहीं हुई। हां इतना अवश्य है कि इसी काल में सन् १६६५ ई० में मऊ रशीदाबाद में मुहम्मद खां नाम के एक बंगश पठान ने जन्म लिया जो कि आगे चल कर इस प्रदेश के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस व्यक्ति ने एक प्रकार से इस प्रदेश में एक नय राज्य की नींव डाली थी। लगभग अट्ठारह वर्ष की अवस्था में यह पठानो के उन दलों में सम्मिलित हो गया जो बुन्देलखन्ड इत्यादि के राजाओं की ओर से धन लेकर किराय के सैनिको की भांति लड़ा करते थे। अपनी योग्यता एवं वीरता के कारण शीघ्र इसका नाम एव प्रभाव फैलने लगा और इसने अपना एक सुदृढ़ दल सगठित कर लिया। यद्यपि मुहम्मद खां पर्याप्त प्रभाव शाली हो चुका था परन्तु फिर भी सन् १७१२ ई० के पूर्व उसे किसी बड़े काम में अपनी योग्यता का परिचय देने का अवसर प्राप्त न हुआ। इसी वर्ष फर्रुखसियर का जहांदारशाह से राज्य के लिये युद्ध हुआ था। फर्रुखसियर उस समय फतेहपुर जिले के खजुहा नामक स्थान पर था। वहां से उसने मुहम्मद खां को अपनी ओर होकर लड़ने का निमंत्रण भेजा। आगरे के समीप सामूगढ़ का जो युद्ध फर्रुखसियर और जहांदारशाह में १ जनवरी सन् १७१३ ई० को हुआ। इसमें मुहम्मद खां १२००० लोगों के साथ फर्रुखसियर की ओर से लड़ा और अच्छी वीरता का परिचय दिया। इन सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप उसको नवाब की पदवी बुन्देलखण्ड और इस प्रदेश में जागीर प्राप्त हुई। बाद मुहम्मद खां ने सफलता पूर्वक अनूपशहर क मेवा पर आक्रमण किया और इलाहाबाद के f बहादुर के विरुद्ध जो आक्रमण हुआ था उसमें स की। तदनन्तर वह घर लौट आया और यहां मुहम्मदाबाद और कायमगंज को बसाने के काय में लग इनमें से प्रथम मुहम्मदाबाद तो फर्रुखाबाद से लगभग मील दूर है और इसमें किलमापुर, कबीरपुर, रो *मुहम्मदपुर तथा तकीपुर इन पांच गांवों को* सम्मिलित है। एक ऊंचे टीले पर जिसे काल का खड़ जाता है नवाब ने एक दुर्ग बनवाया जिसके कि अब खंडहर ही विद्यमान है। इसका उच्चतम ट्रिग्नोमीट्रिकल सर्वे (*Trignometrical Survey*) काम में आता था। ऐसा कहा जाता है कि फर्रुख यह सुन कर कि मुहम्मद खां ने अपने नाम से नगर की डाली है असन्तुष्ट हुआ। उसके असन्तोष को दूर के लिए ही मुहम्मद खां ने फर्रुखाबाद बसाने की घो की और बसाया। यह नगर भीक्स्मपुरा देवठान की पर बसाया गया। दूसरा स्थान कायमगंज मुहम्मद ख अपने बड़े बेटे कायम खां के नाम से बसाया। यह मऊ–रशीदाबाद से अधिक दूर नहीं है और इसमें रशीदाबाद, चलौली, कुबेरपुर तथा साभनपुर को सम्मिलित है।

ऊपर मुहम्मद खां के द्वारा बसाये हुए जिन के बारे में लिखा जा चुका है इन सब में आगे चल फर्रुखाबाद अत्यन्त महत्वशाली हो गया। इसका यहां तक बढ़ा कि हर्ष के युग से महत्वशाली आये हुए कन्नौज का महत्व तक इसकी तुलना में इ कम हो गया कि इसी समय रेवरेन्ड टमेंट ने जो इस में यात्री के रूप में आये थे लिखा है कि कन्नौज का नितांत शून्य है जहां इधर उधर दूर दूर तम्बाकू के दिखाई पड़जाते हैं वास्तव में इस समय तक कन्नौज प्राचीन गरिमा नवीन आक्रमणकारियो द्वारा इतनी की जा चुकी थी कि जिसके खंडहर भी शेष न रह थे। सन् १८०० ई० मे पुन एक अंग्रेज मेजर था

बुला लिया गया। ६ दिसम्बर सन् १७३२ ई० को वह लौट कर आगरे पहुंचा। इसके बाद अगले चार वर्षों में वह मराठों के विरुद्ध कई आक्रमणों में सम्मिलित हुआ, इसके अतिरिक्त जून सन् १७३३ ई० में भगवन्त राय पर किये गये आक्रमण में भी उसने पूरा सहयोग दिया। इन सब सेवाओं के पुरस्कार के रूप में उसे इलाहाबाद की सूबेदारी एक बार फिर मिली परन्तु कुछ ही मास बाद यह फिर उसके हाथ से चली गई। इस बात से मुहम्मद खां असन्तुष्ट हो गया और यही कारण था कि सन् १७३६ ई० में नादिरशाह के आक्रमण के समय वह तटस्थ रहा। इसके बाद इसी कारण से उसने दरबार भी छोड़ दिया। परन्तु उसके पीछे ही पीछे कुछ सरकारी अफसर उसकी जायदाद को छीनने के लिये भेजे गये। इन लोगों को मुहम्मद खां के तृतीय पुत्र अकबर खा ने राघो-का-सिकन्दरा नामक स्थान पर, जो अलीगढ के समीप है हरा दिया।

मुहम्मद खां सन् १७४३ ई० में अस्सी वर्ष की अवस्था में मरा। उसकी मृत्यु के समय उसके अधिकार में लगभग उत्तर मे कोइल से लेकर दक्षिण में कड़ा तक का सारा दोआब का प्रदेश,जिसमें पूरा फर्रुखाबाद, कानपुर का पश्चिमी अर्धांश, दो छोटे परगनों को छोड़ कर सम्पूर्ण एटा जिला, बदायूं के दो परगने शाहजहांपुर का एक परगना तथा अलीगढ़ एवं इटावा के भाग सम्मिलित थे। परन्तु उसके अधिकृत क्षेत्र की सीमायें अत्यन्त परिवर्तनशील रही हैं। उदाहरणार्थ कन्नौज जो कि सन् १७२० ई० में उसके पुत्र कायम खा के हाथ में था। उसके बाद सन १७३६ ई० तक एक के बाद एक कई हिन्दुओं के हाथ में रहा सक्षेप में यह फर्रुखाबाद नगर के बसाने वाले तथा यहां के इतिहास मे सर्व प्रमुख व्यक्ति का जीवन चरित्र है।

मुहम्मद खां के पश्चात्–मुहम्मदखां बंगश की मृत्यु के अनन्तर उसका ज्येष्ठ पुत्र कायम खां निर्विरोध उसका उत्तराधिकारी हो गया। सन १७४२ ई० मे अवध का सूबेदार सफ़दर जंग वज़ीर हो गया। यह बंगश परिवार एवं कायम खां के पुराने विरोधियों में से था। उसने कायम खां को अपने चक्र में फासने का प्रयत्न किया और इसमें सफल भी हुआ। उसने एक ओर तो कायम खां से यह वादा किया कि यदि वह रोहिलों को भली भांति दबा लेगा तो उसे रुहेलखन्ड का सूबेदार बना दिया जाय गा और दूसरी ओर रोहिलों को कायम खां के विरुद्ध उकसाया कायम खां के कुछ पुराने सेवकों ने उसे यह कह कर मना भी कियाकि इसमें सफदरजंग की कुछ कूट नीति है परन्तु महमूद खां अफ़रीदी की राय से उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार करना ही उचित समझा। रुहेल खन्ड मुख्यतः इस समय हाफिज रहमत खा के अधिकार में था जो कि स्वर्गीय नवाब अली मुहम्मद के पुत्रों की ओर से प्रबन्ध देखता था। यद्यपि प्रारम्भ में कायम खां ने शान्ति पूर्ण ढंग से काम निकालने का भी प्रयत्न किया परन्तु रुहेले तो स्वयं सफदर जंग के भड़काये हुए थे अंत में १२ नवम्बर सन १७४८ ई० को कायम खा ने प्रस्थान किया और कादिरगंज के समीप गंगा पार करके रुहेलखन्ड में प्रविष्ट हुआ। २१ नवम्बर को बदायूं से ४ मील दक्षिण-पूर्व दौरी और रसूलपुर गावों के मध्य दोनों सेनाओं का सामना हुआ। कायम खां एक नाले के किनारे पर बुरी तरह फस गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कायम खां अन्य कई बंगश नेताओं के साथ मारा गया और उसकी सेना तितर बितर हो गई। रुहेलों ने गंगा के बांये किनारे पर स्थित बंगशों के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। केवल वह प्रदेश बंगशों के अधिकार में रह गया जो पहले अलीगढ़ तहसील के अन्तर्गत था। इस प्रदेश की रक्षा का श्रेय एक अज्ञात चेले को है जिसने अत्यन्त वीरता पूर्वक युद्ध करके रुहेलों को पीछे लौटने के लिये बाध्य कर दिया।

कायमखां की इस प्रकार आकस्मिक मृत्यु हो जाने के बाद अपनी मां बीबी साहिबा के कहने से मुहम्मदखां का दूसरा पुत्र इमाम खां नवाब बनाया गया। इस का नवाबी का काल भी अत्यन्त अल्प था। बीबी साहिबा ने अपनी स्थित दृढ़ करने के लिये मराठों की भी सहायता लेनी चाहिये परन्तु सफल न हो सकी। दिसम्बर सन् १७४६ को सफदर जंग के कहने से बादशाह अहमद शाह बंगशों

बात के लिए इलाहाबाद आज्ञा भेज दी कि मुहम्मद खां के पाचों पुत्रों का वध कर दिया जाय। यह हत्यायें वहां पर उसके पुत्र शुजाउद्दौला ने अपने सामने करवाईं। इधर अहमद खां भी शीघ्रता से सफदरजंग का सामना करने के लिये आगे बढ़ा और रामचतौनी के मैदान में दोनों की मुठभेड़ हुई। यह स्थान सहावर से सात मील पूर्व तथा पटियाली से पांच मील पश्चिम में स्थित है। १३ सितम्बर सन् १७५० ई० को युद्ध प्रारम्भ हुआ और सफदरजंग के सहायक इस्माइल खां और सूरजमल जाट ने अहमद खां के सेनापति रुस्तम खां अफ्रीदी को बुरी तरह हराया। रुस्तम खां स्वयं भी अपनी जान से हाथ धो बैठा। अहमद खां ने यह समाचार सुनकर अपने सैनिकों को बहुत प्रकार से समझाया। इसबार के युद्ध में यद्यपि नूरुलहसन बिलग्रामी तथा मुहम्मद अली खां ने बहुत प्रयत्न किए परन्तु पठानों की मार के आगे वे टिक न सके। इसी समय शाहजहांपुर से आने वाली एक टुकड़ी ने पीछे से वजीर की सेना पर आक्रमण कर दिया। तथा सफदरजंग स्वयं भी गले में गोली लगने से घायल हो गया और उसका साथी नवाब इशाक खां युद्ध क्षेत्र में काम आगया। इस दुरवस्था में शाही सेना टिक न सकी और भाग खड़ी हुई। सफदरजंग को किसी प्रकार सुरक्षित अवस्था में मारहेरा तक लाया जा सका। इधर जब सूरजमल जाट और इस्माइल बेग रुस्तम खां को विजय कर लौटे तो उन्होंने देखा कि युद्ध का सारा स्वरूप ही परिवर्तित हो गया है, परन्तु ऐसी अवस्था में अब हो भी क्या सकता था। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि अहमद खां अलीगढ़ में कुइल से लेकर कानपुर में अकबरपुर-शाहपुर तक के सारे प्रदेश का स्वामी होगया। इस के बाद उसने अवध विजय का प्रबन्ध करना प्रारम्भ किया। दिल्ली की ओर तो फिर वह न बढ़ा क्योंकि वहां से सन्धि पत्र आ गया था परन्तु उसका पुत्र महमूद लखनऊ की ओर बढ़ा। शादी खां के सेनापतित्व में एक दूसरी सेना इलाहाबाद की ओर बढ़ी। मन्सूर अली को फफूंद का शासक बना दिया गया तथा जुल्फिकार खां को शम्साबाद और छिबरामऊ का। इधर इलाहाबाद का युद्ध चलता रहा। बादशाह की ओर से मराठों और सूरजमल जाट की सहायता फिर मांगी गई। मार्च सन् १७५१ ई० में शादिल खां को कुइल से निकाल दिया गया। इस बात की सूचना अहमद खां को मिलते ही वह फर्रुखाबाद की ओर लौट पड़ा। इस शीघ्रतापूर्वक लौटने का फल उसकी सेना पर बहुत बुरा हुआ। किराए के बहुत से सैनिक उसकी शक्ति को निर्बल होता समझे और मार्ग से भाग गए। फर्रुखाबाद पहुंचने तक अहमद खां के साथ इतने थोड़े सैनिक रह गये थे कि जो फर्रुखाबाद की रक्षा के लिए भी पर्याप्त न थे। जहां पर आजकल फतेहगढ़ स्थित है उसी स्थान पर एक छोटे किले के आस पास किले बन्दी की गई। इधर मराठे दोआब में लूटमार मचाते हुए फर्रुखाबाद तक आ पहुंचे। उन्होंने आकर कासिम बाग में डेरा डाल दिया। वजीर शृंगीरामपुर पहुंच गया। शृंगीरामपुर से उसने नावों का पुल बांध कर गंगापार करने का प्रयत्न किया परन्तु लाला श्यामसिंह जो कि गंगा के दूसरी ओर था, उसने उसे ऐसा न करने दिया। अब स्थिति ऐसी थी कि दोनों ही दल के लोग अपने अपने स्थान पर जम गये। एक मास तक यही दशा चलती रही। इसी बीच में सादुल्ला खां के नेतृत्व में १२००० सेना नवाब की सहायता को रुहेलखन्ड से आ पहुंची। अहमद खां की इच्छा थी कि जब सादुल्ला खां और उसकी सेनाएं मिल जाय तभी मराठों से संघर्ष लिया जाय परन्तु सादुल्ला खां ने मूर्खतापूर्वक पहले ही आक्रमण कर दिया फल यह हुआ कि प्रारम्भ में थोड़ी सफलता होने के बाद भी मराठों ने उसे पराजित कर दिया। सादुल्ला खां की पराजय से नवाब के दल में निराशा फैल गई। नवाब ने मराठों का सामना करने के स्थान पर पीछे हटना ही श्रेयस्कार समझा। अपने परिवार एवं कुछ अन्य चुने हुए लोगों को साथ लिए हुए वह फर्रुखाबाद से भाग निकला कुम्हरौल में गंगापार करने के बाद उसने औंला नामक स्थान पर रुहेलों की शरण ली।

इसके बाद सन् १७५१ ई० में उसने एक बार फिर फर्रुखाबाद प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु उसे फिर कुमायूं की ओर भागना पड़ा। कई मास तक यहीं से वह मराठों का सामना करता रहा। इसी समय सम्पूर्ण देश में अहमद शाह 'अब्दाली के आक्रमण

ाभिभक्त सेवक था। इधर अहमद खां की मृत्यु का
ाचार पाकर बादशाह ने जोकि इस समय कन्नौज में
हिसामुद्दीन को फर्रुखाबाद विजय के लिए भेजा।
नो सहायता करने के लिए उसने महादजी सिन्धिया
। भी सूचना भेजी। खुदागंज होता हुआ बादशाह
र्रुखाबाद आ पहुंचा और नगर को घेर लिया।
ाफरुद्दौला ने एक ओर तो पठानो को जमा करना प्रारम्भ
त्या और दूसरी ओर बादशाह को सन्धि के लिए लिखा।
जफ खां जो कि उस समय शाही सेना में था से,भी इस
ात का प्रयत्न किया गया कि सन्धि हो जाय। इस कार्य
उसे सफलता भी हुई। मुजफ्फर जंग छः लाख की भेंट
ादशाह को और एक लाख की भेंट नजफखां को देकर
ापने पिता का प्रदेश और पदवी पा गया। परन्तु अत्यन्त
ीघ्र एक नया सकट सामने आया। मुर्तजा खां और
ाब्दुल मजीद खा के नेतृत्व में एक विद्रोह उठ
ड़ा हुआ जिसमें कायम खां की विधवा
भी सम्मिलित थी। विद्रोहियों ने अमेठी को अपना केन्द्र
बना रक्खा था। फकरुद्दौला ने अचानक अमेठी पर
ाक्रमण कर दिया और मुर्तजाखां को पकड लिया।
मुर्तजाखा कैद में डाल दिया गया और शीघ्र ही उसका
देहान्त हो गया। परन्तु इसके बाद जल्दी ही उसके एक
सहयोगी ने फकरुद्दौला का वध कर दिया।

फकरुद्दौला की मृत्यु के बाद उसका स्थान रहमत
खां ने ले लिया। सन् १७७३ ई० में मुजफ्फर खां न
शुजाउद्दौला से मिल कर मराठो को दक्षिणी परगनों से
निकाल दिया। इसके बाद फर्रुखाबाद अवध के आधीन हो
गया अलमास अली खां इस प्रदेश का (लखनऊ से नियुक्त)
प्रसिद्ध शासक हुआ है। उसकी प्रमुख नीति यह थी कि
उसने अपने अधीनस्थ लोगो को पुराने राजपूतों की भूमि
पर अधिकार कर लेने दिया। तिरवा, ठटिया के राजा और
बिशनगढ़ के चौधरी इसी नीति के परिणाम स्वरूप
यहां पर जम गये। काली नदी के उत्तर में जहां पर
बंगश नवाब का शासन था इस प्रकार के तालुके न थे।
यही कारण था कि काली नदी के बायें किनारे पर रहने
वाले लोगों की शासकों के कारण इतनी दुरवस्था
न थी जितनी दाहिने किनारे वालों की। इसके बाद सन

१७७४ ई० में केवल दो प्रमुख घटनायें हुईं। एक तो
अंगरेजों और रुहेलों का कटरा का युद्ध, जिसमें हाफिज
रहमत खां मारा गया और दूसरा बगदपुरा के विद्रोही
सैनिकों का मुजफ्फरजंग द्वारा दमन जो कि उसने कटरा
के युद्ध से लौटकर किया था। यह कार्य उसने उन सैनिकों
के द्वारा किया था जो कि विशेष शिक्षा प्राप्त थे और
लखनऊ से लाये गये थे।

फरुखाबाद में अंग्रेज इसी समय से इस प्रदेश से
अंगरेजों का सम्बन्ध हुआ। फतेहगढ़ का बजार और छावनी
भी इसी समय में बनी। सन १७७५ ई० में अवध के
नवाब असफद्दौला ने फैजाबाद में जो सन्धि अंग्रेजों से की
थी उसके अनुसार कम्पनी की सेना का अवध
प्रदेश में रहना निश्चित हुआ था। इसके बाद असफद्दौला
ने दुबारा ६ बटालियन सैनिक तोपखाना तथा घुड़सवारो
की माग की। यह सेना सन१७७७ ई० में कम्पनी की
सेना के साथ सम्मिलित करके फतेहगढ़ में रक्खी गई। यह
अस्थाई ब्रिगेड कही जाती थी। और इसका वार्षिक व्यय
२३ लाख रुपये था। सन १७७९ई० में नवाब ने इस भारी
व्यय के विरुद्ध कहा भी और चाहा कि इससे उसे मुक्त
कर दिया जाय परन्तु उसकी एक न सुनी गई। १९
सितम्बर सन १७८१ ई० में वारेन हेस्टिंग्ज ने इस
अस्थाई ब्रिगेड के कम्पनी प्रदेश में लौटा लेने की बात भी
की परन्तु इसे पूरा न किया। लार्ड कार्नवालिस से भी
इसके लिये याचना की गई परन्तु इसका कुछ फल न
निकला। फर्रुखाबाद से चार लाख रुपया वार्षिक जो
कर अवध जाता था वह भी इसी
ब्रिगेड के व्यय में काट लिया जाता था। जब कुछ दिनों
के लिए यह रुपया न दिया जा सका तो यही दोष निकाल
कर मई सन् १७८० ई० में यहां एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रख
दिया गया। कार्नवालिस के गवर्नर जनरल हो जाने के
बाद इतना अवश्य हुआ कि इस रजीडेन्ट को वापिस बुला
लिया गया। वारेन हेस्टिंग्स पर जो आरोप लगाये गए थे
उनमें से पांचवां आरोप फर्रुखाबाद के विषय में उपर्युक्त
बातों को लेकर ही था। इस काल में इस प्रदेश की दशा
शोचनीय थी। नवाब और उसके मन्त्री, लखनऊ

सहायता आ पहुँची जो कि आशातीत शीघ्रता से लार्ड लेक की सहायता से फर्रुखाबाद पहुँचा था इसके बाद इस प्रदेश पर फिर आक्रमण नहीं हुआ परन्तु फिर भी फर्रुखाबाद और यह प्रदेश हथियार बनाने के कारखाने के रुप में प्रसिद्ध बना रहा।

सन् १८१३ ई० में बहुत अधिक मद्य पान से नासिरजंग की मृत्यु हो गई इसके बाद उसका दश वर्षीय पुत्र खादिम हुसेन शौकत-ए० जंग की उपाधि धारण कर नवाब हुआ। यह भी सन् १८२३ ई० में चेचक से देहली में मर गया। मृत्यु के समय यह तजम्मुल हुसेन नामक एक दुधमुहे बच्चे का पिता था। तजम्मुल हुसेन सन् १८४६ ई० में निस्सन्तान मरा और उसके बाद उसका चचेरा भाई तफज्जल हुसेन नवाब हुआ।

गदर.—लगभग आधी शताब्दी के बाद फर्रुखाबाद के जिले ने प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम की अशान्ति देखी। इस वर्ष के प्रारम्भ से ही अशान्ति फैलना प्रारम्भ हो गई थी क्योंकि यह किवदन्ती शीघ्रता से फैल रहीथी कि अग्रेज सरकार मुद्रा का मूल्य घटाने के लिये और जनता को धर्मभ्रष्ट करने के लिये चादी का पर्त चढ़ा हुआ चमड़ का सिक्का चलाने वाली है। इसके अतिरिक्त मिलावटी आटे और कुओं को भ्रष्ट करने की कथायें चल ही रहीं थीं चर्बी वाले कारतूसों की कथा सम्पूर्ण भारत में तो फैली ही हुई थी और फर्रुखाबाद भी इसका अपवाद न था। परन्तु इतना सब होते हुये भी स्थिति ऐसी थी कि यदि सिपाही विद्रोह को शीघ्रता पूर्वक दबा दिया गया होता तो जनसाधारण में विद्रोह न होता।

मेरठ के विद्रोह का समाचार लगभग चार दिन बाद फतेहगढ़ पहुँचा और यहां के अग्रेजो ने तुरन्त परिस्थिति की भयकरता को समझ लिया। १४ मई को मजिस्ट्रेट मि० प्रोबिन ने एक मीटिंग बुलाई और यह निश्चय किया कि खजाना इत्यादि प्रमुख स्थानों पर सैनिक बढ़ा दिये जायें और छुट्टी गये हुये सैनिकों को शीघ्रता से कार्य पर बुला लिया जाय। लगभग एकसप्ताह तक पूर्ण शान्ति रही परन्तु यह शान्ति तूफान के पहिले की शान्ति थी १० न० नेटिव इनफेन्ट्री जो कि कर्नल जी० ए० स्मिथ की आधीनता में यहाँ पर थी यद्यपि स्वमिभक्ति की शपथ खा रही थी। फिर भी गुप्त रूप से यह पता चला कि सैनिक केवल अवसर की बाट जोह रहे है। मई के तीसरे सप्ताह में शाहजहापुर के विद्रोह की भयकर सूचना फतेहगढ़ के अग्रेजों के पास पहुँची। कई सौ सैनिक इस बात के लिये भेजे गये कि विद्रोही रामगगा पार न कर सकें। कई दिन तक फिर पूर्ण शान्ति रही और भेजे हुये सैनिक लौट आये। २२ मई को यह सूचना प्राप्त हुई कि ९ न० नेटिव इनफेन्ट्री ने अलीगढ़ में विद्रोह कर दिया है अलीगढ़ से विद्रोह का प्रभाव एटा की ओर चला। फतेहगढ़ में मि० प्रोबिन ने यह अनुमान लगा लिया कि अब फर्रुखाबाद भी बच न सकेगा और इसलिए उसने एक विशेष अधिकारी को अलीगज में शान्ति रखने के लिए भेज दिया। यह व्यक्ति जो अलीगज भेजा गया था। मि० अमेले था। जिसने २६ मई को फतेहगढ़ छोड़ा। अलीगज पहुँचने पर इसकी भेंट मि० एडवर्ड्स इत्यादि बदायु से भागे हुये अग्रेजो से हुई। दिनाक २७ को मि० प्रोबिन के यह सूचना मिली कि अवध की इर्रेगुलर पैदल और घुड़सवार सैनिक जो कि कानपुर में थे यहां भेजे जा सकते है। मि० प्रोबिन ने यह उत्तर दिया कि दसवीं रेजीमेन्ट पर तब तक भरोसा किया जा सकता है जब तक कि बाहर के सैनिकों से उनका सपर्क न हो। उसने यह प्रार्थना की कि यह सेना गुरसायगज के समीप ही रोक दी जाय। दिनाक २९ मई को यह सेना गुरसहायगज आगई और इसका सनिक अधिकारी एक छोटी टुकड़ी के साथ फतेहगढ़ आया। उसी दिन अपने सैनिको को लेकर वह एटा का विद्रोह दबाने चल दिया और अगले दिन (३० मई) उसके सैनिको ने मैनपुरी में उसकी हत्या कर दी।

दसवीं रेजीमेंट के एक सैनिक ने जो कि गुरसहायगज से आया था, यह समाचार फैलाया कि गुरसहायगज के सैनिक यहां के सैनिकों को निशस्त्र करने आरहे हं। मिस्टर प्रोबिन ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने सैनिकों को शांत करने के लिये जो कुछ भी प्रयत्न वह कर सकते थे किए परन्तु इसमें उन्हें सफलता न हुई। उसी रात (२९ मई) सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। परन्तु कर्नल

तलवारें और गड़ासे हुआ करते थे। आगाहुसेन इस सारी सेना का सेनापति था।

ऊपर जिस प्रकार के संगठन का वर्णन किया गया है उस प्रकार के संगठन और व्यवस्था को लेकर लगभग ७ मास तक काम चलाया। वास्तव में यह व्यवस्था सारे प्रदेश में नाम मात्रा के लिये ही चली। सभी स्थानों पर विद्रोह हो रहे थे और प्रत्येक शक्ति शाली व्यक्ति अपने मन की करता था। मुहसानअली जिस प्रदेश का शासक था उसकी व्यवस्था तो अपेक्षा कृत और भी खराब थी। अंग्रेजों के फर्रुखाबाद छोड़ने के बाद शीघ्र ही दिल्ली से बादशाह का एक फर्मान आगया जिसमें तफज्जुल हुसेन को फर्रुखाबाद का शासक मान लिया गया था और इस प्रदेश को मुक्त कराने वाले सैनिकों की बड़ी प्रशंसा की गई थी। यह मुक्त कराने वाले सैनिक इकतालिसवीं नेटिव इन्फेंट्री के थे। शाही फरमान पाने के बाद नवाब ने तुरन्त एक घोषणा पत्र जारी किया जिसके अनुसार यह सूचित किया था कि ४१वी इनफेंट्री के पदाधिकारियों की आज्ञा प्रत्येक बात मे मानी जाय। इन सैनिक अधिकारियों ने अपने अधिकार का सर्व प्रथम प्रयोग इस बात में किया कि उन्होने सम्पूर्ण प्रदेश में गो हत्या रुकवा दी। यह आज्ञा भी जारी की गई कि नगर का कूड़ा बर्तों के स्थान पर गदहों पर ढोकर बाहर फेंका जाय इस प्रकार की बाते इतना अवश्य स्पष्ट करती है कि अंग्रेज लेखकों ने विद्रोही व्यवस्था की जितनी कटु आलोचना की है वास्तव में वह उतनी बुरी न थी।

१६ जुलाई को जर्नल हेवलाक ने कानपुर पर फिर से अधिकार कर लिया। यह घटना अंग्रेजों के द्वारा फतेहगढ का किला खाली होने के उपरान्त १५ दिन के अन्दर हो गई। उसी दिन गुलाम अली ने मऊ दरवाजे के प्रबन्धक को यह आदेश दिया कि किसी भी भगोड़े को नगर में घुसने न दिया जाय। गुलाम अली की इस आज्ञा का कुछ विशेष प्रभाव न हुआ। इधर गेंहूँ को छोड़कर सभी वस्तुओं का मूल्य दुगना और तिगुना हो गया था क्योंकि विद्रोह के कारण सम्पूर्ण उत्तरी भारत का व्यापार छिन्न भिन्न हो गया था। गेहूँ का मूल्य चढ़ने से केवल इसलिए रुका रहा क्योंकि इसके बाहर जाने की मनाही कर दी गई थी। इस परिस्थिति से किसानों को बड़ी हानि पहुंची। व्यापारियों को लाभ इसलिए न हुआ क्योंकि सिपाही उन्हे अपनी आवश्यकतानुसार लूट लेते थे। गुलाम अली ने जब व्यापारियों को बचाने का प्रयत्न किया तो वह स्वयं बंदी बना लिया गया। इस प्रकार हम देखते है कि जिले की साधारण अवस्था शोचनीय थी।

यद्यपि कानपुर विद्रोहियों के हाथ से निकल चुका था परन्तु फिर भी यहां के लोगों ने इसकी विशेष चिन्ता न की क्योंकि दिल्ली और लखनऊ अभी विद्रोहियों के हाथ में थे। परन्तु १६ सितम्बर को दिल्ली के अंग्रेजों के हाथ में फिर आजाने से परिस्थित में एक दम परिवर्तन आगया दिल्ली से प्रारम्भ करके अब अंग्रेजी सेनायें सरलता से सम्पूर्ण दो आब पर अधिकार कर सकती थीं। कानपुर की घिरी हुई अंग्रेज सेना की ओर भी ध्यान गया। बख्त खां विद्रोहियों को पाच रेजीमेंट और सात तोपों के साथ भागा। परन्तु १६ अक्टूबर को हार कर उसने फर्रुखाबाद में आश्रय ग्रहण किया। उसको कानपुर के ब्रिगेडियर विलसन ने पराजित किया। इसके बाद दि० २३ को बख्त खां एव नवाब की सम्मिलित सेनाओं का अंग्रेजो से फिर संघर्ष हुआ जिसमें अंग्रेज विजयी हुये। इन दो पराजयों के उपरान्त ही बख्त खां फर्रुखाबाद में आए। उपर्युक्त दोनो संघर्षों का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के सहायको को फिर से सक्रिय रूप से सामने आने का अवसर मिल गया।

दि० २३ नवम्बर को लखनऊ भी विद्रोहियों के हाथ से निकल गया। अब दोआब में विद्रोहियों की स्थिति निर्बल थी। परन्तु फिर भी नवाब की सेना ने इटावा पर आक्रमण कर दिया और उसे हस्तगत करने में भी सफल हुई। मुरादअली को वहां का शासक बनाया गया। परन्तु वह पर्याप्त धन संग्रह करने में समर्थ न हुआ। इसीलिए धन लोलुप सैनिक उससे असंतुष्ट हो गये। मुरादअली का अधिकार इटावा पर अधिक दिन न रह सका। और ठीक बड़े दिन के दिन ब्रिगेडियर वालपोल ने इटावा ले लिया इसके दस दिन के अन्दर ही ब्रिगेडियर सीटन ने गंगेरी और पटियाली के युद्धों में विजय प्राप्त करके एटा से भी नवाब के सैनिकों को निकाल दिया।

तलवारें और गड़ासे हुआ करते थे। आगाहुसेन इस सारी सेना का सेनापति था।

ऊपर जिस प्रकार के संगठन का वर्णन किया गया है उस प्रकार के संगठन और व्यवस्था को लेकर लगभग ७ मास तक काम चलाया। वास्तव में यह व्यवस्था सारे प्रदेश में नाम मात्रा के लिये हो चली। सभी स्थानों पर विद्रोह हो रहे थे और प्रत्येक शक्ति शाली व्यक्ति अपने मन की करता था। मुहसानअली जिस प्रदेश का शासक था उसकी व्यवस्था तो अपेक्षा कृत और भी खराब थी। अंग्रेजो के फर्रुखाबाद छोड़ने के बाद शीघ्र ही दिल्ली से बादशाह का एक फर्मान आगया जिसने तफज्जुल हुसेन को फर्रुखाबाद का शासक मान लिया गया था और इस प्रदेश को मुक्त कराने वाले सैनिकों की बड़ी प्रशंसा की गई थी। यह मुक्त कराने वाले सैनिक इकतालिसवीं नेटिव इन्फेंट्री के थे। शाही फरमान पाने के बाद नवाब ने तुरन्त एक घोषणा पत्र जारी किया जिसके अनुसार यह सूचित किया था कि ४१वी इनफेंट्री के पदाधिकारियों को आज्ञा प्रत्येक बात में मानी जाय। इन सैनिक अधिकारियों ने अपने अधिकार का सर्व प्रथम प्रयोग इस बात में किया कि उन्होने सम्पूर्ण प्रदेश में गो हत्या रुकवा दी। यह आज्ञा भी जारी की गई कि नगर का कूड़ा बैलों के स्थान पर गदहो पर ढोकर बाहर फेंका जाय इस प्रकार की बातें इतना अवश्य स्पष्ट करतीं हैं कि अंग्रेज लेखकों ने विद्रोही व्यवस्था की जितनी कटु आलोचना की वास्तव में वह उतनी बुरी न थी।

१६ जुलाई को जर्नल हेवलाक ने कानपुर पर फिर अधिकार कर लिया। यह घटना अंग्रेजों के द्वारा फतेहगढ़ का किला खाली होने के उपरान्त १५ दिन के अन्दर हो गई। उसी दिन गुलाम अली ने मऊ दरवाजे के प्रबन्धक को यह आदेश दिया कि किसी भी भगोड़े को नगर में घुसने न दिया जाय। गुलाम अली की इस आज्ञा का कुछ विशेष प्रभाव न हुआ। इधर गेहूं को छोड़कर सभी वस्तुओं का मूल्य दुगना और तिगुना हो गया था क्योंकि विद्रोह के कारण सम्पूर्ण उत्तरी भारत का व्यापार छिन्न भिन्न हो गया था। गेहूं का मूल्य चढ़ने से केवल इसलिए रुका रहा क्योंकि इसके बाहर जाने की मनाही कर दी गई थी। इस परिस्थिति से किसानों को बड़ी हानि पहुंची। व्यापारियो को लाभ इसलिए न हुआ क्योंकि सिपाही उन्हे अपनी आवश्यकतानुसार लूट लेते थे। गुलाम अली ने जब व्यापारियों को बचाने का प्रयत्न किया तो वह स्वयं बंदी बना लिया गया। इस प्रकार हम देखते है कि जिले की साधारण अवस्था शोचनीय थी।

यद्यपि कानपुर विद्रोहियो के हाथ से निकल चुका था परन्तु फिर भी यहा के लोगो ने इसकी विशेष चिन्ता न की क्योंकि दिल्ली और लखनऊ अभी विद्रोहियो के हाथ मे थे। परन्तु १६ सितम्बर को दिल्ली के अंग्रेजो के हाथ मे फिर आजाने से परिस्थित मे एक दम परिवर्तन आगया दिल्ली से प्रारम्भ करके अब अंग्रेजी सेनायें सरलता से सम्पूर्ण दो आब पर अधिकार कर सकती थीं। कानपुर की घिरी हुई अंग्रेज सेना की ओर भी ध्यान गया। बख्त खां विद्रोहिओ की पांच रेजीमेंट और सात तोपों के साथ भागा। परन्तु १६ अक्टूबर को हार कर उसने फर्रुखाबाद मे आश्रय ग्रहण किया। उसको कानपुर के ब्रिगेडियर विलसन ने पराजित किया। इसके बाद दि० २३ को बख्त खां एवं नवाब की सम्मिलित सेनाओं का अंग्रेजो से फिर संघर्ष हुआ जिसमें अंग्रेज विजयी हुये। इन दो पराजयों के उपरान्त ही बख्त खां फर्रुखाबाद में आए। उपर्युक्त दोनो संघर्षों का परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों के सहायको को फिर से सक्रिय रूप से सामने आने का अवसर मिल गया।

दि० २३ नवम्बर को लखनऊ भी विद्रोहियों के हाथ से निकल गया। अब दोआब में विद्रोहियों की स्थिति निर्बल थी। परन्तु फिर भी नवाब की सेना ने इटावा पर आक्रमण कर दिया और उसे हस्तगत करने में भी सफल हुई। मुरादअली को वहां का शासक बनाया गया। परन्तु वह पर्याप्त धन संग्रह करने में समर्थ न हुआ। इसीलिए धन लोलुप सैनिक उससे असंतुष्ट हो गये। मुरादअली का अधिकार इटावा पर अधिक दिन न रह सका। और ठीक बड़े दिन के दिन ब्रिगेडियर वालपोल ने इटावा ले लिया इसके दस दिन के अन्दर ही ब्रिगेडियर सीटन ने गंगेरी और पटियाली के युद्धों में विजय प्राप्त करके एटा से भी नवाब के सैनिकों को निकाल दिया।

बगश नवाबो के समय के प्रमुख साहित्यकार और इतिहासकार

१—मुशी साहिब राम–इन्होने 'खुजिस्ता कलाम' 'नवाब मुहम्मद के खतूत' सपादित किए । इनका समय १७४६,४७ का है।

२—सैयद हिसानुद्दीन ग्वालियरी–इन्होने नवाब मुहम्मद खा, कयूम खां, इमाम खां और अहमद खां के समय की घटनाओ का सपादन किया है। और नवाब मुहम्मद खां के समय की एक सुन्दर रचना खुलास–ए–बगश की है

३—मुफ्ती वली उल्लाह– रचना-तारीख -ए- फर्रुखाबाद (१८२६-३०)

४—मुनव्वर अली खां—रचना लोहे-ए–तारीख जिसका सपादन मीर बहादुर अली ने १८३६–४० में किया।

५—कालीराम डिप्टी कलक्टर 'फतेहगढ नामा' (१८४५)

६—नवाब वकाउल्ला खां आलम (१८वीं सदी) मुहारेबत–ए–मुगलिया व अफगानियां इसमें मुगल और पठानो के सघर्ष का विशद वर्णन है।

७—अब्दुल कादिर–तारीख–ए–बदाउनी ये शमशाबाद निवासी थे।

८—प्रसिद्ध कवि सौदा और मीर सोज–य नवाब अहमद के मत्री मेहरबान खा के समय के प्रख्यात कवि थे। उर्दू साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।
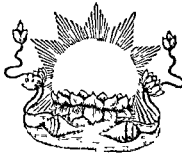
५ जून १८५८ को अहमदशाह की हत्या के कारण अवध में फिर से क्रान्ति की आग सुलग उठी । फर्रुखाबाद में भी ५ हजार सैनिक फिरसे एकत्र हो गये अन्ग्रेजी सेनाओं ने फर्रुखाबाद का घेरा डाला अन्ग्रेजी सेनाओं ने बडी ही कृतघ्नता तथा बर्बरता से काम लिया । क्रान्ति में भाग लेने वालों को तोपों से उड़ा दिया गया। उनके गढ़ों को नष्ट कर दिया गया । कोष लूट लिये गये । जनता में भय पैदा करने के लिये लोगों को फासी दे-दे कर पेडो में लटका दिया गया । फर्रुखाबाद में भी घुमना नामक स्थान पर एक मुसलमान जिसका नाम नादिरखां था फासी देकर पीपल के पेड पर लटका दिया गया था। भय के कारण सम्पूर्ण शहर खाली दिखायी पड़ता था।

२६ मार्च १८४६ में सिक्खों की पराजय के बाद डलहौजी ने महाराजा रणजीत सिंह के लड़के महाराजा दिलीपसिंह को गिरफ्तार कर फतेहगढ़ के किले में नजरबन्द कर दिया और फिर यहा से ही उन्हें विलायत भेज दिया गया था।

१८५७ की प्रथम क्रान्ति के बाद फर्रुखाबाद में कोई अधिक महत्वपूर्ण घटना तो नहीं हुई परन्तु देश के राजनैतिक वातावरण को देखते हुये यह भाग किसी से पीछे भी नहीं रहा । ईस्टइंडिया कम्पनी की सत्ता समाप्त होने के बाद पूर्ण रूप से अन्गरेजो की राज्य व्यवस्था स्थापित हो गयी । फर्रुखाबाद में अन्गरेजों की एक छावनी फतेहगढ़ में स्थापित की गई और फतेहगढ़ भारत का एक मुख्य सैनिक केन्द्र बनाया गया । फतेहगढ़ की छावनी का बाजार 'गोरा बाजार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । ईस्टइंडिया कम्पनी के समय में इलाहबाद की सधि के बाद से फर्रुखाबाद अन्गरेजों के रहने का एक मुख्य स्थान बन चुका था। क्योंकि गंगा नदी के उत्तर का भाग अवध में सम्मिलित था और शेष सब अन्गरेजो के हाथ में आ चुका था।

फर्रुखाबाद सैनिक केन्द्र के साथ २ भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र भी रहा । फर्रुखाबाद में शोरा व नील के बडे बड़े कारखाने थे । शोरा तथा नील यहाँ से विलायत जाया करता था और उसके बजाय विलायत से सूती कपडा यहाँ आया करता था । भारत के बन्दरगाहों पर माल उतार कर सीधा फर्रुखाबाद नावो द्वारा लाया जाता था। यहाँ आकर सूती कपड़ा दूसरे जिलो को भेजा जाया करता था । ईस्टइन्डिया रेलवे के खुलने के समय तक फर्रुखाबाद विलायत से आने वाले सूती कपडे की सबसे बड़ी मण्डी रही है।

१९१४ में यूरोपीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। फर्रुखाबाद सैनिक केन्द्र होने के कारण अंग्रेजो ने यहां सैनिकों की भरती करने का कष्ट किया । सैकड़ो सिपाही सेना में भरती हुये और यूरोपीय देशो में लड़ाई लडने के लिए गये । और वहाँ अपनी वीरता का परिचय दिया । महायुद्ध के समाप्त होने के उपरान्त जो देश में प्रतिक्रिया हुई वही फर्रुखाबाद में भी हुई । सरकार की दमन नीति के कारण भारत में असन्तोष की लहर फैल गयी क्रान्ति की आग सुलगने लगी । लोगो ने निश्चय किया कि भारत में सभी अंग्रेजो को मार दिया जाय। इसी के फलस्वरूप एक षड्यन्त्र की तैयारी की गई कि एक ही समय में संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध के रहने वाले अंगरेजों को मार दिया जाये। यह षड्यन्त्र मैनपुरी षड्यन्त्र, के नाम से प्रसिद्ध है । फर्रुखाबाद क्रान्तिकारियों का केन्द्र बना।

दुर्भाग्यवश षड्यन्त्र का पता चल गया और गिरफ्तारियां आरम्भ हो गयीं । फर्रुखाबाद में भी लोग कैद किये गये । इसी समय देश में रौलट एक्ट के विरुद्ध आवाज उठ रही थी । फर्रुखाबाद के नागरिक भी किसी से पीछे नहीं थे । उन्होंने रौलएक्ट के विरोध में एक ऐतिहासिक हड़ताल कराई । फर्रुखाबाद के इतिहास में यह प्रथम हड़ताल बताई जाती है। जिसका स्वागत बडे ही उत्साह और साहस के साथ किया गया था । महात्मा गाधी के असहयोग आंदोलन छेड़ने पर भी फर्रुखाबाद ने अपना पूरा सहयोग दिया।

इस आन्दोलन में विरोध के प्रश्न पर मुसलमानो ने भी साथ दिया । असहयोग आन्दोलन के समय अली बन्धुओं (मौ० मुहम्मद अली और मौ० शौकत अली) ने आकर फर्रुखाबाद में दौरा किये और मुसलमानों का पूर्ण भाग लेने के लिए तैयार किया इसी सम्बन्ध में अली बन्धुओं की माता जी भी आयीं थीं। असहयोग आन्दोलन तीव्रता के साथ

नवाब तफज्जुल हुसैन खा
सन् १८५८ की क्रान्ति के शिकार
बनाकर मक्का भेज दिए गए।

नवाब गजनफर हुसैन खा
जिन्हें १३ सितम्बर १८६२ को विद्रोही
के रूपमें घुमना के पीपल पर फासी दी
गई

नवाब सयादत हुसन खाँ
१३ सितम्बर १८६३ को फतेहगढ़ किले के इमली के पेड़ पर
जिन्हें विद्रोही होनेके कारण फांसी दी गई

नवाब इकबाल मद खा
जिन्हें १८६२ में जिला स्कूल के पीपल के पेड़ प
विद्रोही के रूप में फासी दी गई

के कारण गिरफ्तार किये गये । कई सौ लोग इस आन्दोलन में जेल गये । जेल जाने वाले बन्दी अपनी कारावास की अवधि को समाप्त करके १६४१ में बाहर तो अवश्य आ गये परन्तु युद्ध के प्रति कांग्रेस का असहयोग और विरोध बढ़ता ही गया। १६४२ में मजदूर दल के नेता सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारत आये और कांग्रेस व अन्य दलो के नेताओ से वार्ता हुई । परन्तु उनकी योजना को किसी ने भी स्वीकार नहीं किया । क्रिप्स–वार्ता से कांग्रेस को यह विश्वास हो गया कि अंग्रेजी सरकार सीधे ढग से सत्ता हस्तान्तरित न करेगी । अत गांधी जी ने सरकार के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ने का निश्चय किया ८ अगस्त १६४२ को ऐतिहासिक क्रान्ति भारत के इतिहास में सर्वेव अमर रहेगी। कांग्रेस ने " अंग्रेजो भारत छोडो " का नारा दिया । सारा भारतवर्ष इस नारे से गूंज उठा। देश के कोने कोने में क्रान्ति की तैयारियां होने लगीं। आन्दोलन प्रारम्भ होने से पहले ही सभी नेता गिरफ्तार कर लिये गये । " करो या मरो" के आदेशानुसार सारे भारत में क्रान्ति की ज्वालायें धधकने लगीं । १६४२ में एक बार फिर फर्रुखाबाद क्रान्तिकारियों का केन्द्र बना। रेलवे स्टेशनों, डाकघरों तथा सरकारी कार्यालयों को लूटना और जलाना प्रारम्भ किया गया । स्थान-स्थान पर तार काटे गए और रेल की पटरियाँ उखाड दी गयीं । नगर में स्थान-स्थान पर बम फटे । अन्य बड़े २ आदमियो के स्थानो पर बम फेंके गये । ताकि धन का सग्रह किया जा सके । तिर्वा में लोगो ने पुलिस के एक थानेदार की रिवाल्वर छीन ली । सरकार ने आन्दोलन का अत्यधिक बर्बरता से दमन किया । स्थान–स्थान पर गिरफ्तारियां की गई । निशस्त्र जनता पर लाठियां और गोलियां बरसाई गयीं घर और खेत फूंक दिये गये । गिरफ्तार करने के बाद लोगों पर पुलिस द्वारा सत्याग्रहियों पर इतनी मार लगाई गई कि ऐसे निर्मम दमन के उदाहरण ससार के इतिहास में बहुत कम मिलेंगे । नौकरशाही की सगठित बर्बरता के द्वारा नेतृत्व हीन अस्त्र हीन एव सगठन हीन जनता का आन्दोलन दवा दिया गया। फर्रुखाबाद में भी सैकडों लोग कैद किये गये । और उनको जेलो में बन्द कर दिया गया । १६४५ के लगभग बन्दी जेल से बाहर आये । इस आन्दोलन के बाद देश भर की दृष्टि राजनैतिक वातावरण के साथ २ घूमने लगी, फलत. फर्रुखाबाद में भी १५ अगस्त १६४७ को प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया ।

(ई० पूर्व दूसरी शती का) है हाल में श्रहिच्छत्रा की खुदाई में गुप्त कालीन मिट्टी की एक मुहर निकली थी, जिसमें 'श्री अहिच्छत्रा भुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य' लेख लिखा है। १६५१ के अन्त में लेखक को रामनगर से एक अभिलिखित यक्ष-प्रतिमा प्राप्त हुई। इस पर दूसरी शताब्दी का लेख खुदा है, जिसमें अहिच्छत्रा' नाम ही मिलता है। इन दोनो पिछले अभिलेखों से स्पष्ट है कि नगर का शुद्ध नाम 'अहिच्छत्रा' था।

जैन ग्रन्थो में अधिकतर 'अहिच्छत्रा' नाम ही मिलता है। 'विविध-तीर्थकल्प' नामक जैन ग्रंथ के अनुसार नगर का पुराना नाम 'सख्यावती' था और वह कुरु जांगल प्रदेश की राजधानी था। इस ग्रंथ में लिखा है कि एक समय जब भगवान पार्श्वनाथ सख्यावती नगरी में ठहरे हुए थे, कमठ नामक दानव ने उनके ऊपर वर्षा की झड़ी लगा दी। जब नागराज 'धरणीधर' को यह बात मालूम हुई तब वह सपत्नीक उस स्थान पर आया जहां पार्श्वनाथ जी थे उसने रक्षार्थ भगवान के शरीर को चारों ओर से परिवेष्टित कर लिया और फणों द्वारा उनके सिर की रक्षा की। इस प्रकार अहि (सर्प) का फण बन जाने से उस स्थान का नाम 'सख्यावती' के स्थान पर 'अहिच्छत्रा' या अहिच्छत्र' प्रसिद्ध हुआ। यह कहानी राजा आदि की उस कथा से मिलती-जुलती है जिसमें द्रोण के द्वारा अहीर को वरदान देने का जिक्र है कुछ बौद्ध ग्रंथों में भी इसी प्रकार की कथा मिलती है। कनिघम इस अनुश्रुति के आधार पर नगर का 'अहिच्छत्र' नाम ही ठीक मानते है परन्तु जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, एतिहासिक काल मे 'अहिच्छत्रा' नाम अधिक प्रचलित हो गया।

कुरु-पंचाल जनपद

पचाल और उसके पड़ोसी कुरुराज्य का साथ साथ उल्लेख प्राचीन साहित्य में प्राय मिलता है। 'वाजसनेयी संहिता में ये दोनों नाम एक साथ आये है। 'काठक संहिता मे पचालों को केशिन दालभ्य के निवासी कहा गया एतरेय ब्राह्मण में पचालों की चर्चा कुरुओ के साथ आई है और उन्हे 'मध्यमादिक्' के निवासी कहा है। शतपथ तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में कुरु-पचाल शासकों के द्वारा की गई अनेक विजय यात्राओं की चर्चा मिलती है। इन उल्लेखों से पता चलता है कि कुरु तथा पचाल राज्यों ने आपस में संधि करली थी और यह संधि बहुत समय तक स्थायी रही।

पंचाल के दो मुख्य भाग

पचाल लोग चद्रवशी क्षत्रिय थे। इन्होंने कालांतर में पांच के स्थान पर अपने केवल दो मुख्य केन्द्र बनाये-एक कांपिल्य या कांपील नगर जो दक्षिणी भाग (दक्षिण पचाल) की राजधानी हुआ और दूसरा अहिच्छत्रा, जो उत्तरी भाग (उत्तर पचाल) का केन्द्र हुआ। इन दोनों नगरों में कांपिल्य अधिक प्राचीन ज्ञात होता है। यजुर्वेद में एक स्त्री के लिए 'काम्पीलवासिनी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। महाभारत तथा बौद्ध जातकादि ग्रंथो में प्राय. पचाल के इन्ही दो मुख्य भागों का वर्णन मिलता है, न कि वैदिक कालीन पांच भागो का।

अहिच्छत्रा जिस जनपद की राजधानी थी उसका नाम महाभारत में एक जगह 'अहिच्छत्र विषय' भी मिलता है-

"अहिच्छत्र च विषय द्रोण समभिपद्यत।
एव राजन्अहिच्छत्रा पुरी जनपदायुता॥"

(आदिपर्व, १३८, ७६)

राजधानी के नाम पर जनपद के नाम की प्रसिद्धि प्राचीन भारत में प्रायः मिलती है। काशी और मथुरा राजधानियो के नाम पर तत्सबधी जनपदों की भी यही सज्ञा हो गई थी। महाभारत में अन्य स्थलो पर अहिच्छत्र-जनपद से उत्तर पचाल का ही अभिप्राय लिया गया है। उत्तर और दक्षिण पचाल के बीच की सीमा गगा नदी थी। उत्तर पचाल की उत्तरी सीमा क्या थी, इसका निश्चित कथन महाभारत में नहीं मिलता। कुछ विद्वानो का अनुमान है कि हिमालय पर्वत उत्तरी सीमा का निर्माण करता था। महाभारत के अनुसार दक्षिण पचाल की दक्षिणी सीमा चर्मण्वती (चबल) नदी थी।

महाभारत युद्ध से पहले का इतिहास

पचाल के कई राजाओ का उल्लेख वैदिक साहित्य तथा पुराणों में मिलता है। इन राजाओ के नाम नील' सुयाति, पुरुजानु, ऋक्ष, भृम्यश्व, मुद्गल, वृध्याश्व,

गजलक्ष्मी– ४थी शती– कम्पिल की एक प्राचीर में प्रतिष्ठित

को अंतिम रूप प्रदान किया ।

महाभारत–काल

महाभारत काल में पचाल की प्रसिद्धि बढ़ी । अब उत्तर भारत में पचाल, पौरव तथा यादव अधिक शक्तिशाली राजवंश थे । इस समय की सब से प्रमुख घटना महाभारत का युद्ध है, जिसमें प्राय: समस्त भारत ने भाग लिया। इस भीषण सग्राम की अग्नि में अपार जन-धन की आहुति दे दी गई । युद्ध का कारण पौरव राज धृतराष्ट्र के पुत्रों–कौरवों तथा पांडु के पुत्रो पाडवों में वैमनस्य था। यह वैमनस्य धीरे धीरे उग्र रूप धारण करता गया। जब समझौता न हो सका तब युद्ध अनिवार्य हो गया।

उत्तर पचाल के द्रोण ने अपने पुत्र अश्वत्थामा के साथ कौरवों का पक्ष लिया। दक्षिण पंचाल के द्रुपद ने द्रोण के विरुद्ध पांडवों की सहायता की। द्रुपद पुत्री द्रौपदी पाडवो को ब्याही गई थी और इस प्रकार पांडवों के साथ द्रुपद का घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया था। द्रौपदी के विषय में कहा जाता है कि वह यज्ञकुंड से अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ पैदा हुई थी। यह कुंड कपिल में 'द्रौपदी कुंड' के नाम से आज तक प्रसिद्ध है। इस कुंड से पुरानी मूर्तियां तथा बडे आकार की ईंटें मिलती हैं।

पांडवों को महाभारत-युद्ध में द्रुपद तथा धृष्टद्युम्न से बड़ी सहायता मिली। धृष्टद्युम्न ने पाडवों की सेना को व्यवस्थित किया। वही इस विशाल सेना का सेनापति बनाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि धृष्टद्युम्न को व्यूह रचना का अच्छा ज्ञान था। द्रुपद के दूसरे पुत्र शिखंडी के विषय में प्रसिद्ध ही है कि किस प्रकार अर्जुन ने उसके षंढत्व का लाभ उठा कर भीष्म को पराजित किया। महाभारत युद्ध में पांडवों की विजय तो हुई, पर उसमें कितने ही जनपदों के शासक समाप्त हो गये। द्रोण द्रुपद और धृष्टद्युम्न भी मारे गये। केवल द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा बच गया। उसने एक रात चोरी से द्रौपदी के पुत्रों का वध कर दिया। वह पकड़ा गया, पर अंत में अपमानित कर छोड़ दिया गया इसके बाद उसका कुछ पता नहीं चला।

महाभारत–युद्ध के बाद

महाभारत-युद्ध के अनंतर उत्तर पन्चाल तथा अहिच्छत्रा के सबंध में कुछ निश्चित पता नहीं चलता पांडवों ने अपने समय में इस प्रदेश को अपने अधीन रखा। उनके स्वर्गारोहण के बाद अर्जुन के नाती परीक्षित् का आधिपत्य रहा। परीक्षित् के अंतिम दिनों में उत्तर-पश्चिम में नाग जाति का प्राबल्य हुआ। इस जाति के नेता तक्षक के द्वारा परीक्षित् की मृत्यु हुई। कुरु-पचाल जनपद पर नागो का प्रभुत्व क्षणिक ही रहा, क्योंकि परीक्षित् के पुत्र जनमेजय ने शीघ्र ही अपनी शक्ति सभाल कर नागो को परास्त किया और उनकी एक बडी सख्या को नष्ट कर दिया

सभवत: परीक्षित् या जनमेजय के बाद पचाल पर वहां के राजवश का पुन: अधिकार हो गया और नन्दवशो महापद्मनन्द के समय तक कायम रहा। पुराणो में महाभारत-युद्ध से लेकर महापद्मनन्द तक पचाल के सत्ताईस राजाओ का उल्लेख मिलता है, पर उनके नामों और कार्यों आदि के सबन्ध में कुछ जानकारी नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत-युद्ध के बाद पचाल में दार्शनिकता का प्रभाव अधिक फैला। प्रवाहण जैवलि सभवत: इसी समय हुए, जिनका उल्लेख बृहदारण्यक तथा छांदोग्य उपनिषदों में मिलता है। उद्दालक आरुणि के पुत्र श्वेतकेतु इनकी सभा में अपने ज्ञान की परीक्षा देने आये। जैवलि ने उनसे आत्मा और परलोक सबन्धी कतिपय प्रश्न पूछे, जिनका श्वेतकेतु सन्तोषजनक उत्तर न दे सके। उन्होंने लौटकर यह बात अपने पिता से बताई, इस और उद्दालक आरुणि स्वय प्रवाहण जैवलि के यहां आये और उनसे उन्होंने तत्वज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

जैन विविध तीर्थकल्प में महाभारत युद्ध के बाद पचाल के हरिषेण नामक एक शासक का जिक्र है और उसे पचाल का दसवां चक्रवर्ती राजा लिखा है। इसी ग्रथ में ब्रह्मदत्त नामक एक दूसरे सार्वभौम राजा का उल्लेख है। महाउम्मगजातक में उत्तर पचाल के एक राजा का नाम 'चूलनी ब्रह्मदत्त' दिया है। इस राजा के लिये कहा गया है कि इसने लगभग सारे जम्बूद्वीप में अपना प्रभुत्व कायम किया। रामायण (१. ३३) में पचाल के ब्रह्मदत्त

सख्या में मिले हैं। और अब भी बराबर मिल रहे हैं। इन राजाओं ने ई० पूर्व दूसरी शती से लेकर पहली शती के अत तक राज्य किया। इनके नाम वगपाल, रुद्रगुप्त, सूर्यमित्र, फल्गुनिमित्र, भानुमित्र भद्रघोष भूमिमित्र ध्रुवमित्र अग्निमित्र विष्णुमित्र जयमित्र, जयगुप्त इन्द्रमित्र आदि मिले हैं। इन सिक्कों पर सामने की ओर पचाल राज्य के तीन चिह्न एव नीचे राजा का नाम तथा पीछे की ओर देवता की प्रतिमा मिलती है। ये सिक्के गोल आकार के मिलते हैं। कुछ दिन हुये इन पक्तियों के लेखक को एक अज्ञात पंचाल शासक शिवनन्दि के कुछ ताम्रसिक्के पीलीभीत जिले की पूरनपुर तहसील से मिले थे।

राजा अच्युत

ईस्वी चौथी शती में पचाल के राजा अच्युतका पता चलता है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने इसे परास्त कर इसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। अच्युत का नाम प्रयाग के प्रसिद्ध स्तम्भ पर खुदा मिलता है इस राजा के सिक्के भी बहुत बडी सख्या में मिले हैं। इन पर एक ओर अच्युत का नाम (अच्यु) तथा दूसरी ओर चक्र रहता है। कुछ सिक्को पर राजा का चेहरा भी मिला है।

गुप्त साम्राज्य में अहिच्छत्रा

गुप्त—शासन काल में अहिच्छत्रा की बडी उन्नति हुई। यहा अनेक हिन्दू मन्दिरो तथा बौद्ध एव जैन इमारतो एव प्रतिमाओ का निर्माण हुआ। भारत के प्रमुख धर्मो के केन्द्र होने के कारण इस नगर ने कला के क्षेत्र में बडी प्रसिद्धि प्राप्त की। गुप्त कालीन कलावशेष बडी सख्या में अहिच्छत्रा की खुदाई से उपलब्ध हुए हैं। इन्हें देखने से पता चलता है कि यहां के कलाकार धार्मिक प्रतिमाओं के अतिरिक्त लोक जीवन सबन्धी कृतियों के निर्माण में कितने कुशल थे। पत्थर और मिट्टी की कुछ मूर्तियां तो भारतीय कला की उत्कृष्ट कृतियां हैं। पार्वती का एक अत्यन्त कलापूर्ण मस्तक अहिच्छत्रा से मिला है। इसी प्रकार अन्य हिंदू देवी-देवताओं, जैन तीर्थंकरों तथा बुद्ध की अनेक सुन्दर प्रतिमायें यहां से मिली हैं।

मध्यकाल

मध्य काल में अहिच्छत्रा तथा पचाल प्रदेश पर विभिन्न राजवशों का शासन रहा। उनके समय में भी यहां साहित्य और कलाकी उन्नति होती रही। ई० ग्यारहवीं शती के बाद अहिच्छत्रा की अवनति होने लगी और धीरे धीरे इसका नाममात्र शेष रहगया। मुसलमानो के आधिपत्यकाल में यहां का कोई उल्लेखनीय विवरण नहीं मिलता, उनके सिक्के यहा काफी मिलते हैं।

अहिच्छत्रा में भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई का जो कार्य किया गया है उससे ई० पूर्व ३०० से लेकर ग्यारवीं शती तक के इतिहास पर प्रकाश पड़ा है। अभी यहा अधिक अनुसधान और उत्खनन की आवश्यकता है। आशा है शासन का ध्यान इस ओर शीघ्र जायगा और इस महत्वपूर्ण नगर के गौरवमय इतिहास की अधिक खोज की जायगी।

मेघवाहिनी देवी का अत्यन्त आकर्षक स्वरूप अहिच्छत्र

विष्णुमित्र तीन ऐसे नाम हैं जो मथुरा के प्रारम्भिक शासकों की सूची में भी मिलते हैं। हो सकता है कि दोनों स्थानों के शासक एक ही हों। ऐसी कुछ विद्वानों की धारणा रही है, पर उसके स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं।

किन्तु इतना तो है ही कि अहिच्छत्रा पर शासन करते हुए मित्र शासक अपनी सीमा में सीमित नहीं रहे। उन्होंने अपने आस पास के क्षेत्रों में फैलने की चेष्टा की। भानुमित्र के सिक्के पजाब के होशियारपुर जिले से प्राप्त हुए हैं। वहा जो सिक्के मिले हैं। उनमें एक भांति का सिक्का तो अपने बनावट में पचाल के सिक्कों के समान ही है और उस पर प्राप्त एक चिन्ह भी पचाल सिक्कों के समान ही है। जिस प्रकार हम अहिच्छत्रा के सिक्कों में शासक के नाम के अनुरूप ही देवता का अकन पाते हैं और सूर्यमित्र और भानुमित्र के सिक्कों पर वेदिका के ऊपर सूर्य अकित पाते हैं, उसी प्रकार होशियारपुर से मिले भानुमित्र के सिक्कों पर भी सूर्य का अकन है। इन बातों से यह निस्सदिग्ध है कि पचाल शासक भानुमित्र ने अपने क्षेत्र का विस्तार पजाब में किया था।

पजाब विजय के पश्चात् उसने वहाँ के सिक्कों के अनुकरण पर भी सिक्के चलाये। ये सिक्के औदुम्बर शासकों के सिक्के के अनुकरण पर हैं, इससे अनुमान होता है कि उसने उन्हें पराजित कर पन्जाब के कुछ भूभाग पर अधिकार किया था। यह घटना सम्भवतः ईसा की पहली शताब्दी में हुई होगी। सम्भवतः भूमि मित्र ने पजाब में अपने पैत्रिक भूमि को छोड कर पजाब को ही अपना केन्द्र बनाया। इस धारणा की पुष्टि इस बात से होती है कि पजाब में हमें उसके उत्तराधिकारी के रूप में आर्यमित्र, महिमित्र और महा भूतिमित्र के सिक्के मिलते हैं। इन शासकों के सिक्के पचाल में अज्ञात हैं।

अहिच्छत्रा के मित्र शासक कोसल की ओर भी बढ़े थे और सम्भवतः कुछ काल के लिए उन्होंने काशी और मगध पर भी अधिकार कर लिया था। पचाल के अग्निमित्र के सिक्के कोसल प्रदेश में बड़ी सख्या में पाये गये हैं। स्मिथ का कहना है कि पूरबी अवध और बस्ती जिले में अनेक मित्र राजाओं के सिक्के बहुतायत से मिलते हैं। कारलायल को इस वश के सिक्के … जिले में उपलब्ध हुए थे। दुर्भाग्यवश इन लेखकों ने राजाओं के नाम नहीं दिये हैं जिनके सिक्के मिले। श्रावस्ती से अग्निमित्र के सिक्के मिले हैं जिन्हें … वाल जी और मैंने प्रकाशित किये हैं। ये सिक्के इस बात … पर्याप्त प्रमाण है कि किसी समय कोसल भी पचाल … अधीन था। यह सम्भवतः ईसा पूर्व की पहली शताब्दी … हुआ होगा और मित्रो ने वहाँ के देव नामान्त शासको … पराजित कर कोसल पर अधिकार किया होगा।

अहिच्छत्रा के मित्रों का मगध की ओर विस्तार का अनुमान पाटलिपुत्र में मिले अग्निमित्र के सिक्कों से होता है। गया से मित्र नामान्त कुछ शासकों के अभिलेख भी मिले हैं। किन्तु उस पर प्रकाश डालने वाली सामग्री की अभी अपेक्षा है।

इस वश के शान्तिमय दीर्घकालीन होते हुए भी हमें अभिलेख के रूप में इस वश का कुछ भी प्राप्त नहीं हो सका है। एक मात्र अभिलेख जिसे इस वश का कहा जा सकता है वह अहिच्छत्रा से एक उष्णीष पर अकित है। किन्तु वह इतना क्षतिग्रस्त है कि उससे हमारा कोई ज्ञानवर्धन नहीं होता। इस उष्णीष पर शासक का नाम......वमित्र अथवा......णमित्र पढ़ा जाता है जो ध्रुवमित्र अथवा अरुणमित्र का हो सकता है

मित्रों के उत्तराधिकारी ३०० से ३५० ई०

मित्रों के शासन का अन्त किस प्रकार हुआ, य… कहना कठिन है। किन्तु ऐसा सकते मिलता है कि इस प्रदेश पर गुप्त साम्राज्य के विस्तार से पूर्व किसी एक ऐसे वन्श का अधिकार था जो मित्रों से भिन्न थे। इस अज्ञात वन्श का अन्तिम शासक सम्भवतः अच्युत था जिसके सिक्के वहाँ अधिक सख्या में मिलते है। इन सिक्कों के प्रणेता की पहिचान समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ प्रशस्ति में अंकित अच्युत वर्धन से की जाती है जिसका उसने उन्मूलन किया था। एक ओर जहाँ सिक्के की लिपि इस प्रशस्ति की लिपि के निकट है, वही उसकी बनावट नाग सिक्कों से मिलती जुलती है। अतः बहुत सम्भव है कि अच्युत नाग वन्श का शासक हो। कुषाणों को निकाल कर नागों ने

परन्तु कौरवों और पाण्डवों में जन्म से ही प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान थी। पाण्डवों ने गुरुसे याचना की कि पहले कौरवों को महाराज द्रुपद से युद्ध करने भेजा जाय और जब वे सहायता की याचना करें तभी पाण्डव भी युद्ध में सम्मिलित होवें। गुरु ने पाण्डवों की बात मानली और कौरव युद्ध करने गये। थोड़ी देर ही युद्ध करने के पश्चात् द्रुपद की सुसज्जित सेना और सैन्य शौर्य के समक्ष कौरव टिक सकने में असमर्थ हो गये थे भाग निकले और पाण्डवों से सहायता की याचना करने लगे। अन्त में पाण्डवों और कौरवों के सम्मिलित आक्रमण से द्रुपद की सेना की स्थिति बिगड़ने लगी और थोड़े ही समय के पश्चात् उन्होंने द्रुपद और उनके मन्त्री को बन्दी बनाकर अपने गुरु के समक्ष ला खड़ा किया। द्रुपद के राज्य का प्रबन्ध भी कौरव एवं पाण्डव करने लगे।

द्रोणाचार्य ने महाराज द्रुपद को अपने पिछले अहंकार की याद दिलाई और कहा 'द्रुपद मैं निर्धन हूं अतः तुमसे मित्रता करने के योग्य नहीं हूं। अब तुम भी निर्धन हो गये हो मित्र भाव से व्यवहार करने के योग्य बन गये हो; मैं भी निर्धन ब्राह्मण हूं। परन्तु निर्धनता अभिशाप है। तुम्हारे अहंकार ने मेरे हृदय को छिन्न भिन्न कर दिया है। हम सहपाठी रह चुके हैं अत. इस सम्बन्ध के कारण मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा। राज्य भी वापस कर दूंगा। परन्तु मित्रता नहीं छोड़ सकता। आज से गंगा के उत्तरी भाग में मैं और दक्षिणी भाग में जिसका विस्तार चम्बल तक है, तुम राज्य करो। इस प्रकार मैं भी तुम्हारे समकक्ष साम्राट् बनकर रहूंगा और हमारी मित्रता भी बनी रहेगी। द्रुपद इस शर्त पर तैयार होगये और पांचाल देश दो भागों में विभक्त कर दिया गया। द्रोणाचार्य ने गंगा के उत्तर में अहिछत्र को राजधानी बनाकर राज्य करना प्रारम्भ कर दिया और द्रुपद ने अपने दक्षिणी भाग की राजधानी काम्पिल्य नगरी बनायी।

—महाभारत आदिपर्व. अ० १४१

काम्पिल्य द्रुपद के राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर था और आज के छोटे से कम्पिल गांव का विस्तार वैभव काल में फर्रुखाबाद और पटियाली तक था। इस विशाल नगरी की अवनति किस काल में प्रारम्भ हुई और किस समय यह नष्ट-भ्रष्ट हुआ, पता नहीं चलता। काम्पिल्य के उक्त विस्तृत विस्तार में कभी कभी जमीन की खुदाई करते समय प्राचीन प्रतिमाएँ एवं सिक्के प्राप्त होजाते हैं। पटियाली में सम्राट् द्रुपद के महल के भग्नावशेष—विशाल खेटक—के रूप में आज भी पाण्डवों के 'लक्षा-गृह' की भांति विद्यमान है।

रामायण काल में—महाभारत काल के पूर्व भी काम्पिल्य नगरी के होने के उल्लेख मिलते हैं। रामायण काल में वहां साम्राट् प्रवाहण जयवलि का राज्य था। साम्राट् जयवलि ज्ञान-विज्ञान के अद्वितीय विद्वान् थे। जिस प्रकार मिथिला के सम्राट् जनक अपनी विद्वता के लिये विख्यात थे, उसी प्रकार जयवलि इतने महान् विद्वान् थे कि उस काल के अनेक ऋषि एवं महर्षि तक उनके पास विद्या अध्ययन करने आया करते थे।

'श्वेतकेतुर्हवा आरुणेय. पांचालानां परिषदमाजगाम
स आजगाम जयवलिं प्रवाहणम् परिचरयमाणम्।

—बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ६।२ एवं छान्दोग्य उपनिषद् ५।३

प्रवाहरण जयवलि के राज्य में शिक्षा का इतना उत्तम प्रबन्ध था कि उस काल के सर्व ज्ञान सम्पन्न महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी जो जनक के राज्य में रहते थे, जयवलि के राज्य के विद्वानों को मान्यता दे रखी थी।

—बृहदारण्य उपनिषद्, अध्याय ३ का प्रथम ब्राह्मण

उव्वट और महीधर के अनुसार रामायण काल के पूर्व वैदिक युग में भी काम्पिल्य सवगुण सम्पन्न एक महान् नगरी थी। काम्पिल्य के सभी निवासी उच्च शिक्षा को प्राप्त थे। यजुर्वेद के एक मन्त्र से ज्ञात होता है कि कम्पिल्य राज्य की नारियां भी शिक्षित तथा विदुषी थी।

'किंभूतां सुभद्रिकां काम्पील -वासिनी, काम्पील नगरे—वसतीति काम्पील वासिनी ताम्। तत्र हि सुरूपा विदग्धा कामिन्यो भवन्ति।'

महीधर

अम्बेऽम्बकेऽम्बालिके न मानयति कश्चन।
सत्त्यश्वकः सुभद्रिकां कम्पीलवासिनीम्।'

हरिवंश पुराण के अनुसार पांचाल प्रदेश को मध्य-कोटि के जनपद राज्यों में रखा गया है। महावीर स्वामी ने भी जनता को यहीं से धर्मोपदेशों को सुनाया था। ऋषभदेव के पुत्र बाहुबली का राज्य त्यागना और मुनि होना देख पांचाल के राजकुमार भी मुनि हो गये। उस काल में पांचाल की मसालेदार मूंग की दाल एक प्रसिद्ध खाद्य पदार्थ थी।

(हरिवंश पुराण, ३-७, ११/६४, १८/१६०)

हिंदू जनश्रुतियों के अनुसार सांख्य शास्त्र प्रवर्तक कपिल मुनि की तपोभूमि काम्पिल्य के उपवनों में थी। जैन-पुस्तकों के अनुसार तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म यहीं हुआ था। विमलनाथ ने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त काम्पिल्य में ही वास किया। इसी गौरव के कारण समस्त जैनी काम्पिल्य को अपना तीर्थ मान कर यहां की रज अपने मस्तक से लगाते हैं। मुनि विमलनाथ साधारण प्रजाग्र नहीं थे। राजा द्रुपद से बहुत पूर्व इक्ष्वाकुवंशी राजा कृतवसु काम्पिल्य क अधिष्ठाता थे। उनकी रानी जयश्यामा के गर्भ से ही तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म हुआ था। (तिलोय पराणति, अ० २,)। विमलनाथ ने भी काम्पिल्य में कुछ समय राज्य किया। आखेट खेलते समय एक तालाब के जमे हुए वर्फ को देख कर उन्हें विश्व की नश्वरता का आभास हो गया और वे ससार से विरक्त हो उठे। (उत्तर पुराण, ५६।१४-१५ सर्ग, हरिवंश पुराण, ६०, सर्ग और विमलनाथ पुराण पृष्ठ १२७-३८६)।

उत्तर महाभारत काल के सम्राट् द्रुपद क कुछ संस्मरण जैन पुस्तकों में मिलते है। उत्तर पुराण में लिखा हुआ है कि राजा द्रुपद वहां राज्य किया करते थे। द्रोपदी स्वयंवर के सम्बन्ध में उत्तर पुराण मे लिखा गया है। कि वह यहीं काम्पिल्य में ही हुआ था।

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने अष्टाध्यायी मे सकाश तथा सांकाश्य का उल्लेख किया है। अष्टाध्यायी के अनुसार सकाश नाम के कई व्यक्ति काम्पिल्य में हुए थे। सकाश ने काम्पिल्य क सांकाश्य नामक भाग को बसाया होगा। पाणिनि के इसी कथन को कौमुदीकार भट्टोजी दीक्षित ने भी लिखा है।

'सकाशेन निर्वृत्तम् सांकाश्यम, सकाशादिभ्य[illegible] सांकाश्यम्। (सिद्धान्त कौमुदी तद्धित प्र० सूत्र १[illegible] 'बृहज्जातक' की महीधर-टीका मे काम्पिल्य क[illegible] मुहल्ले का नाम 'कपित्थिक' लिखा है।

कपित्थिके काम्पिल्यास्ये ग्रामे (महीधर)

ईसा की सातवीं शताब्दी में जिस स्थान [illegible] फाहियान ने सांकाश्य बताया उसी स्थान को हुएन[illegible] ने आठवीं शताब्दी में कपित्थिक बतलाया आज क[illegible] कम्पिल (काम्पिल्य) से संकिसा (सांकाश्य) और क[illegible] (कपित्थक) २० या २८ मील की दूरी पर है। इ[illegible] सिद्ध होता है कि ७वीं और ८वीं शताब्दी के समय काम्पिल्य अपने पूर्व स्वरूप म वर्तमान था।

शिकोहाबाद से फर्रुखाबाद जाने वाली ब्रॉंच ला[illegible] पर संकिसा ग्राम "मोटा" स्टेशन से दो या तीन मील [illegible] दूरी पर है। कुछ दिनों पहले वहां पुरातत्व विभा[illegible] और से खुदाई की गई थी। खुदाई करते समय वहां ए[illegible] समुन्नत, एवं उच्चकोटि क किसी नगर के होने [illegible] पता चला है बौद्ध संस्कृति की कुछ प्रतिमाएं भी मिल[illegible] हैं। कुछ वस्तुएँ जैन एवं वैदिक संस्कृति-सम्बन्धी भी मिल[illegible] हैं। सम्पूर्ण प्राप्त वस्तुओं का विवेचन करने से ज्ञात होता है कि क्रमशः यहां वैदिक, जैन और बौद्ध संस्कृतियों प्रधानता रही होगी।

काम्पिल्य अपनी प्राकृतिक शोभा और भौ[illegible] ऐश्वर्य के अतिरिक्त ज्ञान सम्पत्ति के लिये भी प्रसि[illegible] था। जिस प्रकार कहीं कहीं की मिठाइयां एवं अ[illegible] वस्तुएं प्रसिद्ध होती हैं, उसी प्रकार काम्पिल्य के विद्वान प्रसि[illegible] थे। (बृहदारण्यक उपनिषद् अ० ३, ब्रा० ६।१६) जि[illegible] समय अयोध्या में दशरथ का राज्य था और मिथिला [illegible] जनक का उस समय काम्पिल्य पांचाल के सम्राट् प्रवाह[illegible] जयवलि राज्य करते थे। वे स्वयं ही विद्वान् थे और प्राचीन उल्लेखों से प्रतीत होता है कि उस समय काम्पिल्य में एक विशाल विश्वविद्यालय भी था। इस विश्वविद्यालय में अनेक विद्याएं पढ़ाई जाती थी, और दूर दूर से विद्यार्थी यहां विद्या अध्ययन करने आया करते थे। (बृहदारण्यक उपनिषद् अ० ६ ब्रा० २) उक्त वर्णनों से यह भी पता

ही साथ समुचित प्रयत्न किया गया था । संस्कृत साहित्य की रीतियों में पांचाली एक प्रसिद्ध रीति है। वाक्य समासों की मध्यम वृत्ति पांचाली रीति कहलाती है।

पंचालिकी च लाटीया गौडीया च यथाक्रमम् ।
वैदर्भी च यथा सख्य चतस्त्रोरीतय. स्मृता ॥

यह पांचाली के विश्वविद्यालय की विशेषता थी जिसके कारण उस प्रदेश का नाम उस समय तक अमर रहेगा जब तक कि संस्कृत साहित्य ।

भारतीय पुरातत्व विभाग को काम्पिल्य जैसे प्राचीन शिक्षा केन्द्रों की खोज करनी चाहिये, क्योंकि इन केन्द्रों में हमारे अतीत का वैभव छिपा है। सम्भवत इस संक्रांति युग में भी यह हमारी शिक्षा पद्धति का निर्देश करे ।

वर्तमान कंपिल में गुप्त तथा मध्यकालीन अनेक प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं जिन्हें देखने से पता चलता है कि ईस्वी चौथी से लेकर दसवीं ग्यारहवीं शती तक यहाँ अनेक हिन्दू एवं जैन मन्दिर थे । यह स्थान जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। यहीं तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ स्वामी के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान ये चार कल्याणक हुए थे । भगवान महावीर ने भी इस नगर में उपदेश दिये थे । वर्तमान जैन मन्दिर में विमलनाथ जी की भव्य प्रतिमा है । इसके अतिरिक्त अनेक प्राचीन मूर्तियां भी यहां सुरक्षित हैं, जिनमें सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं । अब भी कम्पिल जैनियों का एक प्रसिद्ध धार्मिक क्षेत्र है ।

कंपिल में अनेक प्राचीन हिन्दू मन्दिर इस समय भी विद्यमान हैं। इनमें रामेश्वरनाथ महादेव का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है । जनश्रुति है कि लंका से लौट कर आने के बाद श्रीराम ने यहां मूर्ति का प्रतिष्ठापन अपने हाथों किया, इस मन्दिर को सिद्धपीठ भी कहा जाता है। कंपिल के अन्य दर्शनीय स्थानों में कपिलकुटी, कालेश्वर तथा कपिलवासिनी देवी का मन्दिर, विश्रान्तिघाट और भैरोंगिरि का स्थान हैं। इन स्थानों में अनेक कलापूर्ण अवशेष देखे जा सकते हैं। गजलक्ष्मी की एक अत्यन्त सुन्दर गुप्त कालीन मूर्ति कंपिल की एक दीवाल पर लगी है । गुप्त कालीन अनेक उत्कीर्ण शिलापट्ट तथा स्तम्भ भी यत्र तत्र देखे जा सकते हैं।

कंपिल में अनेक विद्वान और कवि हुए । प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर के संबंध में कहा जाता है कि वे यहीं पैदा हुए थे। ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि तोषनिधि यहां बहुत समय तक रहे । सत्रहवीं शती में यहां के निवासी चतुर्भुज मिश्र ने 'अमरुकशतक' पर भावचिन्तामणि नामक सुन्दर टीका लिखी । इस प्रकार कंपिल दीर्घकाल तक कला और साहित्य का केन्द्र रहा। इस समय इस स्थान की दशा शोचनीय है और अनेक प्राचीन स्मारक नष्ट होते जा रहे हैं जिनके उचित संरक्षण की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

संकिसा

[श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा]

उत्तर भारत के जिन प्राचीन नगरों को विशेष गौरव प्राप्त है उनमें एक सांकाश्य है । इस नगर के ध्वसावशेष उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में संकिसा गांव और के समीप बिखरे हुए हैं । यह गांव फर्रुखाबाद एटा तथा पुरी जिलों की सीमा पर २७°२०° अक्षांश तथा ‍२०° देशान्तर पर स्थित है । इसके समीप काली ी बहती है, जिसका प्राचीन नाम 'इक्षुमती' था । आज ल संकिसा पहुंचने के लिए सबसे सुगम मार्ग शिकोहाबाद र्रुखाबाद रेलवे लाइन के मोटा नामक स्टेशन से है हां से संकिसा लगभग चार मील पड़ता है । दूसरा मार्ग लना स्टेशन से है, जहां से संकिसा दक्षिण-पश्चिम ७ मील र पड़ता है ।

प्रचीन साहित्य में सांकाश्य या संकाश्य नगर के अनेक उल्लेख मिलते हैं । वाल्मीकि रामायण (आदिकाँण्ड, अध्याय ७०) में सीता के पिता सीरध्वज जनक के भाई कुशध्वज जनक का वृत्तांत मिलता है । जिस समय मिथिला में सीरध्वज जनक का शासन था उस समय सांकाश्य के राजा सुधन्वा थे । कुछ कारणों से इन दोनो राजाओं के बीच युद्ध छिड़ गया, जिसमें सुधन्वा की पराजय हुई । सीरध्वज ने अपने छोटे भाई कुशध्वज को सांकाश्य का अधिकारी बनाया । फर्रुखाबाद जिले में जनखद (जनक क्षेत्र) नामक एक अन्य प्राचीन स्थान है । इसका सम्बन्ध भी जनक के साथ बताया जाता है । सीता के विवाह के अवसर पर उसमें सम्मिलित होने के लिए कुशध्वज अपनी लड़कियों सहित सांकाश्य से मिथिला गये ।

पाणिनि ने अपने ग्रन्थ अष्टाध्यायी (४,२,८०) में सांकाश्य का उल्लेख किया है । महात्मा बुद्ध के समय से इस नगर का महत्व बढ़ा । जो स्थान बुद्ध के जीवन से विशेष रूप से सम्बन्धित हैं, उनमें एक सांकाश्य भी है । प्रसिद्ध है कि यहीं पर बुद्ध भगवान त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से सीढ़ी द्वारा उतरे थे उनके एक ओर इन्द्र व दूसरी ओर ब्रह्मा उतरे थे । अवतरण का यह स्थान संकिसा गांव के पास बिसहरी देवी के मन्दिर के समीप माना जाता है । इसकी बौद्ध लोग बड़ी श्रद्धा के साथ प्रदक्षिणा करते हैं । बौद्ध साहित्य में सांकाश्य की चर्चा बहुत मिलती है । भारतीय एवं यूनानी कलाकारों ने सांकाश्य में बुद्ध के अवतरण का चित्रण उनके जीवन की अन्य प्रमुख घटनाओं के साथ बहुसंख्यक कलाकृतियों में किया है ।

प्राचीन काल में सांकाश्य, कन्नौज तथा अतरंजी नगरों के बीच में पड़ता था । मथुरा से भी यहां को एक मार्ग जाता था । ई० चौथी शती में फाह्यान नामक चीनी यात्री मथुरा से सांकिसा पहुंचा था । दूसरा चीनी यात्री हुएनसांग ६३६ ई० में 'पीलोशन' (सम्भवतः अतरंजी खेड़ा) से सांकाश्य पहुंचा । इस यात्री ने इस नगर का नाम कीपिथ (कपित्थ) दिया है । उसने इस नगर का तथा उस राज्य का, जिसकी यह राजधानी थी, विस्तार से वर्णन किया है । उसके विवरण का मुख्य अंश नीचे दिया जाता है ।

"इस राज्य का क्षेत्रफल २०००, ली (लग० ३३३ वर्ग मील) और राजधानी का २० ली (लग० ३ॄ वर्ग मील) है । प्रकृति और पैदावार वीरासन प्रदेश के समान है । मनुष्यों का स्वभाव कोमल और उत्तम है तथा लोग विद्योपार्जन में लगे रहते हैं । यहां १० संघाराम १००० साधुओं सहित हैं, जो सम्मतीय-संस्था के हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी हैं । कुल दस देव मन्दिर हैं जिनमें अनेक पन्थ के लोग उपासना करते हैं । ये सब लोग महेश्वर (शिव) के उपासक हैं और बलिप्रदान आदि के करने वाले हैं । नगर के पूर्व बीस ली की दूरी पर एक बड़ा संघाराम बहुत सुन्दर बना है । शिल्पी ने इसके बनाने में बड़ी बुद्धिमता से काम

यात्री हुएनसांग ने अशोक के जिस स्तम्भ का उल्लेख किया है वह पूरा अभी दुर्भाग्य से अभी तक प्राप्त नहीं हो सका केवल उसका शीर्ष मिला है जो आज भी सकिसा में विद्यमान है यह शीर्ष विषहरी देवी के मन्दिर के समीप रखा है यह इसकी ओपयुक्त चमक दर्शकों को विशेष रूप से आकर्षित करती है। हुएनसांग ने शीर्ष पर उत्कीर्ण जानवर को सिंह लिखा है परन्तु यह जानवर वास्तव में हाथी है जिसकी सूंड टूट गई है। सम्भवतः दूर से देखने के कारण सूंड़ रहित हाथी को हुएन सांग ने शेर समझ लिया हो। इस शीर्ष पर कमल पुष्प तथा पीपल के पत्तों का चित्रण बड़ी सुन्दरता से हुआ है।

इस महत्वपूर्ण शीर्ष के पास ही एक पुरुष प्रतिमा खड़ी है इसकी ऊँचाई तीन फुट सात इन्च है सिर का ऊपरी भाग टूट गया है मूर्ति कर्णकुण्डल तथा कटिबंध पहने हुए है। घुटनों के नीचे तक धोती है और ऊपर उत्तरीय है। इस मूर्ति की निर्माण-शैली प्रायः वैसी ही है जैसी कि मौर्य तथा शुंगकाल की यक्ष-प्रतिमाओं में मिलती है। मूर्ति का निर्माण-काल ई० पूर्व दूसरी शती है।

सकिसा में एक विशाल शिवलिंग तथा वेदिका-स्तम्भ भी विद्यमान है पाषाण तथा मिट्टी की कितनी ही मूर्तियां, जो यहां प्राप्त हुईं थी, लखनऊ तथा अन्य संग्रहालयों को भेज दी गईं। हाल में सकिसा गांव के सम्भ्रांत निवासी श्री चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित के द्वारा यहां प्राप्त होने वाली अनेक प्राचीन वस्तुओं का अच्छा संग्रह किया गया है। इन वस्तुओं में पत्थर और मिट्टी की अनेक कलापूर्ण मूर्तियां, चांदी तांबे के सिक्के, मनके, अभिलिखित मुद्राएँ पुराने पासे (अक्ष) आदि हैं। ई० पूर्व दूसरी और पहली शती की निर्मित मिट्टी की कुछ मूर्तियां कला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है।

सकिसा के टीलों में चांदी और तांबे के आहत (पचमार्क्ड) सिक्के तथा कुषाण एवं पंचाल राजाओं के सिक्के अधिकता से प्राप्त होते हैं। कुछ दिन पूर्व यहां से एक महत्व पूर्ण ईंट (११" × ६") मिली है, जिस पर ई० पूर्व दूसरी शती की ब्राह्मी लिपि में यह लेख खुदा है—

'भवसमत सवजीवलोके पुठगोरयस
भटिकपुतस जेठस भागविपुतस।'

लेख की भाषा प्राकृत है। इसमें भटिक तथा भार्गवी के पुत्र जेठ का नाम आया है।

सकिसा गांव ऊँचे टीले पर बसा है। अन्य टीलों की शृंखला गांव के बाहर काफी दूर तक फैली है। इसकी लम्बाई १५०० फुट और चौड़ाई १००० फुट है। लोग इसे किला कहते हैं। सकिसा गांव के पूर्व लगभग २फर्लांग दूर चौखन्डी नामक स्थान है। यहां खुदाई करते समय पुरानी ईंटें बहुत बड़ी संख्या में मिली थीं। चौखन्डी के बाईं ओर की भूमि 'पन्यवाली' कही जाती है। इसके आगे दक्षिण की तरफ 'बीबी का कोट है। चौखन्डी से लगभग दो फर्लांग उत्तर-पूर्व की ओर 'कुम्हर गड्ढे' के खेत और टीले हैं। बरसात में यहां मिट्टी की मूर्तियां और मुद्राएँ प्रायः मिलती हैं। कुछ दूर पर 'टेढ़ा महादेव' का प्रसिद्ध मंदिर है। १६ फुट से अधिक लम्बी पत्थर की एक लाट को टेढ़ा महादेव कहते हैं। इस लाट का व्यास ३८' है। इसके समीप ही मथुरा के लाल बलुए पत्थर का बना एक वेदिका स्तम्भ (ऊँचाई २' ६") है। यह अठपहलू ढंग का बना है और इसका निर्माण काल लगभग ई० पूर्व १०० है।

टेढ़ा महादेव मन्दिर के उत्तर पूर्व लगभग १०० गज की दूरी पर नागसर है। यह तालाब पहले पक्का बना था। इसे अब लोग कन्धाई ताल भी कहते हैं। सकिसा आने वाले बौद्ध लोग इसकी परिक्रमा करते हैं। सकिसा में अन्य अनेक पुराने टीले तथा स्थान हैं—यथा कोट खारुद कोट मुभा, कोट टिढ़िया, कोट ढूंरा, तरा का टीला, गोसर ताल आदि ये तथा अन्य स्थान प्राचीन काल की न जाने कितनी स्मृतियां सजोये हुए हैं। देश विदेश के बौद्ध तथा अन्य श्रद्धालु लोग सकिसा आकर इन पवित्र स्थलों का दर्शन कर अपने को कृतकृत्य मानते हैं।

सकिसा का पुराना विशाल नगर किस समय ध्वस को प्राप्त हुआ यह बताना कठिन है। मुसलमानों के पूर्व यह नगर कनौज के गहड़वाल राज्य के अन्तर्गत था। सम्भवत. उसके बहुत पहले सांकाश्य का प्राचीन महत्व नष्ट हो चुका था, और वह ध्वंसावशेषों के रूप में परिणित हो
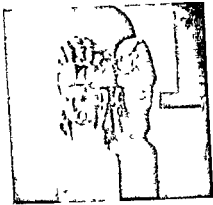
शिवलिंग (कन्नौज)
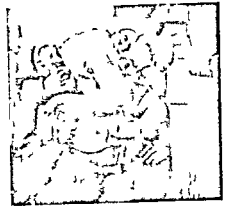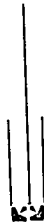
नृत्य करते हुये गणेश-कन्नौज

चतुभुज विष्णु ६ वीं शती कन्नौज

कन्नौज परिचय

श्री कृष्णदत्त वाजपेयी, एम० ए०, अध्यक्ष, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा।

—:○:—
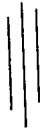
उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में कन्नौज एक छोटा सा नगर है। भारत के प्राचीन नगरों में इसका स्थान बड़े महत्व का रहा है। ईसवीं छठी शती के अन्त से लेकर उत्तर भारत में मुसलमानी शासन की स्थापना के समय १२वीं शती तक कन्नौज उत्तर भारत का प्रमुख राजनीतिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रहा। प्राचीन साहित्य में इस नगर के सम्बन्ध में जो प्रचुर उल्लेख मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि प्राक्-ऐतिहासिक काल में भी कन्नौज की प्रसिद्धि हो गई थी। बाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा पुराणों में इसके नाम प्रायः 'कान्यकुब्ज' और 'महोदय' मिलते हैं इस नगर को बसाने वाले राजा का नाम 'कुशनाभ दिया है। प्राचीन अनुश्रुति के अनुसार चन्द्रवंशी राजा कुशनाभ के एक सौ सुन्दरी कन्याएँ थीं। एक दिन जब वे उद्यान में क्रीडा कर रहीं थीं, वायुदेव उन्हें देख कर मोहित हो गये। उन्होंने उनके साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की, पर लड़कियों ने साफ मना कर दिया इस धृष्टता पर क्रुद्ध होकर वायु ने उन रूपगर्विता बालाओं को शाप दिया कि वे सब कुब्जा (कुबड़ी) हो जाय। फलस्वरूप इन कन्याओं के कुब्जी भूत हो जाने से उस जनपद का नाम 'कन्याकुब्ज' हो गया। यही कालान्तर में 'कान्यकुब्ज' और फिर कन्नौज कहलाया।

नोट —पुराणों में कहीं-कहीं वायु के स्थान पर वय नामक ऋषि का नाम दिया है। चीनी यात्री हुएनसांग ने अपने समय की प्रचलित जनश्रुति के आधार पर कुसुमपुर (प्राचीन कन्नौज) के राजा का नाम ब्रह्मदत्त लिखा है। इस राजा को १०० कन्याओं में से किसी एक को विवाह में देने की प्रार्थना एक ऋषि ने की। राजा ने प्रत्येक कन्या से ऋषि की बात कही, सिवाय सबसे छोटी कन्या के अन्य सबने इनकार कर दिया। जब ऋषि को यह बात ज्ञात हुई तब उसने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि उस कन्या को छोड़ शेष सभी कुबड़ी हो जावें। उन ९९ कुबड़ी कन्याओं के कारण कुसुमपुर नगर का दूसरा नाम 'कन्याकुब्ज' प्रसिद्ध हो गया।

इस अनश्रुति से इतना तो स्पष्ट है कि इस नगर और उसके जनपद का प्राचीन नाम कन्याकुब्ज या कान्यकुब्ज था नगर के अन्य नाम महोदय, कुशिक, गाधिपुर, कुशस्थल, कुसुमपुर आदि भी मिलते हैं। इन नामों के सम्बन्ध में अनेक गाथाएँ प्रचलित हैं। प्रतीहार राजाओं के लेखों में प्रायः जनपद के लिए 'कान्यकुब्ज' तथा उसकी राजधानी के लिए 'महोदय' नाम मिलता है। पौराणिक वर्णनों के अनुसार प्राचीन कान्यकुब्ज जनपद पर जिस राजवंश का शासन रहा, उस का प्रारम्भ पुरूरवा के पुत्र अमावसु से हुआ। इस वंश के राजाओं के नाम अमावसु, भीम, कांचनप्रभ, सुहोत्, जह्नु, कुश आदि मिलते हैं। जह्नु से लेकर कुश के समय तक जिन राजाओं का कान्यकुब्ज पर शासन रहा उनके नाम प्रायः सभी पौराणिक सूचियों में एक से मिलते हैं। इन राजाओं के नामों के अतिरिक्त हमें उनके शासन-प्रबन्ध तथा कन्नौज की तत्कालीन दशा के विषय में निश्चित रूप से कुछ पता नहीं चलता। जह्नु, सुहोत्, कुश, कुशनाभ तथा विश्वामित्र कान्यकुब्ज जनपद के प्रतापी शासक हुए। महाभारत युद्ध के समय में कान्यकुब्ज दक्षिण पचाल के अन्तर्गत रहा जिसकी राजधानी कांपिल्य थी।

महात्मा बुद्ध और उनके बाद।

ई० पूर्व छठी शती से हमें कन्नौज के सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट बातें ज्ञात होने लगती हैं। बौद्ध ग्रन्थों तथा चीनी यात्रियों के वर्णनों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध कान्यकुब्ज नगर में पधारे थे। ई० सातवीं शती में यहाँ आये हुए चीनी यात्री हुएनसांग ने अपने वृत्तान्त में लिखा है कि कान्यकुब्ज नगर की पश्चिमोत्तर दिशा में सम्राट् अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप था। इसी स्थान पर पहले बुद्ध जी ने सात दिन ठहर कर वहां सर्वोत्तम सिद्धान्तों का उपदेश दिया था। स्तूप के पास स्थित अन्य अवशेषों और कई लघु स्तूपों की भी चर्चा हुएनसांग ने की है। उसने लिखा कि एक विहार के

इस राज्य की पूर्वी सीमा पर था।

हर्ष वर्धन

(६०६-६४७ ई०) राज्य वर्धन के बाद उसका छोटा भाई हर्ष राज्य का अधिकारी हुआ। 'हर्ष चरित्र' में इस राजा के प्रारम्भिक काल का विस्तृत वर्णन मिलता है हुएन-सांग नामक प्रसिद्ध चीनी यात्री हर्ष के शासन काल में ही भारत आया। उसने हर्ष के समय का हाल विस्तार से लिखा है इसके अतिरिक्त 'मजुश्रीमूलकल्प' आदि ग्रन्थों से तथा हर्ष के समय के प्राप्त कई अभिलेखो से तत्कालीन इतिहास का पता चलता है हर्ष ने राज्यारोहण के बाद ही एक बडी सेना तैयार की और उसकी सहायता से उत्तर तथा पूर्व भारत के अनेक राज्यों को जीता। राज्यश्री कन्नौज के कारागार से विन्ध्य के जगलों में भाग गई थी। हर्ष उसे वहा से कन्नौज लाया। वह चाहता था कि राज्यश्री कन्नौज-राज्य का शासन करे, परन्तु राज्यश्री तथा मत्रियों के आग्रह से हर्ष को ही शासन का सचालन स्वीकार करना पडा। कन्नौज को हर्ष ने अपना प्रधान राजनैतिक केन्द्र बनाया। उस समय से लेकर अगली कई शताब्दियों तक इस नगर को उत्तर भारत की सर्वश्रेष्ठ राजधानी होने का गौरव प्राप्त हुआ।

हर्ष ने कुछ वर्षो में ही अपनी विशाल सेना की सहायता से एक बडे साम्राज्य का निर्माण कर लिया। वर्तमान उत्तर प्रदेश, बिहार बगाल और उडीसा के प्रायः सभी राज्य हर्ष के साम्राज्य के अतर्गत हो गये। पश्चिम में जालन्धर तक उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। मथुरा का प्रदेश हर्ष के साम्राज्य के अतर्गत रहा। इस प्रकार हर्षवर्धन ने उत्तर भारत में अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित कर लिया। इसके बाद उसने दक्षिण को भी जीतने की इच्छा से चढ़ाई की। परन्तु वातापी के तत्कालीन चालुक्य सम्राट् पुल्केशी द्वितीय से उसे पराजित होना पड़ा, जिससे हर्ष की यह इच्छा पूरी न हो सकी। चालुक्य वश के लेखों में हर्ष की उपाधि 'सकलोत्त-रापथनाथ' मिलती है, जिससे समग्र उत्तरापथ पर हर्ष के एकाधिकार का पता चलता है।

हर्षवर्धन ने अपने राज्यारोहण-वर्ष से एक नया सवत् चलाया, जो 'हर्ष सवत्' के नाम से प्रसिद्ध है। ११वीं शताब्दी के लेखक अलबेरुनी ने लिखा है कि श्री हर्ष का सवत् मथुरा और कन्नौज में प्रचलित था। हर्ष वधन ने एक बड़े एव दृढ़ साम्राज्य की स्थापना तो की ही, उसके समय में साहित्य, कला और धर्म की भी उन्नति हुई। बाणभट्ट तथा मयूर-जैसे प्रसिद्ध लेखक उसकी राज्य सभा में विद्यमान थे। बाण का विद्वान पुत्र भूषणभट्ट, आचार्य दडी मातग-दिवाकर तथा मानतुंगाचार्य भी हर्ष की सभा के रत्न माने जाते है। हर्ष स्वय एक अच्छा लेखक था। उसके तीन नाटक-रत्नावली, प्रियदर्शिका तथा नागानन्द मिले हैं, जिनसे हर्ष की साहित्यिक प्रतिभा का पता चलता है। नालदा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय को हर्ष ने सहायता प्रदान की। उसने नालदा में एक विशाल बौद्ध विहार का भी निर्माण कराया। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मों का भी हर्ष आदर करता था। उसकी दानशीलता बहुत प्रसिद्ध है। प्रयाग में गगा-यमुना के सगम पर प्रति पाचवें वर्ष हर्ष दान किया करता था। कन्नौज नगर की हर्ष के समय में बड़ी उन्नति हुई। यहा अनेक भव्य इमारतो का निर्माण हुआ। धार्मिक शास्त्रार्थ भी यहा हुआ करते थे,जिनमें सभी विचारधाराओं के लोग भाग लेते थे। हुएन साग को सम्राट् हर्ष ने कन्नौज की सभा में बहुत सम्मानित किया। हर्ष उसकी विद्वत्ता और धार्मिकता से अत्यधिक प्रभावित हो गया था।

हर्ष के शासन में प्रजा सुखी थी। राज्य का प्रबन्ध अच्छा था। बडे अपराधो के लिये कठोर दड दिये जाते थे। अधिकारी लोग अपने कर्तव्यों का बडी सतर्कता से पालन करते थे। जमीन की आय का छठा भाग करके रूप में लिया जाता था। सभी धर्मों के मानने वालों को पूरी स्वतत्रता थी। मथुरा में उस समय पौराणिक हिन्दू धर्म का जोर हो चला था। जैसा कि तत्कालीन साहित्य एव कला-कृतियों से प्रकट होता है।

चीनी यात्री हुएन-साग ने कन्नौज का विस्तार से वर्णन किया है। उसके समय में कन्नौज नगर की लम्बाई २०ली (लगभग साढ़े तीन मील) और चौड़ाई १ मील

महेंद्रपाल की शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है।

महीपाल (९१२-९४४ ई०) यह महेन्द्रपाल का दूसरा लड़का था और अपने बड़े भाई भोज द्वितीय के बाद साम्राज्य का अधिकारी हुआ। संस्कृत के उद्भट विद्वान राजशेखर इसी के समय में हुये, जिन्होंने महीपाल को आर्यावर्त का महाराजाधिराज लिखा है और उसकी अनेक विजयों का वर्णन किया है। अलमसूदी नामक मुसलमान यात्री बगदाद से ९१५ ई० में भारत आया। प्रतीहार साम्राज्य का वर्णन करते हुये इस यात्री ने लिखा है कि इसकी दक्षिणी सीमा राष्ट्रकूट राज्य से मिलती थी और सिंध प्रांत का एक भाग तथा पंजाब उसमें सम्मिलित थे। प्रतीहार सम्राट् के पास घोड़ और ऊंट बड़ी संख्या में थे। साम्राज्य के चारों कोनों में सात लाख से लेकर नौ लाख तक फौज रहती थी। उत्तर में मुसलमानों की शक्ति तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों को बढ़ने से रोकने के लिये इस सेना का रखना बहुत जरूरी था।

राष्ट्रकूट-आक्रमण—९१६ ई० के लगभग दक्षिण से राष्ट्रकूटों का पुनः एक बड़ा आक्रमण हुआ। इस समय राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय था। उसने एक बड़ी फौज लेकर उत्तर की ओर प्रयाण किया। उसकी सेना ने अनेक नगरों को बर्बाद किया जिनमें कन्नौज मुख्य था। इन्द्र ने महीपाल को पराजित करने के बाद प्रयाग तक उसका पीछा किया। परन्तु इन्द्र को उसी वर्ष दक्षिण लौट जाना पड़ा। उसके जाने के बाद महीपाल ने पुनः अपनी शक्ति को संभाला। परन्तु राष्ट्रकूटों के इस बड़े आक्रमण के बाद प्रतीहार साम्राज्य को गहरा धक्का पहुँचा और उसका पुराना गौरव नष्ट हो चला। ९४०ई० के लगभग राष्ट्रकूटों ने उत्तर की ओर बढ़ कर प्रतीहार साम्राज्य का एक बड़ा भाग अपने राज्य में मिला लिया। साम्राज्य के कई अन्य प्रदेशों में भी सामन्त लोग स्वतन्त्र होने लगे। अब महान् प्रतीहार साम्राज्य का पतन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगा।

परवर्ती प्रतीहार शासक लगभग ९४४-१०३५ई० महीपाल के उत्तराधिकारी क्रमशः महेन्द्रपाल, देवपाल, विनायकपाल विजयपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल, तथा यशपाल नामक प्रतीहार शासक हुये। इनके समय में साम्राज्य के कई प्रदेश लघु स्वतन्त्र होगये। बुन्देलखण्ड में महाकोशल में चन्देल, कल्चुरि, मालवा में परमार, सौराष्ट्र में चालुक्य, पूर्वी राजस्थान में चाहमान, मेवाड़ में गुहिल तथा हरियाना में तोमर आदि अनेक राजवंशों ने उत्तर भारत में अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। इनमें आपस में शक्ति-प्रसार के लिये कुछ समय तक कशमकश चलती रही।

गुर्जर प्रतीहार शासन में कला की उन्नति

गुर्जर प्रतीहार राजाओं के शासन काल में कन्नौज में कला की बड़ी उन्नति हुई। इन राजाओं में नागभट द्वितीय, मिहिरभोज, महेन्द्रपाल और महीपाल प्रतापी शासक हुए। इनके समय में कन्नौज हिन्दू धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। शिव, विष्णु और देवी के अनेक मन्दिर इन राजाओं के राज्य काल में बने, जिनके अवशेष बड़ी संख्या में उपलब्ध हुए है। इन्हें देखने से पता चलता है कि ई० आठवीं शती से लेकर दसवीं शती के अन्त तक कन्नौज में कला का बहुमुखी विकास होता रहा। ये कलावशेष वर्तमान कन्नौज नगर और उसके आस पास बड़ी संख्या में बिखरे हुये मिलते है। वास्तव में गुर्जर-प्रतीहार कालीन कला के लिए उत्तर-भारत में कन्नौज का स्थान अद्वितीय है। जो मूर्तियां यहां मिलती है उनमें विष्णु, महाविष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा, गणेश और महिष मर्दिनी की प्रतिमाएं अधिक है। हाल में शिव-पार्वती परिणय की एक उल्लेखनीय विशाल मूर्ति कन्नौज में मिली है। इसमें शिव और उमा का अंग विन्यास तथा पाणिग्रहण के समय दोनों का भाव कलाकार ने अत्यन्त सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। महाविष्णु तथा विराट् रूप की कई उत्कृष्ट प्रतिमायें कन्नौज में मिली हैं। चतुर्भुजी विष्णु की अनेक मूर्तियों की कला भी उच्चकोटि की है। देवी की मूर्तियों में महिष मर्दिनी दुर्गा की प्रतिमाएँ अधिक हैं। एक मुख तथा चतुर्मुख शिवलिंग भी कई मिले हैं इनमें से कुछ तो मूर्ति विज्ञान की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं। नृत्य करते हुए गणपति की कई सुन्दर मूर्तियें भी प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त, ब्रह्मा, इन्द्र, कार्तिकेय, सूर्य आदि देवताओं की भी प्रतिमाएं मिली हैं। इन कलाकृतियों को

चालीस से ऊपर अभिलेख प्राप्त हो चुके है। गोविन्द चन्द्र ने राज्य का विस्तार प्रारम्भ कर दिया। कुछ समय बाद प्राय. सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश और मगध का एक बड़ा भाग उसके अधिकार में आ गया। पूर्व में पाल तथा सेन राजाओं से गोविन्द चन्द्र को लड़ना पड़ा। चन्देलों को परास्त कर उसने उनसे पूर्वी मालवा छीन लिया इस प्रकारदक्षिण कोशल के कलचुरि राजाओं से भी उसका युद्ध हुआ। राष्ट्रकूट, चालुक्य, चोल तथा कश्मीर के राजाओं के साथ गोविन्द चन्द्र ने राजनैतिक मैत्री स्थापित की। मुसलमानों को आगे बढ़ने से रोकने में भी गोविन्दचन्द्र सफल हुआ। उस के द्वारा उत्तर भारत में एक विस्तृत एव शक्तिशाली राज्य की स्थापना की गई। उसके दीर्घ शासन काल में मध्य देश में शांति स्थापित रही। कन्नौज नगर के गौरव को गोविन्दचन्द्र ने एक बार फिर से बढ़ाया। यह शासक वैष्णव था, इसने काशी के आदिकेशव घाट में स्नान कर ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा दी। इसकी रानी कुमारदेवी के द्वारा सारनाथ में एक नये बौद्ध विहार का निर्माण कराया गया। गोविन्द चन्द्र ने स्वय भी श्रावस्ती के बौद्ध भिक्षुओं को ६ गांव दान में दिये। इन बातो से इस शासक की धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता का पता चलता है। इसके ताम्र पत्रों में गोविन्दचन्द्र की उपाधियां 'महाराजाधिराज तथा विविध विद्या विचार वाचस्पति' मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह राजा विद्वान था। इसके एक मन्त्री लक्ष्मीधर के द्वारा 'कृत्य कल्पतरु' नामक ग्रंथ की रचना की गई, जिसमें राजनीति तथा धर्मविषयक अनेक बातो का विवेचन है।

गोविन्दचन्द्र के सोने और तांबे के सिक्के मथुरा से लेकर बनारस तक मिलते हैं मिश्रित धातु वाले स्वर्ण सिक्कों की सख्या बहुत अधिक है। इन पर एक ओर श्री मद्गोविन्द चन्द्रदेव लिखा रहता है और दूसरी तरफ बैठी हुई लक्ष्मी की मूर्ति रहती है। ये सिक्के चवन्नी से कुछ बड़े रहते हैं। तांबे के सिक्के के अपेक्षाकृत कम मिलते है।

विजयचंद्र या विजयपाल (११५५-७० ई०)

गोविंदचंद्र के बाद उसका पुत्र विजयचन्द्र राज्य का शासक हुआ। कमौली (जि० बनारस) से प्राप्त एक ताम्रपत्र से पता चलता है कि उसने मुसलमानों से युद्ध कर उन्हें परास्त किया। यह युद्ध गजनी शासक खुसरो या उसके लड़के खुसरो मलिक से हुआ होगा। विजयचंद्र भी वैष्णव था और इसने अपने राज्य में कई विष्णु मंदिरों का निर्माण कराया। मथुरा में श्रीकृष्ण जन्म-स्थान पर स० १२०७ (११५० ई०) में विजयचन्द्र के द्वारा एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया गया। उस समय विजयचंद्र सम्भवतः युवराज था और अपने पिता की ओर से शासक था। अभिलेख में राजा का नाम विजयपाल देव दिया है। पृथ्वीराज रासो में भी विजयचन्द्र का नाम विजयपाल ही मिलता है। रासो के अनुसार विजयपाल ने कटक के सोमवन्शी राजा पर तथा दिल्ली, पाटन, कर्नाटक आदि देशो पर चढ़ाई की और वहां के राजाओं को परास्त किया। लेखो से ज्ञात होता है कि इसने अपनी जीवितावस्था में ही अपने पुत्र जयचंद्र को राज्य कार्य सौंप दिया सभवत. ऐसा करके उसने अपने वन्श की परम्परा का पालन किया।

जयचन्द्र (११७०-९४ ई०)

—यह विजयचन्द्र का पुत्र था। रासो के अनुसार जयचंद्र दिल्ली के राजा अनङ्ग-पाल की पुत्री से उत्पन्न हुआ था। नयचन्द्र द्वारा रचित 'रंभामन्जरी नाटिका से ज्ञात होता है कि इसने चंदेल राजा मदनवर्म देव को परास्त किया। इस नाटिका तथा रासो से यह भी पता चलता है कि जयचन्द्र ने शहाबुद्दीन गोरी को कई बार पराजित कर उसे भारत से भगा दिया। मुसलमान लेखकों के विवरणो से ज्ञात होता है कि जयचन्द्र के समय में गाहड़वाल साम्राज्य बहुत विस्तृत हो गया। इब्न असीर नाम लेखक ने तो उसके राज्य का विस्तार चीन साम्राज्य की सीमा से लेकर मालवा तक लिखा है। पूर्व में बगाल के सेन राजाओं से जयचन्द्र का युद्ध एक दीर्घकाल तक जारी रहा।

जयचन्द्र के शासन काल में बनारस और कन्नौज की बड़ी उन्नति हुई। कन्नौज, असनी (जि० फतेहपुर) तथा बनारस में जयचन्द्र के द्वारा मजबूत किले बनवाये

मुसलमानी शासन काल में कन्नौज की राजनैतिक ता वैसी न रही जैसी कि पहले थी। परन्तु इस नगर राजनैतिक महत्व बिलकुल समाप्त नही हो गया। ली सल्तनत के युग में तथा मुगलकाल में भी अनेक हासकारों ने कन्नौज का उल्लेख किया है। जहाँ फौजी ा भी बहुत समय तक रहा।

रवर्ती इतिहास

१८ वी शती के प्रारम्भ में फरुखाबाद नगर की व पड़ी और धीरे २ यह नगर शासन का केन्द्र बना। न्नौज नगर की स्थिति अब बहुत गौण हो गई और सका प्राचीन वैभव नष्ट प्राय हो गया। १८ वीं शती के न्त में जब टनट नामक अंग्रेज यात्री कन्नौज गया तो उसने देखा कि नगर तक पहुँचने के लिए जंगल पार करना पड़ता था। बीच बीच में तम्बाकू के खेत थे। प्राचीन वैभव शाली नगर के ध्वसावशेष इधर उधर बिखरे पड़े थे, कहीं दीवालें, कहीं टूटे हुए फाटक और कहीं इमारतों के अन्य टुकड़े पड़े हुए थे। जो भी पुरानी इमारतें बची थी उनकी दशा बहुत बुरी थी जो थोड़े से लोग नगर में निवास कर रहे थे वे गरीब थे और पुरानी दीवालों के सहारे झोपड़ियाँ बनाकर उनमें निवास कर रहे थे। एक बड़े विस्तृत भू-भाग में पुराने टीले और ढूह दिखाई पड़ रहे थे। इसी समय डनियल नामक एक अंग्रेज चित्रकार भी कन्नौज आया और उसने यहाँ के कुछ चित्र तैयार किये। इन चित्रों से तत्कालीन कन्नौज नगर की दशा का आभास मिलता है।

१८०१ ई० में कन्नौज अंग्रेजों के अधिकार में आगया। परन्तु अंग्रेजी शासनकाल में भी इस नगर की उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया गया। कन्नौज के समीप गंगा की खादर में भयावना जंगल था जिसमे चीते तथा अन्य हिन्सक जन्तु दिखाई पड़ते थे। १८०५ ई० में मेजर थोर्न नामक एक अंग्रेज के लेख से इसकी पुष्टि होती है।

इस प्रकार हमने देखा कि जो नगर कई शताब्दियों तक भारत का एक प्रमुख राजनैतिक केन्द्र रहा और जहाँ साहित्य, मूर्तिकला तथा स्थापत्य का दीर्घकाल तक विकास होता रहा वह काल के दुर्दान्त आक्रमण से किस प्रकार आक्रांत हुआ और किस प्रकार उसका प्राचीन गौरव वहीं की धूल में ही विलीन हो गया। क्या कन्नौज की प्राचीन गरिमा का अन्त भी फिर से लौट सकेगा,

ग्रोभल नहीं हो सकते हैं। बारहवीं शती में कन्नोज के राजा विजयचन्द के ग्राश्रित प्रसिद्ध कवि श्री हर्ष हुए जिन्होंने 'नैषधीय चरित्र' लिखा जो ग्रगाध ज्ञान ग्रौर विद्या का परिचायक है। इसके ग्रर्थ लगाना बड़े बड़े पंडितों के लिये भी दुरुह है। इस प्रकार इस क्षेत्र की साहित्यिक परम्परा ने भारतीय साहित्य को परम धनी बनाया। हर्ष काल से बारहवीं शती तक संस्कृत कवियों का बाहुल्य रहा है इन कवियों ग्रौर ग्रंथों का परिचय सूक्ष्म रूप में नीचे दिया जा रहा है।

बारहवीं शती के पश्चात् हिन्दी कवियों ग्रौर उसके साहित्य का प्रादुर्भाव होने लगता है कहा जाता है। कि हिन्दी गद्य प्रवर्तकों में मुख्य इंशाग्रल्ला खां इसी जनपद के शम्शाबाद स्थान की निधि थे ग्रौर ग्रमीर खुसरो भी इसी जनपद क स्थान पटियाली के निवासी थे। हिन्दी कवियों का वर्णन तीन श्रेणियों में किया जारहा है। बचनेशजी के पूर्ववर्ती, उनके समवर्ती व परवर्ती। यह विभाजन किसी विशेष प्रयोजन से नहीं किया गया है। बचनेशजी को केन्द्रमान कर उनके काल क्रमो में एक विभाजन मात्र रखा गया है।

निस्सदेह यह क्षेत्र साहित्यिक रूप से धनी रहा है ग्रौर है परन्तु यथेष्ट प्रयत्न न होने के कारण बहुत से नाम हमारे सन्मुख नहीं ग्रा पाए हैं हम लोगों ने भी ग्रब तक जो खोज की है वह पूर्ण नहीं कही जा सकती। तथ्य लगातार प्रकाश में ग्राते रहते हैं। विवरणों को वैयक्तिक सम्पत्ति समझकर छिपा कर रखने की प्रवृत्ति ने बड़े उपयोगी साहित्य को नष्ट कर दिया है नीचे के कवियों की बहुत सी कृतियों का पता नहीं लगता है। जिनके पास थी, खो गई ग्रथवा ग्रन्य ग्रसावधनियों के कारण सुरक्षित न रहसकीं। प्रस्तुत ग्राधार पर एक खोज कार्य की योजना बनाई जा सकती है ग्रौर उसके सफल होने पर हमारे हाथों में एक ग्रमूल्य निधि ग्रा-सकती है। इस प्रदेश की साहित्यिक चेतना को जगृत करने के हेतु सदैव ही कुछ न कुछ प्रयत्न होते रहे हैं। कतिपय पत्रों ग्रौर सस्थाग्रों का सूक्ष्म वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

जनपद साहित्यिक विकास के प्रयत्नों का विहंगावलोकन

पत्र, पत्रिकायें

'कवि–व–चित्रकार' (६४ वर्ष पूर्व)

ग्रबसे चौसठ वर्ष (सवत् १९४८ वि० में) प० कुन्दनलाल शर्मा के सम्पादकत्व में फतेहगढ़ से 'कवि-व-चित्र-कार' नाम का एक त्रैमासिक पत्र प्रकाशित किया गया था इस पत्रका उद्देश्य, जैसा कि उसके नाम से प्रकट है, कविता ग्रौर चित्रकला की उन्नति करना था। प० कुन्दनलालजी फतेहगढ़ कलक्टरी में हेडक्लर्क थे, ग्रौर उस समय वहां कलक्टर थे श्री एफ० एस० ग्राउस, एम० ए० सी० ग्राई० ई०। इन्हीं ग्राउस साहब के प्रोत्साहन से 'कवि-व-चित्रकार' का जन्म हुग्रा था। ग्राउस साहब को हिन्दी से बड़ा प्रेम था। उन्होंने तुलसी-कृत रामायण का ग्रग्रेजी में ग्रनुवाद किया, जिससे यह हमारा महान काव्य विदेशों तक में विख्यात हुग्रा। ग्राउस साहब प० कुन्दनलाल से बड़े खुश थे—विशेषकर उनके साहित्य सेवी होने के कारण। ग्राउस साहब का जहां जहां तबादला हुग्रा वहां वहां उन्होंने प० कुन्दनलाल का भी तबादला करवाया बुलन्दशहर में तो ग्राउस साहब के नाम पर 'ग्राउसगंज' ही बसा हुग्रा है। कितनी ही जगह उन्होंने पक्के तालाब

बदले हमारे सुशिक्षित नवयुवकों को शृंगार-रस में उन्मत्त कर देश को हानिकारक हो रहे है "। (चंद्र, १९४८)......"कविता ऐसी हो, पढ़ने में आनन्द आवे और देश का हित भी हो। जो कूट न हो, समझने में तुरत आ जाय।"

खड़ी बोली और ब्रजभाषा का प्रश्न छेड़ने पर 'कवि-व-चित्रकार' के सम्पादक महाशय ने एक बार लिखा था—"हम ब्रजवासी हैं। ब्रजभाषा हमको जैसी प्रिय लगती है, वैसी अन्य देश के रहनेवालों को कम प्रिय लगती होगी। हम अपने घर में रात-दिन ठेठ ब्रजभाषा बोलते हैं। इस प्रकार हम कब चाहेंगे कि हमारी प्राणप्यारी ब्रजभाषा को किसी प्रकार की न्यूनता हो परन्तु ब्रजवासी होकर धर्म भी परित्याग नहीं करेंगे। यदि खड़ी बोली में उत्तम काव्य रचना हो सकती है, तो हम उसको बड़े आनन्द के साथ स्वीकार करेंगे। हमारा अभिप्राय उस काव्य रचना से है, जिसका असर मनुष्य के हृदय पर होता है जिसमें यह गुण है, हम उसके साथ हैं। जिसमें यह गुण नहीं है, उससे हम कुछ प्रयोजन नहीं रखते। हम खड़ी बोली के दास नहीं और न ब्रजभाषा के अन्धभक्त हम काव्यरूपी आनन्द के प्रेमी हैं जहां हमको वह मिलेगा, वहां से उसको प्राप्त करने का उद्योग करेंगे।

खड़ीबोली और ब्रजभाषा के प्रश्न का कैसा सुन्दर समाधान है। वास्तव में भारतेन्दुजी ने ठीक ही कहा है—'बात अनूठी चाहिए, भाषा कोई होय।' कविता में अनूठापन होना चाहिए, भाषापर लड़ने की आवश्यकता नहीं है। जिस बात को लेकर आज भी कभी कभी विवाद उठ खड़ा होता है, उसका निर्णय अबसे पचास वर्ष पहले प० कुन्दनलालजी किस सुन्दरता के साथ कर गए हैं—किस निष्पक्ष-भाव से उन्होंने यह उलझन सुलझा दी है।

'कवि-व-चित्रकार' के एक अंक में 'वर्षा-वर्णन' प्रकाशित हुआ था। उसके रचयिता थे रायनगर (चम्पारन) के प० चन्द्रशेखरधार मिश्र। 'वर्षा-वर्णन' में प्रायः कवि लोग नायक-नायिकाओं की विरह व्यथा का वर्णन करके ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। आज तक इस दिशा में कवियों की प्रायः ऐसी ही गति मति चली आती है; परन्तु अर्ध शताब्दी पूर्व, कविवर चन्द्रशेखरधार मिश्र वर्षा का वर्णन और ही ढंगसे करते हैं। देखिये:—

अहो हाल उन दुखियों का कोई क्या जाने,
निज बंगलोंमें बैठ बैठ कर जो सुख माने।
, ×

दिन भर करके काम शाम को जो घर आवे,
लगी भूख अति तेज न पर खाने को पावे।
नारि रही जो कुछ सुशील तो चुप रह जाती,
नहिं तो वचन-बाण से जर जर करती छाती।
छोटे लड़के जब आए हैं इनके आगे,
'खाने को कुछ देहु', लगे कह यह कर मांगे।
नहिं पाने पर रो रोकर दपड़े खर्वे हैं—
लटक टेंट गहि फट तथा नीचे ऐंचे हैं।
किसी भांति समझाकर माका दूध पिलाकर,
भांति भांति बहलाकर बहु कुछ डाँट बताकर।
बच्चे को सोला कर आपन भोजन पाया,
किसी भांति कुछ पानी पीकर प्राण बचाया।
धधक रही है आग भूख की जोर जोर से,
चिन्ता घुस से और बड़ी जो सभी ओर से।
खाएँ मैं क्या मालगुजारी देंगे कैसे—
ऋणके बाकी देंगे क्यों पाकर हम पैसे।
इसी सोच में नींद नहीं पल भर आती है,
चिन्ता अवसर पाकर अति बढ़ती जाती है।
किसी भांति दुख भूल जभी आंखों को मूंदे,
तभी हाय ! पड़ जांय टपक छाती पर बूंदे।
होते ही कुछ प्रात समय प्यादे घर आय,
कहें चुका दे करजे के रुपये जो लायें।
नहीं आज तो जो कुछ तेरा होना होगा,
सभी भुगत जाएगा पीछे रोना होगा।
उधर आय लड़का फिर भी खाने को मांगा,
सूख रहा है, कटा धानका पौधा सागा।
कैसे देकर मजदूरी अब खेत निरावें,
पके खेतका सूख रहा क्यों काम बनावें।
इसी सोच में जलता वो बेहोश रहा है,
तब तक साहूकार प्यादा भी आय कहा है।

'रसिक' नाम से एक मासिक पत्र श्री वचनेश जी के सम्पादकत्व में फरुखाबाद से प्रकाशित किया गया, जो कालाकांकर में मुद्रित होता था। इसमें समस्या पूर्तियां और कवियों का जीवनवृत्त ही रहता था। इसके अनन्तर सन् १९२३ में श्री भजनलाल जी पाण्डेय श्री 'हरीश' द्वारा सपादित "स्वाधीन" नामक साप्ताहिक समाचार पत्र जो स्थानीय फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, फरुखाबाद से मुद्रित और प्रकाशित होता था लगभग दो तीन वर्ष तक जीवित रहा यह पत्र आधुनिक शैली के साप्ताहिक की रूपरेखा का ही था और इसमें देश, विदेश, प्रान्त तथा जनपद के समाचार विधिवत प्रकाशित होते रहे सन् १९४८ में 'अकुश' नामक साप्ताहिक पत्र श्री महावीरप्रसाद त्रिपाठी तथा स्वर्गीय श्री लक्ष्मीनारायण गौड "विनोद" के सपादकत्व में लालमणि प्रेस, फर्रुखाबाद से मुद्रित और प्रकाशित होने लगा परन्तु यह साल दो साल चलकर बद हो गया। उपर्युक्त विवेचना से इतना तो विदित ही हो गया कि इस प्रदेश से यदाकदा समाचार पत्रो क प्रकाशन के प्रयास होते रहे पर जनता के सहयोग के अभाव और आर्थिक कठिनाइयों के कारण वे प्रयत्न पूर्ण सफल न हो सके। यह कमी अब भी वर्तमान है।

साहित्यिक संस्थायें

फरुखाबाद नगर में सर्व प्रथम राजदरबारी साहित्य गोष्ठियो को आधुनिक कविसम्मेलनो का स्वरूप कविजू रामजी भट्ट ने हो क सरट्टा बाजार में एकादशी सम्मेलन के रूप में प्रचलित किया था। प्रत्यक शुक्लपक्ष की एकादशी को बडा ही सुन्दर समारोह हुआ करता था जैसा कि रामजी भट्ट के एक शिष्य श्री भवानी प्रसादात्मज सुकवि श्री गोविन्दप्रसाद भारती के लेखो से पता चलता है। बाद को यह समारोह फीका पडगया। इसका पुनरुद्धार श्री लालमणि पाण्डे प्रमोद कवि ने सम्वत १९७० के आस पास किया। आप अपने प्रधान शिष्य श्री सीताराम भाई उपनाम 'ध्यान कवि'की आर्थिक उदारता से फिर एकादशी सम्मेलनों का सचार करने लगें। सीतराम भाई की मृत्यु क उपरान्त यह क्रम पुन खडित हो गया। यत्र तत्र स्थानीय कवि जनता तथा विभिन्न शिक्षा सस्थाओं द्वारा आयोजित कवि सम्मेलनो में कविता पाठ कर अपनी साहित्य साधना का परिचय यदा कदा देते रहते थे। सम्वत् १९९३ वि० मे वचनेश जी के कालाकाँकर से फरुखाबाद आजान पर निम्नलिखित कवियों की एक गोष्ठी का सव प्रथम जन्म हुआ जो यदाकदा एकत्र होकर कविता का पठन पाठन किया करते थे, श्री वचनेश, श्री हरिजू,श्री प्रबोध जो, श्री विनोद जी और श्री हरीश जी। पांच छ. महीने क उपरान्त एक वृहत कवि सम्मेलन, स्थानीय कवियों को होली के अवसर पर एकत्र कर, किया गया, जो जनता को आकर्षित करने में बडा सफल रहा। उसी क बाद एक समिति निर्मित करने का प्रश्न उठा और कवि कोविद सघ का जन्म हुआ यह नाम करण श्री हरीश जी ने किया था। 'कवि कोविद सघ' ने अपनी लोकप्रियता की धाक बहुत जल्द नगर निवासियो के हृदयों पर जमाली और उसकेद्वारा सव प्रथम विराट कविसम्मेलन का आयोजन किया गया, जो बडा ही सफल हुआ। स०१९८४वि०में सम्मेलन में पढी हुई रचनाओं का प्रथम सकलन 'डाली'क नाम से प्रकाशित हुआ इस वर्ष प० चन्द्रमनोहर मिश्र 'मनोहर' इसके सभापति थे। और श्री जगमोहन मिश्र 'मोहन' एम०ए०, मन्त्री। द्वतीय वर्ष का विराट कवि सम्मेलन प्रथम से भी बृहत्तर हुआ और इस वप का सकलन 'वातायन'नाम से स० १९९५ में 'क्रान्ति प्रस' माईथान आगरा से मुद्रित कराकर 'कवि कोविदसघ' द्वारा प्रकाशित किया गया। इसवर्ष श्री वचनश जो सभापति तथा श्री प्रबोध मिश्र मन्त्री थे इस क बाद आठ दस वप तक कवि सम्मेलनो की धूम मची रही 'कवि कोविद सघ' की मासिक बठक भी सुप्रसिद्ध

जिसमें शङ्कर और पार्वती के शुभ विवाह की कथा वर्णित है। इस नाटक पर महाकवि कालीदास विरचित कुमार सम्भव नामक महाकाव्य की छाया अत्यधिक मात्रा में पड़ी हुई है।

२—हर्षचरितः—इसमें (आठ) उछ्वास हैं। प्रारम्भ के कई उछ्वासों में कवि ने स्वयं परिचय दिया है। महाराज हर्षवर्धन की बाल्यावस्था से लेकर उनके शासन काल तक की कथा बड़े सुन्दर ढंग से निरुपित है।

कादम्बरी.—यह बाण की सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह दो खण्डों में विभक्त है पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध की रचना स्वयं बाणभट्ट ने और उत्तरार्ध की रचना पुलिनभट्टने की है। इस प्रकार कादम्बरी नामक महान गद्य काव्य समाप्त हुआ। इसकी कथा बडी रोचक है। भाषा समस्त पदावली के लिए प्रसिद्ध है।

कविवर मयूर भी आप के समकालीन तथा सम्राट् हर्षवर्धन के नवरत्नों में थे आपका बनाया हुआ मयूर शतक संस्कृत साहित्य की एक अनूठी कृति है।

भवभूति (८ वी शताब्दी)

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालीदास के टक्कर के कवि भवभूति हुए है। भवभूति का निवास स्थान बरार प्रान्त के पद्मपुर गांव में था। ये काश्यपगोत्री तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के मानने वाले महाराष्ट्र ब्राह्मण थे इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल पिता का नीलकण्ठ, माता का जातुकर्णी तथा इनका व्यक्तिगत नाम श्रीकण्ठ था। उदुम्बर इनकी उपाधि थी।

महाकवि कल्हण की राजतरंगिणी से यह ज्ञात होता है कि ये कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा के सभा पण्डितों में से एक थे।

"कविर्वाक्पति राजश्री भवभूत्यादि सेवित.।
जितो यशोवर्मा तद्गुणस्तुति बन्दिताम्"॥

भवभूति विद्वान ही नही अपितु प्रकाण्ड पण्डित थे के विरचित तीन नाटक हैं (१) महावीर चरित २) मालती माधव (३) उत्तर रामचरित।

१—महावीर चरित.—इसमें नाटकीय ढंग से राम की कथा वर्णित है। यह छः अङ्कों का नाटक है। इस नाटक में यह प्रदर्शित किया गया है कि राम के विरुद्ध जितने भी कार्य हुए है सब रावण की प्रेरणा से। यहां तक कि राम ने वालि का वध इसलिये किया कि वह रावण का सहायक हो उसकी प्रेरणा से लड़ने आया था।

२—मालती माधव.— इसमे मालती और माधव का प्रेम बड़े ही सुन्दर ढग से लिखा गया है। यह १० अंकों का नाटक है धर्म विरुद्ध प्रेम को कवि ने अपने काव्य में स्थान नही दिया है। ऊँची और उदात्त कल्पना का चित्रण सामाजिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

३—उत्तर रामचरित.—इसमें सीता वनवास से प्रारम्भ कर पुनः राम सीता के मिलन तक का वर्णन है इसमें ७ अङ्क है। नाटक का तीसरा अङ्क करुण रस के लिये सर्वत्र प्रख्यात है जहां तक कालीदास और इनके टक्कर की बात है वह तो ठीक है पर सहृदयों की सम्मति है कि इस नाटक में भवभूति ने कालीदास को मात कर दिया है। "उत्तरे रामचरिते भवभूति विशिष्यते"

भट्टनारायण (८ वी शताब्दी)

ऐसी किंवदन्ती है कि भट्टनारायण कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे जिनको वैदिक धर्म के प्रचार के लिए बङ्गाल के राजा आदिसूर ने कन्नौज से बुलवा लिया था। इसके अतिरिक्त इनके विषय में बाणीमूक है।

इनका विरचित नाटक 'वेणीसंहार' है जो वीर रस का जीता जागता ज्वलन्त उदाहरण है। कवि ने वेणी-संहार में महारानी द्रौपदी के वेणी के संहार का वर्णन किया है। कथानक बड़ा ही सुन्दर है।

विसाख दत्त (८ वी शताब्दी)

महाराज भास्करदत्त के आत्मज राजनीति, दर्शन, ज्योतिष आदि अनेक शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित वीर-रस-वर्षी विशाखदत्त कन्नौज-नरेश मौखरिवंश के अवन्ति वर्मा के आश्रित कवि थे। अत छटी शताब्दी के उत्तरार्ध ही म इनके निम्न ग्रन्थों का रचना काल मानना युक्ति-युक्त है। ग्रन्थ—(१) मुद्राराक्षस (२) देवीचन्द्रगुप्त।

चन्द्र के विषय में कितनी अनूठी उक्ति है।

त एमह कामएहा अज्जवि धारेइ जो जडाबद्ध।
तइम-एयणग्गी निवडण-भय ववसाय पिव मियङ्कं ॥

शङ्कर ने रति-पति कामदेव को भस्म कर दिया है। चन्द्र कामदेव का मित्र है मित्र की दुर्दशा से दुःखी चद्र शङ्कर के तृतीय नेत्र में कूदने के लिए उद्यत है। इस व्यवसाय से रोकने के लिए भगवान ने उसे जटाओं से कसकर बाध रक्खा है।

श्री हर्ष

सच्चा मानव अपने सुकार्यों से ही विश्व विश्रुत होता है। उसकी कृतियां उसे अजर अमर कर देती हैं। निस्सन्देह ऐसे ही महा मनीषियों में श्री हर्ष की गणना है महाकवि श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोकार्ध में अपने जनक और जननी दोनों का नाम उद्धृत किया है।

श्री हर्ष कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीर सुत।
श्री हीर सुषुवे जितेन्द्रिय च य मामल्लदेवी च यम ॥

इससे यह पता चलता है कि इनके पिता का नाम हीर तथा माता का नाम मामल्लदेवी था। श्री हर्ष के प्रारम्भिक जीवन चरित के विषय में एक बड़ी रोचक कथा है। हीर पंडित काशी नरेश गहड़वाल वंशी विजय चन्द्र की सभा के प्रधान पण्डित थे। एक बार सभा में हीर और मिथिला के प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य जी से शास्त्रार्थ हुआ उसमें हीर हार गए। मरते समय हीर ने अपने पुत्र श्री हर्ष को पास बुलाकर कहा मुझे पराजय का बड़ा दुःख है यदि तुम सुपुत्र हो तो मेरे प्रतिपक्षी को शास्त्रार्थ में जीतना। उसी दिन से हर्ष इस कार्य में रत हुए। हर्ष ने भगवती भागीरथी के पावन पुलिन पर एक वर्ष तक निरन्तर 'चिन्तामणि' मन्त्र का जप किया। भगवती त्रिपुरा साक्षात् प्रत्यक्ष हुई और अगाध पाण्डित्य का आशीर्वचन दे अन्तर्हित हो गई। इस प्रकार देवी के प्रसाद से प्रतिभा सम्पन्न श्री हर्ष प्रकाण्ड विद्वान हुए। परन्तु इनकी भाषा विद्वानों की समझमें नहीं आती थी अत देवी न पुन रात में मस्तक गीलाकर दही पीने का आदेश दिया तब कहीं जाकर इनकी भाषा बोधगम्य हुई। कविवर श्री हर्ष की इस उक्ति ने प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी नैयायिक उदयनाचार्य का मान मर्दन कर डाला।

साहित्ये सुकुमार वस्तुनि दृढन्याय ग्रह ग्रन्थिले
तर्के वा मयि संविधातरि सम लीलायते भारती।
शय्यावास्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता
भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्या रतिर्योषिताम् ॥

इस उक्ति को सुनकर ही तार्किक को हार माननी और इनकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ी थी।

श्री हर्ष ने कान्यकुब्ज के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र दोनों के राजसभाओं को अलंकृत किया था ये कान्यकुब्ज के राज दरबार के अमूल्य रत्न थे कान्यकुब्जेश्वर ने इनको पान का बीड़ा और आसन दिया था।

ताम्बूल- द्वयमासन च लभते य कान्यकुब्जेश्वरात्।
श्री हर्ष ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

१—स्थैर्य विचारण प्रकरण-यह एक दार्शनिक ग्रन्थ है।

२—विजय-प्रशस्ति -इसमें विजयचन्द्र और जयचन्द्र के पराक्रम की प्रशसात्मक प्रशस्ति वर्णित है। जिसकी विद्वानों ने भूरि भूरि प्रशसा की है।

३—खण्डन खण्ड खाद्य-यह प्रसिद्ध वेदान्त ग्रंथ है। लेखकने न्याय के सिद्धान्तों का खण्डन कर अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का मण्डन किया है।

४—गौडोर्वीशकुल प्रशस्ति -बङ्गाल के राजा की प्रशसा में इस प्रशस्ति की रचना की है।

५—अर्णव वर्णन -इसमें समुद्र का वर्णन है।

६—*छिन्द प्रशस्ति —यह भी प्रशस्ति है।*

७—शिव शक्ति सिद्धि -यह शिव तथा शक्ति की साधना के विषय में लिखा गया है।

८—नवसाहसाङ्क चरितचम्पू -परिमलापरनामधेय पद्मगुप्त ने नवसाहसाङ्क चरित महाकाव्य की रचना की है इसमें प्रसिद्ध राजा भोज के पिता सिन्धुराज चरित वर्णित है। श्री हर्ष ने इनके चरित को चम्पू के रूप में वर्णन किया है। 'नवसाहसाङ्क' सिन्धुराजका विरद था।

९—नैषधीय चरित - इसमें २२ सर्ग और २८३०

लिए इनकी काव्य शैली —

[बिना पहिने हरू जोतें औ पौला पहिन निरावें।
घाघ कहे जे तीनों भकुआ सिर बोझा औ गावें॥
उधराकाढि ब्योहार चलावें छप्पर डारें तारो।
सारे के संग बहिन पठावें तीनों को मुंह कारो॥

सुकवि गदाधरराय उपनाम 'नवीन'
जन्म संवत् १७७६—मृत्यु १८३६

राम गदाधर प्रसाद उपनाम नवीन कवि मुहल्ला टिया में रहते थे। यह भी अपने समय में उद्भट कवि हुए हैं। हिन्दी फारसी तथा कुछ अंग्रेजी भी जानते थे यद्यपि इनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है, किन्तु कहा जाता है कि इन्होने कुरानका कविता में अनुवाद किया था और उसे तत्कालीन अफगान नरेश को भेंट किया था और वे आपसे प्रसन्न हुए थे तथा पुरस्कृत किया था। लार्ड हार्डिञ्ज महोदय जब देहली दरबार में हाथी पर जा रहे थे, इनके निवदन पर हाथी रोक ठहर गए। उस अवसर पर आप ने एक कविता पढ़ी थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों की भरमार थी सुनकर वायसराय प्रमुदित हुए। आपके चुने हुये पद देखिये।

डमरू विशाल कर नाचत विनोद युत,
लाल लाल नैन काहू ध्यान में सुलीन हैं।
अति विषधारे कारे कारे अहि तीन धारे,
झुकि झुकि झूमि झूमि डोलत मलीन है।
विमल विचित्र गगधार है जटान मध्य,
माथे पै विराजत मयक सभी चीन है।
एहो व्रजरानी व्रजराज को दिखावो आनि,
व्रज में सुआयों आज जटिल 'नवीन' है।
जाके रूप रेख ना अनिच्छ अद्वितीय अज,
श्रुति स्मृति हू नेति नति करि गावती।
अच्युत अनत अविकारी अविनाशी ताहि,
देखि अनमनो सब देवन मनावती॥
तारी को लगैया त्रिपुरारी हू न पावें ताहि,
दें दें करतारी वै नवीन 'दुलरावती'।
जगत अपार को रमैया शेष शय्या ताको,
लेकर बलैया मैया पालन झुलावती॥

इनके दो भाई श्री लल्लूराय उपनाम, दुर्गेश और मकुन्द भट्ट थे। ये दोनो भाई भी कविता करते थे और अपने समय के सुकवि थे इनकी कविताओं के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं

इत देवर है दरवाजे खड़ो, उत जेठ जिठानी सों जीव डरै।
इत सासु दिखावत त्रासघनो, पग देत अटा ननदी विगरै।
घर हाय न मेरी परोसिनिया, दुर्गेश जु कासों कहूं दुखरै।
धुनि बाँसुरिया की सुनै सजनी, मनतौ मृगकैसी छलांगै भरै।
कहूं राव ह्वै भोगै महीतल को, कहु रंक ह्वै वानी कुदीन ररै।
कहु मारि छलांग अकाश चढ़ै, कहु कूदि पताल तहां से परै।
छनमांहि उलैधिके सिंधुनको, फिरआनि जहा को तहां बिचरै।
करियत मकुन्द जू रोकौं कहूँ, मनतो मृग कैसी छलांगभरै।
भई पक मई धरनी सगरी जल पूरि रह्यो मगमाहि महा।
पशु पछिनहूँने असेरो लिओ, सो रहिगे बटोही जहां के तहा।
घर आए मकुन्द पिया सबके, तुम जान विदेशहिं चाह रहा।
सुन ऊतर देउँगी ताहि कहा, पपिहा जब पूछिहै पीउ कहा।

मनीराम मिश्र (लगभग १८१०—अज्ञात)

आप कन्नौज निवासी प० इच्छाराम मिश्र के पुत्र थे सम्वत १८२९ में 'छन्दछप्पनी और 'आनन्द मगल नामकी दो पुस्तकें लिखीं। आनन्द मगल में भागवत के दशम स्कन्ध का पद्यानुवाद है। छन्द छप्पनी छन्दशास्त्र का बड़ा ही अनूठा ग्रन्थ है। आप का वर्णन शुक्ल जी के हिन्दी के इतिहास में आया है। विशेष वृत्त व उदाहरण अनुपलब्ध हैं।

महाकवि तोष–निधि (१८२५–८४)

तोषनिधि—ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण विगहापुर भानु के शुक्ल थे। इन की कविता कीर्तिकौमदी की छटा १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध म चमकी थी और यह राजा दौलतसिह जिला एटा राज्य रिजोर के दरबारी कवि थे। इनका निवास स्थान कम्पिला, जिला फरुखाबाद था। ये वह तोष नहीं हैं जिनको प्राय लोग तोषनिधि भी कहा करते हैं। इस भ्रम का निवारण सरायमीरा निवासी स्वर्गीय प० चन्द्रमनोहर मिश्र द्वारा 'समालोचक' में किया जाचुका है। इनके बनाये निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चलता है। (१) भारत पचासिका (२) दीपत चन्द्रिका,

पाठकगण अगण की भरमार देख कर चौंकिए नहीं, 'विन को बानी पै भवानी कहि जाति है' अक्षरशः सत्य है; पर निष्ठा और तप का होना अनिवार्य है। अपने मनोरथ की सफलता पर कृतकृत्य होकर तोषनिधि ने भगवती की प्रेमविभोर होकर जो वन्दना की है वही दुर्गा पच्चीसी के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका एक एक छन्द भक्ति और करुणारसपूर्ण आत्म समर्पण का परिचायक है। तोषनिधि को संस्कृत का भी अच्छा अभ्यास था और वह आशु कवि थे, साथ ही मजाक करने में भी काफी निपुण थे। किसी यादव ठाकुर के यहाँ आप बरात में गए थे, वहां लोगों ने उन्हें छेड़ा, तो ज्योतनी के अवसर पर आप ने निम्न पद्य कह सुनाया—

तारायामभवद्बुधो यदुनृपः श्री देवयानी सुतो
जाते यत्र शुभे सचित्रचरिते कुंती सुभद्रे उभे।
रोहिण्याम् च हली यया समभवतकृष्णस्तु नन्दात्मज
स्तें वश सुयशोन्वित वयमिह स्तोतुं कथं शक्नुमः।

मान मर्यादा की बात को छोड़ कर तोषनिधि घमण्डी नहीं थे। नम्रता जैसी कुछ होनी चाहिए, वैसी उनमें थी और वह साधुभक्त भी थे। अपने पूर्वजों का परिचय देते हुए आप कहते हैं।

'हों तिनको निधि तोष सो मूरख,
सत लगे जिहि को प्रिय राम सें'

इनकी भक्ति के उदाहरण में 'व्यंगशतक' के छन्द पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इन के उत्कृष्ट काव्य के नमूने भी भारत पंचासिका से 'समालोचक' में निकल चुके हैं। पाठकों के मनोरजनार्थ इनका शृंगार-रस का भी एक छन्द नीचे उद्धृत किया जाता है.—

(शुक्लाभिसारिका)

'सरद की पूनो तामें दूनो सो प्रकाशमान
वतिस कला को उदै गोपमनि मानिगे—
जित तित बुझत कहा है। आज तोषनिधि
ऐसो उदै कबहूं न विधुको प्रमानिगे—
हरि वहरावें ठहरावें उतपात जाहु
गेहन सम्हारो कहि सबाय समानिगे;
उठि मुखदानि गए कुंजन को ओर निज—
प्यारी राधिका को उर अभिसार जानिगे,

आपने महाभारत सम्बन्धी बहुत से पद लिखे थे जिनमें लगभग ५० ही प्राप्त होते हैं। अग्नि लग जाने के कारण अधिकांश रचनाएं जल गई थी। इन कवि का परिचय माधुरी वर्ष ६ अंक सं० ४ में निकल चुका है काम्पिल्य निवासी श्री दुर्गादत्त जी द्वारा संग्रहीत एवं प्रकाशित दुर्गा पंचाशिक के अनुसार इनके पिता का नाम प० ताराचन्द्र था। कहा जाता है कि ये मिश्रजू उपनाम से भी कविता करते थे। उदाहरणार्थः—

रविनंदन पारथ सों समुहे,
सुभ्रनो जुरि सगर में खटको।
भगवत्त औ भीम भिरे बलसों,
छल सों छन छूट गदा पटकी।
कवि मिश्र जू औरन कौन गनै,
सर चाप चपेटन को चटकी।
भटकी मति भीषम की रन में,
पन मे अब कृष्णहि सों अटको।

दुर्गा पंचाशिका से एक पद इस प्रकार है:—

उटकि उटकि परें आयुध अनेक वार,
हुरहरि मघवा हराए हेड़ाहेड़ी सों।
सात हू पताल अवगाहे सत्य लोकहूं लौं,
स्वांसन सताए सनकादिक अमेड़ी सों।
जाके त्रास वासन वसन याए दिकपाल,
तोषनिधि लोकपाल बिसरे बखेड़ी सों।
धीन मान कालो ऐसो अभिमान शालो,
महिसासुर मरोरि मौजि मारो एक एड़ी सो।

आप की एक अन्योक्ति का रसास्वादन कीजिए—
ठाड़ कियो है भलो विधिसों अरू पाग सभारि लखो परछाईं।
ऊंचे हयन्द गयन्दन पे धरे भेरी नगारे हैं फौजन मांहीं।
ठाड़ फजीहत को निधि तोष भो पै रन में तरवार न बाहीं।
ऐरे सिपाही विचारि ले तू इन बातन में मन सूर है नाहीं।

वास्तव में तोषनिधि जो इस क्षेत्र के साहित्यिक निधि थे किन्तु वह प्रत्यक्ष में आकर उचित सम्मान न पा सके। उनके ग्रंथों की खोज करके और उनकी कविता का मूल्यांकन करके उन्हें समुचित स्थान देने की आवश्यकता है।

राजा यशवन्त सिंह जी तिर्वा
(जन्म लग-भग १८०७-मृत्यु १८७१)

तिर्वाराज उदित नारायण के बाबा राजा यशवन्त सिंह जी अतीव विद्वान, पराक्रमी और कवि थे। उन्होंने संस्कृत काव्य की भी रचना की। उनकी दो पुस्तकें श्रृंगार शिरोमणि और शालहोत्र है जो भाषा में है। रीति और नखशिख के विषय में आपकी यथेष्ठ पहुंच थी। आपके कोई पुत्र न था। आपने तीन लाख रुपया लगाकर अन्नपूर्णा मन्दिर निर्माण का संकल्प किया था किन्तु उसके पूरे होते होते आपका निधन हो गया। आप कवि और साहित्यिकों को आश्रय देने वाले थे। राजा होकर जो साहित्यिक निपुणता आपने प्राप्त की थी, वह श्लाघनीय थी। आपकी पुस्तकें सुना जाता है, मुद्रित हुई थीं किन्तु उपलब्ध नहीं है श्री चातक जी के पास विशेष सामग्री हो सकती है क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्ध में सुकवि में (वर्ष २-३) कुछ लेखादि भेजे थे। श्रृङ्गार शिरोमणि से कुछ छन्द दिए जाते हैं।

प्रेम गर्विता का उदाहरण देखिए— १

देह दई सुख दो-हो दई, नई नई रोज करो रुचि सौना।
भागभट्ट जसवंत बिलोकियें, रूप अद्भावत काम लरौना॥
कोटि कलाधर तेवर है, अब एक कलाधर ऐसो करौना।
यौं कहि प्रान पियारों हमारो हमें अब देन न देत डिठौना॥

अनूढ़ा २

मानसिक मानसर जल सों पखारे पांय
पलक अंगोछन अगौंछे के विधान में।
आसन हिएके कमलासन पधारे लाल
बाल अनुराग के तिलक देति दान म।
चम्पक बरन करोवरन सुनैन सों
सैनन सों दिए जसवन्त प्रति पान में।
मद मुसकानि मुकताहल केहार दें कें
श्री फल उरोज फल दीन्हें फलदान में।

दैन्य संचारी भाव ३

प्रीतम विदेस कौ संदेसहू न आयो अब
सोचि सोचि सोचनसौं ऊंची सास बलकी।
ताप तन तापत सताप मनहू में आइ
छोभ छतिया मों भरि दीन ताई भलकी।
असुआ उमड़ि अँखियान तें भुमड़ि
छिन्ह परत उरोजन पें आनि छवि छलकी।
मैंन प्रिय देखन की कामना करेई मानों
ढाहत महेश पें अखण्ड धार जल की।

४

रीति अनन्तर ही विपरीत करी बहिरतर के सुख छाऐ।
नूपुर मौन बजे कटि किंकिनी आनंद कौन पें जात गनाए।
छूटि परे झुमका 'जसवंत' सुकानन तें कुच ऊपर आऐ।
पूरब बैर छमापन कौं मनो मैंन महेश पें छत्र चढ़ाए।

५

लाल के भाल पें पावकु सी अवलोकति जावक जोति जगाए
रीरिके गोरी भरे असुवा जसवन्त सखी सों कहैं चितुलाए।
दीजे हमें जुबताय हमारी सी बूझत तोहि हितु हितु पाए
कालिनी हूजि कोटीको हुतो अब आजु कहीं ये कहा हैं लगाए

स्वर्गीय महाकवि रामजू भट्ट १८६७-१९५०

महाकवि रामजू भट्ट का जन्म सम्वत् १८६७ के लगभग फर्रुखाबाद नगर के मुहल्ला बजरिया में हुआ था इनके पिता का नाम अज्ञात है किम्बदन्ती है कि इनके बाबा श्री बालक राम भट्ट एक सुविख्यात संस्कृतज्ञ थे। श्रीराम जी भट्ट अपने पितामह के सदृश ही संस्कृत के महा पंडित थे और भगवती हस वाहिनी सरस्वती की आराधना भी करते थे। आप संस्कृत तथा ब्रज भाषा दोनों क ही उद्भट कवि थे। संस्कृत रचना का कोई संग्रह उपलब्ध नहीं है। परन्तु ब्रज भाषा में आपके श्रृंगार सौरभ पुस्तक की एक प्रति स्वर्गीय श्री भवानी प्रसाद चतुर्वेदी मुहल्ला साहबगंज फर्रुखाबाद निवासी के पास थी। ये महानुभाव महाकवि रामजू भट्ट के शिष्य थे। इन्होंने व्याकरण तथा महाकवि कालीदास के किरातार्जुनीय काव्य को भट्ट जी से पढ़ा था तथा अन्य काव्यों का उन्हीं की देख रेख में अनुशीलन किया था। श्री रामजू भट्ट को सम्पूर्ण ग्रंथ कण्ठाग्र थे और प्राचीन पण्डिताऊ परिपाटी के अनुसार बिना किसी ग्रंथ की सहायता लिये मुखाग्र ही पढ़ाते थे। सम्वत् १९५७ में स्वर्गीय श्री भवानी प्रसाद के पुत्र स्वर्गीय श्री गोविन्द प्रसाद चतुर्वेदी ने इस पुस्तक को अपनी हस्तलिखित पुस्तक तथा स्वर्गीय प० बलदेव प्रसाद की हस्तलिखित पुस्तक से मिलान कर संशोधन किया और कवि समाज

अज्ञातयौवना लक्षण

> काचे पूगफल से उरोजन लगावे लेप
> नवबट दलन वे रावत अघानो है।
> देखि रोमराजी राजी जानति पिपील साजी
> बाजी सी कपोल सी है झिझकि भुलानी है।
> रामजी सुकवि देखि देखि मुसकाती आली
> ताली दै हसनि वाली बोलति न बानी है।
> आई तरुणाई देह जानति न बामा जिमि
> पाई गेह संपति सुदामा नाहि जानो है।

अपनी काया में हुए परिवर्तनों से अनभिज्ञ नायिका का इतना मनोज्ञ वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। सात्विकता का शृंगार में समावेश कर उसके भोलेपन की मधुरता में चार चाँद लगा दिये हैं। अन्त में कामिनियों की सुकुमारता की ओर संकेत करते हुए कवि के एक छन्द को उद्धृतकर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ। सहृदय पाठक अतिशयोक्ति का चमत्कार देखकर मुग्ध रह जाता है। उर्दू भाषा के कवि क्या नजाकत पर इतनी सुन्दर सूक्ति उपस्थित कर सके हैं ? देखिए:—

> लागत समीर लक लचकि कमान होत।
> ललकि ललकि जाती नजरि न पाती है ॥
> विपुल नितम्बन की उरज उतंगन की।
> गिरज फरकन की छवि छहराती है ॥
> रामजी सुकवि अरविन्द में मलिन्द सम।
> लोइन को बन्दि बन्दि मीन मुरझाती है ॥
> बनी वनितान में मसाल सी विशाल बाल।
> औरें सकुचाती परी बाती सी दिखाती है ॥

कविवर तुलसीराम (सं० १८७१–१६००)

आपका जन्म कम्पिला जिला फर्रुखाबाद में संवत् १८७१ में हुआ था। आपके पिता हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि तोषनिधि थे। यह अपने पिता के कनिष्ठ पुत्र थे और बिगहापुर भान के कान्यकुब्ज शुक्ल थे। यह बचपन से ही तीव्रबुद्धि और काव्यप्रेमी थे। इनकी तीव्रबुद्धि का परिचय इसी एक बात से लग जाता है कि इन्होंने केवल १४ वर्ष की आयु ही में मथुरा जी में जहाँ, अनेकों बड़े बड़े भागवती पंडित विद्यमान थे, दशमस्कन्ध भागवत् की कथा बड़ी सरलता तथा रोचकता के साथ कही थी, जिसे सुनकर वहाँ की विद्वान मन्डली तथा कथा रसिक चकित रह गये थे। ग्वालियर नरेश इनका बहुत सम्मान करते थे तथा वहाँ आपका आनाजाना लगा रहता था ऐसे ही एक अवसर पर महाराज के समक्ष एक नवागन्तुक पंडित से इनका शास्त्रार्थ छिड़गया शास्त्रार्थ में उस पण्डित ने हाथी के बच्चे के लिए 'करभ' शब्द का प्रयोग किया इन्हों ने कहा कि शुद्ध शब्द 'कलभ' है आपने अशुद्ध उच्चारण किया। बस इसी शब्द को लेकर तीन दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। अन्ततोगत्वा वह पंडित राजा से बिना अनुमति लिये चुपके से पलायन कर गये। तुलसीराम को विजय श्री प्राप्त हुई और महाराज ने 'पुष्कल पुरस्कार' प्रदान किया। एक समय मंगलगिरि स्वामी नामक एक महात्मा कम्पिल पधारे और कपिल मुनि के प्राचीन आश्रम के पास द्रौपदी कुंड पर ठहरे। तुलसीराम ने महात्माजी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। महात्मा ने यह कह कर कि तुझे अपनी विद्या का बड़ा अभिमान है तो तू बहुत शीघ्र मृत्यु का ग्रास बनेगा' इनकी चुनौती को अस्वीकर कर दिया। महात्मा के अभिशाप के ही कारण २९ वर्ष की अल्पावस्था ही में तुलसीराम का स्वर्गवास हो गया। इस थोड़े से समय में ही राम कथा का इन्होंने बड़ा ही सरस तथा हृदय ग्राही वर्णन किया है जिसे पढ़कर हृदय आनन्द से उल्लसित होने लगता है। सुना है कि इन्होंने कृष्ण कथा का भी छन्दोबद्ध वर्णन किया है, किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अब वह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। यह संस्कृत में भी फुटकर रचना किया करते थे, परन्तु बहुत खोज करने पर भी कोई छन्द प्राप्त नहीं किया जासका है। इनके रचित ग्रन्थ का नाम 'ज्ञान कल्लोलिनी' बताया जाता है। इनकी राम कथा में प्रत्येक रस अपनी अद्भुत छटा लिए हुए मिलता है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं, जिससे पाठकों को इन की कविता का कुछ आभास प्राप्त हो जायगा। श्रीलक्ष्मण जी श्री परशुराम से कहते हैं;

> उपवीत नौगुन तुमारो तेज सौगुन है,
> करम धरम करि आगे आम जान के।

जहू भूमि के हेतु गुविन्द कहै,
सिगरो जन रोजु लरं पै लरं ।
जहू बात सबै जग जाहर है,
तुम्हारो सुत राज हरं पै हरं ॥

(३)

जा सुनि बात को कानन से,
अपने मन को नहि नेक विगारो।
सतति हीनता दु:ख बड़ो,
अपने हिय में नहि नेक विचारो॥
गोविन्द जो ब्रत कौन करं,
तब देवव्रती सुन बैन उचारो ।
'आजु से देह के छूटत लौं,
हम ऊरध—रेतस को ब्रत धारो,॥

(४)

देवन ने सुनि के महिमा,
सब बोलि उठे जहुना कम है।
तब दूत बुलाइ के बात कही,
पितु भक्ति में जाके नहीं सम है॥
कवि गोविन्द जो ब्रत कौन करं,
परिपूरण इन्द्रिन को दम है ।
नभ मण्डल से तो अवाज भई,
जहु भीषम है, जहु भीषम है॥

(५)

बस फिरि नष्ट भयो, भीषम को कष्ट भयो,
देखि नारि तीनि घर विधवा विचारि के ।
सत्यवती शोक युत, नाहि रह्यो एको सुत,
कैसी करौं, कहा करौं, तन मन हारि के॥
देवव्रत देखि के, नियोग हेत बात कही,
बोले तब बचन को, मन निरधारि के ।
मेरो तो अखण्ड व्रत, लोक परलोक जानें,
मरक न आउ, मातु, बचन बिगारि के ॥

हरिशंकर शास्त्री कन्नौज
(जन्म सं० १८६० के लगभग-)

कन्नौज में कई विद्वान पण्डित हो गए हैं । उन्ही में से एक उत्तम पं० हरिशंकर शास्त्री थे । १६५६ वि० में दयानन्द जी कन्नौज पधारे तब उनमें इन्होंने शास्त्रार्थ किया था। हरिशंकर जी व्याकरण, न्याय और साहित्य के महा पण्डित थे। आप कवि भी थे । आपकी पुस्तकें 'सद्धर्म दूषणोद्धर' 'दामोदर काव्य' और 'बघेल वंश वर्णन' मुख्य है, जो संस्कृत में हैं और उनके वंशज देवीचरण त्रिपाठी के पास हैं। देवी चरण जी स्वयं भी कवि हैं। और उन्होंने हरिशंकर जी के संस्मरण को पद्यबद्ध किया है जो नीचे दिया जा रहा है। प्रसिद्ध विद्वान गणेशदत्त शास्त्री, हरिशंकर जी के नाती थे।

अतोऽहं वै प्रथमं प्रणम्य,
श्री मद्गुरुस्तान सुविचार युक्तान्।
करोमि पश्चाद्रचना स्वकीयां,
कृतेरिदानीं हरिशंकरस्य ॥

हरिशंकर रचित कीतिरथाख्या काव्यस्य विषये मम् रचना

भागीरथी तीर विराजमाने,
श्री कान्यकुब्जे नगरेतिरम्ये ॥
जातः सुविज्ञश्च त्रिपाठिवंशे,
नामाभिधेयो हरिशंकरो यं ॥
भाष्याब्धिमध्ये सफलप्रयत्नः,
मनोरमायां च कृतप्रयासः ।
सघोचशब्देन्दु मुनेश्वरे यं,
पारंगतो ऽभूदविशेष विज्ञ॰ ॥
लब्धासुविद्या प्रथमपितुश्च,
त्रिपाठिनो मातुलतासतश्च ॥
अनन्तर न्याय विदां समीपे,
गतश्च काशीं (काश्यां) पठनायतत्र ॥
श्री विश्वनाथस्य पुरीस्थितेन,
स्वल्पेन कालेन मितेनतेन ॥
वेदान्त वेदांग समस्त ज्ञान,
लब्ध शुन वै विदुषां समाजे ॥
सर्वपठित्वा विविधदर्थं,
ज्ञान समासाद्य गुणोभनश्च ।
श्री कान्यकुब्जाख्यनगरीं शुभां वै,
समागतोऽत नगरीं स्वकीयाम् ॥
गुणाढ्यायाम बहुप्रबन्धान्
वेदान्त वेदादि बहून् गुणाद्यान्.

अमरावति अति चकित चित्तं, शिवपुरिहिं विलोकति ।
छवि जयन्त प्रसाद, प्रसून महलन अवलोकित ॥

श्री शिवचरनलाल जी शुक्ल 'शम्भु पद' (१६००–१६६०)

शम्भु कवि मुहल्ला खड़िहाई शहर फर्रुखाबाद के रहने वाले थे। ये महोदय प्रमोद कवि के समकालीन थे और अच्छे कवि थे इनके भतीजे पौत्र आदि अब भी वर्तमान हैं। इनका कोई संग्रह नहीं मिलता है। 'प्रमोद प्रकाश' के प्रथम पृष्ठ पर प्रशंसा के रूप में इनका एक छंद दिया हुआ है। इससे पाठक गण आपकी महत्ता का अनुमान कर सकते हैं। आपके कतिपय छंद नीचे प्रस्तुत हैं।

१

प्रथम वशिष्ठ वाल्मीक मुनि गाई,
जौन गौरव गभीरिता की गति दरसति है।
प्रेम परिपूरण बखानी तुलसीहुदास,
जासु अवलोकनि से ज्ञान सरसति है॥
शम्भु पद सोई रसपान कियो, केशौदास
चन्द्रिका सो राम नामरूप परसति है।
पूरण प्रमोद सो 'प्रमोद' सोई रामयश,
कीन्हों है प्रकाश वाणी सुधा बरसित है॥

२

ज्यों त्यों रह्यो अब लों जिय तू,
अब आयो वसन्त कछू ना बिसैहै।
शम्भु सुगंधित शीतल मन्द,
समीरन पीर गभीर उठैहै॥
क्यों ठहरैगो करै गो कहा,
जब कोकिल कूकि के हूक सुनैहै।
और न तेरो चलैगो कछू बस,
सग कुहू क तुहू कढ़िजैहै॥

३

आजु हौं गई तो शम्भु न्योते नन्द गांव तहाँ,
सांसत बड़ी रूपवती वनितानकी।
परि लीन्हो सखिन तमासो करि मेरी मोहि,
गहि गहि गुलुफ लुनाई तरवान की॥
और वलि बोलि बोलि औरन दिखावें रीभि,
रीभ सुघराई औसलाई मेरे पान की।
घूंघट उघारि मुख देखि देखि एकै रहैं,
एकै सराँ नापन बड़ाई अँखियान की॥

सुकवि श्री रामनारायण जी द्विवेदी "रमेश" (जन्म लगभग १६३२–६२ वि०)

आपका जन्म मुहल्ला कूचा बेनीमाधो शहर फर्रुखाबाद में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री गंगादीन द्विवेदी था, आप हाई स्कूल पास थे तथा बड़े कुशल सुलिपिकार थे भगवती सरस्वती की आराधना में आपने बहुत कुछ किया। आप 'विलैलैले' उपनाम से परिहास पूर्ण कविता और शायरी भी किया करते थे, जो कभी कभी अश्लीलता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाती थी। पर थे सुकवि। महाराजा मैनपुरी आपकी बहुत प्रतिष्ठा करते थे। कवि सम्मेलनों में आपका बोलबाला था। आप 'बचनेश' 'प्रमोद' आदि के समकालीन कवि थे। नीचे आपकी रचना के उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। आपकी (१) मन मौज (२) गंगालहरी (३) श्री राम विवाह (४) रमेशानुभव (५) रमेशानुराग (६) कान्यकुब्ज पचीसी प्रकाशित होचुकी थीं।

(१)

अरुण अनार ऐसी एड़ी अवलोकत हो,
ललकतु नीकी भांति पावत अनन्द है।
जगमग ज्योति नख नख पै नखत बुंद,
कोटिचन्द्र वारौं शोभा ललित अमद है॥
पगतल पावन प्रभाव प्रभु ताके पुञ्ज,
प्रात के प्रभाकर ते लालिमा दुचन्द है।
पद अरविन्द पै 'रमेश' रामचन्द्र जूके,
मन मतवारो मेरो मंजुल मयन्द है॥

(२)

जनकसुता के पति ताके जिन ताक पति,
सविताके कुलके पताके प्रभुताके हैं।
हरन धरा के भार कृपाके अगार,
विभु वीर विरदैत बांके विदित सदाके हैं।

है। आपने सवत १९६६ में 'प्रमोदप्रकाश' नामक एक ग्रंथ कामताप्रसाद प्रेस फरुखाबाद में छपवाया था; जिसमें आपने कवित्त, सवैया सोरठा दोहा आदिक विभिन्न छंदों में अवधविहारी भगवान रामचन्द्र की बाल लीला तथा धनुष यज्ञ का वर्णन किया है। आपकी कविता के नमूने नीचे प्रस्तुत हैं–प्रमोदप्रकाश से उद्धृत

(१)

मनतो उरझो उनपै सजनो,
तनुतोर तुम्हारे भले हम साईं।
हमरो रसना को कहागति है,
जा कहै उनकी छविकी परछाईं।
चलिदेखो 'प्रमोद' कहे न बने,
सुधि भूलिहो देखत ही उन घाईं।
जनु ब्रह्म सिंगार छुओ अवतार,
धरे नर देह फिरे यहि ठाईं।

(२)

राम की दीठि परी मिथपै सिय दीठि सु राम पै आन ठई है।
प्रीति पुरातन दोउन की उन नैनन सैनन बीच छई है।
भेद न पायो सखी सगवारिन जैसी कछू गति बाग भई है।
राम के जानकी रूपमई सिय हिय राम की रूपमई है।

(३)

रामहि माल चलीं पहिराइ लिवाइ सिये सखिया इकठौरी।
घूंघट के पट घूमि लखै छबि राम के रूप गई चित चोरी।
आई सबै सिय के सग मन्दिर देतीं अशीश सुभामिनी भोरी।
स्यामल गोर सदा सजनी चिरजीवै 'प्रमोद' मनोहर जोरी।

(४)

काँपि उठो मन्दर पुरन्दर धुरन्धर लौं,
धनाधीस बीस भुज धरिहू न धरिगो।
चारु चन्द मन्डल अखन्डल त्यों मारतन्ड,
मेरु मन्ड दन्डधर डोलि डोलि डरिगो।
सिन्धु सात सात द्वीप सुनिके धनुष भग,
सबके 'प्रमाद' अग अग शब्द भरिगो।
चौंके चन्द्रभाल ध्यान छूटो भृगुनन्दन को,
बाचिबो विरचि जू को वेद को बिसरिगो।

(५)

मगलीक महलन पै मणिमय कलस राजै,
मन्डली पताका चन्द मन्डल लो परसै।
छव धुनि मुनिजन गुनिजन गान धुनि,
धूम यज्ञशालन को सुरलोक सरसै।
फूले फले बाग सर कूप अनुराग भरे,
हाट बाट बीथिन 'प्रमोद' प्रेम बरसै।
काम रति रूप को लजाए देत नारि नर,
नगर अयोध्या यो अनूप रूप दरसै।

(६)

बाचत पाती लिखी कर राम की,
आनन्द को हिय अकुर हूलो।
नेह के सागर मोह जहाज पै।
बैठि के ज्ञान को गौरव भूलो।
पुत्रके प्रेम 'प्रमोद' पगे नृप,
भाग्य 'प्रभाव' भरो अनुकूलो।
शील समीर लगी सुख के तरु,
भूप को अग कदब सो फूलो।

स्फुट छंद

(७)

कुचित कलित केश ललित वलित पाग,
मौर मणि जटित जवाहिरी विचारले।
जरी जर कारी जाम जाहिर जलूस वार,
पीत पट कटि सुठि निकट सवारिले।
छलको परत छवि फवि रवि मन्द होत,
भवन विदेह भाग भूरि निरधारिले।
बानक विनोद राम बनरा 'प्रमोद' रूप,
एहो प्राणप्यारी नेक नैननि निहारले।

(८)

जादिन ते का ने मेरो नाम लै सुनाई टेरि,
फाग धुनि बासुरी में राग रसियान की।
तादिन ते लाखन अभिलाख पगी तो प्रीति,
झाखत झरोख बैठि भौन तखियान की।
जोर बर जोरी मोहि वीर री सुभानि देकै,
औचक मिलायो आनि भीर सखियान की।
भेंट भुज लीनो म 'प्रमोद' सा नवीनो छैल,
गई वीर आजु कढ़ि लाज अँखियान की।

(१)

टरत टेरत हारि गए, तुमको मम बोल लगै नहि नीको।
कौन सो भार अपार भ्रहे, प्रभु भार उतारत हो धरनो को।
'श्रीवर' पै नहि जात सह्यो अपकीरति को दुख श्री धरनीको।
रे करूणानिधि रालि लेरे फल पाइबुको अपनो करनी को।

कहते हैं कि आप किसी घटना के फलस्वरूप कोतवाली हवालात में एक रात बन्द कर दिए गए थे वहीं आपने कुछ छन्द विनय स्वरूप रचे थे। उन्हीं में का एक यह है। परिणाम स्वरूप आप प्रात काल छुटकारा पागए।

श्री लाला सीताराम भाई "ध्यान"
(जन्म स० लगभग १६२५ मृत्यु १६६५)

लाला सीताराम भाई उपनाम'ध्यान'कवि सुप्रसिद्ध सुकवि 'प्रमोद' के शिष्य थे। इनके पिता का नाम लाला मुन्नालाल था। यह स्थानीय कसेरट बाजार के प्रमुख व्यापारी थे। ये पढ़े लिखे बहुत न थे। पर थे विद्याव्यसनी और विद्वानो के सतसगी। आपकी ओर से एक मुडिया स्कूल चलता रहा पर सभवत अब बन्द हो गया। आप मुहल्ला लोहाई के रहने वाले और कसेरट बाजार वाले 'एकादशी कवि सम्मेलन' के पुनरुद्धारको में से एक थे। आपकी कविताओं के कतिपय उदाहरण नीचे दिए जाते हैं। आप का कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। यत्र तत्र लोगो से फुटकल पद ही सुनने को मिलते हैं।

(१)

अधिक अनोखो फाग होत अनुरागन सो,
सरस समाज शोभा छैल छलकारी की।
बाजत उर्मग ध्वनि गावत रसिक राग,
नाचत हैं गोपी ग्वाल ताल चटकारी की।
होन लागी जग रग डारत उमग ढग,
'ध्यान'धुनि धमकन, भीर अधिकारी की।
नागरी नवेली लै चलावत गुलाल मूठ,
काहू ताकि मारत हैं चोट पिचकारी की।

(२)

लागी है लगन तोसों कीरति किसोरी मोरी
नागरी नवेली अलवेली चित धारिले।
उठत उमग लखि अग की तरग तोरी
हूंके निरशक बक भृकुटी निहारले।
गोरी गरवीली गुनरूप की रसीली ध्यान
मेरी यह बात सुन ज्ञान से विचारले।
आयो हों तिहारे काज आज वृषभान लली
मान तजि प्यारी नेकु नैनन निहारिले।

श्री गोविन्दराय भट्ट

श्री गोविन्दराम भट्ट मुहल्ला चिन्तामन शहर फर्रुखाबाद में, रहते थे इनके मकान में ही इम्पीरियल बैंक अवस्थित है। यह अच्छे कवि थे। इनका अधिक विवरण प्राप्त नहीं है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द प्रस्तुत है—

(१)

याकी छीन कला याको कबहू न छीन होत,
मन की तराजू में हजार बार तारिले।
वह है सुधा सिन्धु यह परम सुधा को सिन्धु,
हार जीत दोनो अब मन में विचारिले॥
गोविन्द' गोविन्द तोहि मातु जसुदा की सौंह,
वचन हमारे उर मांहि निरधारिले।
वामें है कलक यामें नेकहू कलक नाहि,
इन्दु औ आनन को नैननि निहारिलै॥

श्री पुत्तूलाल जी शुक्ल 'प्रकाश'

आप मुहल्ला सेनापति शहर फर्रुखाबाद के रहने वाले हैं। आप अपने को सुकवि 'तोषनिधि का वन्शज बतलाते हैं। आप रामलीला में बहुत दिनो तक अगद बनत रहे। महावीर जी के भक्त और वीर रस के अनन्य प्रमी हैं। इस समय मनपुरी में होमियोपैथिक डाक्टर हैं। आपका छद नीचे दिया जाता है।

(१)

सुनते सुटेर देर को न फर होन पायो,
ग्राहते छुडाई जाय बन्दि गजराजको।
ऋषि राज काज में सुबाहु औ मरीच हने,
ताडिकासी नारि मारि नाहि कछु लाजको॥
विलखै पचाली वनमाली ही बचाय ली ह,
करत'प्रकाश' आश बडी भारी आज की।
पतिन बिसारी ना विसारी बनबारी तुम,
लोग दीहैं तारी कैसो वेरी ब्रजराज की॥

३—'श्री शालीन सुधाकर'—इसमें नीति सम्बन्धी विवेचन है, देखिए —

न प्रासाद तुरग दन्तिघटना, विद्या परास्ते हृदि ।
नैवाभ्रलिह् देवसद्म रचिन, ग्रन्था कृता कीर्तये ।।
नार्थेभ्यः क्वचिदर्पितोऽभ्रशिखरो ज्ञान परं शिक्षित ।
एव सूक्ष्मतमात्मनोऽपि विभवान्पश्यत्कथ स्थूलदृक् ।।

अर्थात् विद्वानो के बडे बडे महल, घोडा, हाथी, आदि सपति नही होती है परन्तु सकल दोष रहित भगवती सरस्वती उनके हृदय में निवास करती है। वे यश के अर्थ बडे २ देव मन्दिर नही बनवाते परन्तु सुन्दर ग्रन्थ रचते हैं। वे अन्न के पर्वतादि द्विजवरों को दान नहीं देते किन्तु श्रेष्ठ ज्ञान सिखलाते हैं। इस भाति पण्डितो के सूक्ष्म ऐश्वर्य को स्थूल दृष्टि पुरुष कैसे अवलोकन कर सकता है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

४—श्री गीता सूक्ति सुधाकर —इसमें
"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच" ।।
की विशद व्याख्या तथा अनेकार्थ कर डाले हैं। सात सौ श्लोकों में तो ग्रन्थ की भूमिका है। आपके अनुसार उक्त श्लोक में ७४ शब्द ७४ क्रिया सवनाम व ३४ अव्यय है। धन्य है कविवर की विचक्षणता और उनका श्लाघनीय श्रम!

५—श्री शक्ति सुधाकर — इसमें
"शरणागत दीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्व स्यार्ति हरे देवि नारायणि नमोऽस्तुते"
की विशद व्याख्या की है।

६—हरिरजनम्—इस ग्रन्थ की रचना विघ्ननिवारणार्थ की गई थी।

७—प्रापदुद्धारक हर्यष्टकम् लक्ष्म्यष्टक च—यह संस्कृत कविता में एक गुटका के रूप में है। इसमें विभिन्न छदों में विष्णु तथा लक्ष्मी की स्तुति की गई है। देखिये—

शिखरिणी—

हरे वार वार मम दुरित वार गतवतो
स्वपादार वारं द्रुततरमुदारम् मुखमदा।
भ्रमन द्वार द्वार सहिकिमपि सार नहि लभे
कथद्धार नार त्वमिममघभार शमयसि ?

इसका हिन्दी में अनुवाद देखिए—

माधवी सवैया—

बहुवार उवारिके दु खनुते तुम वेगि बढाय सुखै मोहि पोटा।
अबकी यह काहे विलम्ब भयो थिर वयो इत दु खभयोप्रतिखोटा।
करतें तवग्रास गए बहु मास कितक के पास भ्रमो लइ लोटा।
मम काज को आज परो किम आय कृपानिधि केरि कृपा मह टोटा

८—तुलसीसूक्तिसुधाकर—इसमें तुलसीदास की एक अर्धाली सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पकज नेहा।। के १६७५१८६ अर्थ किए हैं। इसी के कारण आप पौ` सत्रह कहे जाने लगे थे।

९—श्री गीता का अनुवाद भी हिन्दी में किया है—देखिये

कुरु क्षेत्र धर्मस्थल में दल पाण्डव और कौरवन बयार।
भिडे महारण कारण मानो उमड रहे दुइ सिन्धु अपार।।
तब धृतराष्ट्र भवन अपने में पूछी सजय ते यह बात।
कहो कहा क्या हुआ करत है सो सब हमें बतावो तात।।

१०—श्री पाणिनि सूक्ति सुधाकर—इसमें आपने पाणिनि के १०० सूत्रो की व्याख्या की है—उदाहरण स्वरूप देखिए सूत्र—समाहार स्वरित १/२/३१। व्याख्या—

सम्यक् आहारो यस्य स = समाहार, सात्विकाहार। स्व = स्वर्गम्। इत = गत गमिष्यत्येव, (अवश्य भाविनि जातु भूतवन्निर्देश) अहार शुद्ध सत्व शुद्धे.।। वा-२ सम यथा तथा आहारो यस्य स, नतु विषमाशनीयर्थ। वा-३- सर्व परिजन विशिष्ट भोजी। वा-४ सम विभज्य भोजन कर्ता। वा-५-सर्म सर्व सह आहारो यस्य,नतु केवल पूर्वा। स्वर्ग प्राप्त एव। अथवा ६ अ = ब्रह्मा ह शिव, म = विष्णु र = राम। ते आहारा ,समा—तुल्या यस्य स देवत्रये अवतारेषु च पक्षपात हीन, स्वर्ग प्राप्त एव (भावार्थ देखिये) धर्म से प्राप्त सात्विकाहार करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। विषमाशन न करने से, ठीक विभाग कर सब परिजनों के समान और सबक साथ भोजन करने से अथवा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकों से सम भक्ति रखने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

कोकी कोक विलोकि विकल सो सूरति परति लखाय।
शीतल मद सुगन्ध प्रातको पवन लगे सिसियाय॥
दीसति ह्वै निराश सो ससियन हिय नहि लखत थिराय।
कुसुम वान लखि आरत तन मन इत उत दबकति धाय॥

विरहिणी की आशा पूर्ति पर कवि फाल्गुण मास के मिस कितना सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। विरहिणी की आतुरता को अवलोकन कीजिये।

रतन जटित मनि खचित अटारी चन्द्रबदनि चितलाय।
चितवति चकति चपल चखचौंधा हरि आवन दिन आय॥
मुदिन ये सब देखें रघुराय॥टेक॥
दीसत वाल अरुण ह्वै प्राची दिसि गिरीश उमगाय।
जकिसी रही चित्र इव चित्रित राधावर उरलाय।
इहि अन्तर केशव करुणाकर कारुणीक सुखदाय।
सोन्हलाय चलि अङ्कु लाडिली परमानन्द सरसाय।
परसत युगल किसोर मुकुल तन सुभग सजीवन भाय।
खोलेउ कमल नयन कटिखीनी विरहा शूल नशाय।
अहनिशि हरि अङ्कु पयङ्कु सर्क सकल मिटाय।
फागुन चलत गिरीश विरहिणी खेलत फाग अघाय।

अन्त में ससार सागर तैरन के वाद जीवन सघर्ष से उकताकर कवि अपने आप से प्रश्न करता है उत्तर आजतक कोई न देसका।

कहो मन का विरते पं भूले॥टेक॥
तन पिंजर नव फाटक लाग द्वार और लखि तूले।
दरमानी दुश्मन सग मिलिगे कहा देखि तुम फूले।
पछी जीव बसं तेंहं चचल पल पल प्रति सो हूले।
छन वाहर उडजात छनहिं पुनि भीतर आयक भूले।
पकरन हार लखात न ताको सब ता बिन हं लूले।
तू मद अन्ध फिरं मतवारो तरुवर ज्यो सरि कूले।
बदल बसेर रीति तेहि जानत का सुख सोच समूले।
श्री 'गिरीश' चित चेत न हो जहि हस चले हिय शूले॥

प्रकृति निरीक्षण तया व्यगोक्तियाँ भी आप को कविता में पाई जाती हैं।

सुन सोखिय विखराव से नहि पूरे जग काज।
सनद लिए कोनो तकत कितेक प्रजुएट आज॥
भिन्न प्रकृति क पुरुष हू मिलि जग करत उदोत।
दृग पसारि देखो सकल विश्व ब्रह्मण्ड की जोत॥

सगीत रत्न, कवि भूषण, गोस्वामी श्री मन्नू लाल जी 'मनु' (स० १९४०-२००७)

आपकी बाल्यावस्था से ही साहित्य तथा सगीत के प्रति विशेष रुचि रही फलत आप नगर के ब्रजभाषा के अपने ढग के अनोखे एव उच्चावरणीय कवियों में से थे। आपकी भाषा बड़ी ही सरल, प्रवाहयुक्त, साहित्यालकारों से भली भाति सुसज्जित, सुहावनी, मनभावनी है। आपने श्रीमद् भागवद् के दशम् स्कन्ध पर भगवान कृष्ण की लीलाओं क छदों सवैयों की सरस रचना बडी ही सुदर मन मोहक रीति से की है। आप का हस्त लिखित ग्रथ 'हिन्दी सुभाषित रत्नाकर' सुरक्षित विद्यमान है। नगर के वयोवृद्धशिरोमणि श्री बचनेश जी, श्री हरि जू, श्री प्रेमनिधि जी, श्री हरीश जी तथा प्रबोध जी से आपका अति प्रगाढ़ प्रेम था। आप में यह विशेषता थी, कि जैसे ही आप साहित्य के उत्तम विद्वान थे उसी प्रकार आप नगर के श्रेष्ठ सगीतज्ञ भी थे। भारत विख्यात, सगीताचार्य श्री 'ललन पिया' जी के आप प्रधान शिष्य थे। आपने नगर के आर्य कन्या इन्टर कालिज में सगीताध्यापकी का कार्य भी कुछ दिनों सपादन किया पुन कुछ समय तक गवर्न० गर्ल्स, इन्टर कालिज फतेहगढ़ सगीताध्यापन का कार्य बडी ही कुशलता से किया। सगीत से सुशोभित साहित्य बड़ा ही चित्ताकर्षक बन जाता है। आपने देवर्षि नारदकृत भक्ति सूत्र का अनुवाद पद्यो में बडी ही माधुर्यता से किया है।

आपकी दो चार रचनायें पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही हैं।

शारदा स्तुति,

भारती भवानी भव्य भावना को भरदे।
श्वेत बसन श्वेत माल श्वेत पद्म राजत हो,
श्वेत कीर्ति कविकुल की करुणा कर करदे। भारती।
विद्या, विनय, बुद्धि, विमल, विजय विशद विविध देत,
वीरता बढावन को सर पर कर धरदे। भारती।
भारतीय भारतीयता पं बलिदान भये,
तेरे ही भरोसे, तिन्हें तू स्वराज्य बरदे। भारती।
भारत भन्डार भरे भूरि भूरि भोगन से,
'मनु' कवि को काव्य कुज रहन को घरदे। भारती।

शास्त्र सम्मत और प्रसाद गुण युक्त होती है। यदि सम्मे-लनों में तात्कालिक समस्या पूर्तियां आप बड़े चमत्कारिक ढंग से करते हैं।

आप अपने काव्य के प्रति उदासीन रहे। परिणाम स्वरूप सभी ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। आप बहुत स्पष्टभाषी हैं अतएव आपके खरे स्वभाव से भय भी लगता रहता है। कवि कोविदसभ द्वारा आपने हिन्दी कविता की और यहाँ के कवियों को उन्नत किया है। कविता, वैद्यक और रत्नविद्या में आप समान पारंगत है। आपकी गजलें बड़े चाव से सुनी जाती है। आप की काव्य कला के कुछ उदाहरण आगे प्रस्तुत किए जाते हैं।

दिया

(१)

कूट-पीस गूध-रौंध मिट्टी को चढ़ाया चाक
चक्कर में डाला डौलदार जब किया है।
काटा तो तुरन्त जड़ से ही एक दम मुझे
रख के जमीन पर खूब सुखा लिया है॥
तिस पै न तोष हुआ आग में पकाया पैंचा
लेने वालों का भी 'हरि' कैसा कड़ा हिया।
तेल भर छाती पै बाती ही जलाई कहो
दिया क्या किसीने 'दिया' नाम धर दिया है॥

(२)

छाती पर बाती रख जगने जलाया मुझे
तरस न खाया कैसा कड़ा हाय हिया है।
तिस पर मैंने सब जगत का आज तक
जल-जल करके भी उपकार ही किया है॥
देखि दुखी बापुने जो जलता बुझाया मुझे
गुल होते होते भी प्रकाश कर लिया है।
दुख के सिवाय और 'हरिजू' कहो तो भला
दिया क्या किसी ने 'दिया' नाम धर दिया है।

अप्रकाशित अघासुर वधसे

(१)

एक दिना नदलाल सकारेहिते
मन माँहि लिय्रो ठहराई।
भोजन आज बनै में करै
यह सोचि कै सुन्दर शृंगो बजाई॥
ग्वाल और बाल जगाय बुलाय
कलेवा को बांधि लिय्रो यदुराई।
आगे कई बछरान किए 'हरिजू'
परतं नित नीके कन्हाई॥

(२)

हरिको घर से निकरो लखिकै
हरिहू कढ़ि पूरब आवन लाग्यो।
उत सुन्दरता अवलोकि छक्यो
हरि ह्वै छवि छीन बजावन लाग्यो॥
बहि मन्द सुगंधित शीतल त्यो हरि
हुवे हिए उपजावन लाग्यो।
हरि लालन में हरि डालन में हरि
ग्वालन में बरसावन लाग्यो॥

(३)

प्रभु की छवि छाकि छकी प्रकृती,
अनुरूप चितेरो को रूप धरे।
वन को करि कैमरा सूरज की
किरनें शुभ फोकस सीधी करे॥
हरि की अँखियान के चित्र लिए
अति सुन्दर सुन्दररूप भरे।
सोई धोवन काज धरे जल में
नहि पकज है सर में पसरे॥

उमाशंकर भट्ट 'दिनेश' जन्म सं० १९४९ वि

श्री गंगारामात्मज श्री दिनेश मुहल्ला कटरा नुनि-हाई के निवासी हैं। नगर के हास्य रस के कवियों में सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं। आप स्वभाव के भी उतने ही विनोदी हैं। नगर पालिका के प्राथमिक विद्यालय के प्रधान पद से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। आपकी प्रत्येक बात हास्य ओतप्रोत होती है। आप अत्यन्त सोम्यप्रकृति के हैं और बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं। खेद है कि आपने साहित्य को अभी तक कोई ठोस कृति नहीं दी।

कविता के उदाहरण निम्न हैं

पत्नी के निधन पर…

पर पीर न जानत हो उर की तुमहूँ पै परै तब जानि परै।
नित सग रमा के विलास करौ, चित में नव मोद हुलासभरै
बहु सूखी तलैया में डूब मरौ तुम देखत है हमरी बिगरै
जो 'दिनेश'की नाहीं सुनोगे कहूँ कमलाहू तुम्हारी मरै पै मरै

श्री चन्द्रमनोहर मिश्र

जन्म सं० लगभग १९५४—२०१०

आप सरायमीरा जिला फर्रुखाबाद निवासी परशू के मिश्र थे। आप के पिता का नाम पं० बतानू मिश्र था आप बीए० एल एल० बी थे और फतेहगढ़ में रहकर वकालत करते थे। आप सुप्रसिद्ध मिश्र बन्धुओं में ज्येष्ठ स्वर्गीय रावराजा पं० श्यामविहारी मिश्र के जामाता थे। आप कवि और कोविद दोनो ही थे। एक ओर जहां आलोचनात्मक निबन्धों में उनकी प्रौढ़ विवेचना शक्ति तथा सूझबूझ के उदाहरण पाठकों को पं० कृष्णविहारी मिश्र द्वारा सपादित 'समालोचक' की पुरानी फाइलों में देखने को मिलेंगे, तो दूसरी ओर आप उनकी काव्यरसधारा मई अवगाहन भी आप माधुरी आदि में करेंगे। उन्होंने पृथ्वीराजरासो' के सम्बन्ध में अपने लेखों में एक नए दृष्टिकोण से प्रकाश डाला था। उनका लिखा हुआ कन्नौज का इतिहास अप्रकाशित पड़ा हुआ है। उनके द्वारा किया हुआ अधिकांश शोधकार्य रद्दी की टोकरी में पड़ा हुआ किसी साहित्य पारखी की बाट जोहरहा है। क्या ही अच्छा होता यदि उनके शिक्षित और यशस्वी कुटुम्बी उनकी अप्रकाशित पुस्तको को ससार का प्रकाश दिखलाते। चन्द्रमनोहर जो के समान काव्य पारखी बहुत कम लोग मिलेंगे। आप रीति, रस के महान् पंडित थे और स्वय अच्छे कवि थे। जनपद के कवियों और साहित्यिको के ऊपर आप की पूरी खोज थी। कवि कोविदसध' के मन्त्रित्वकाल में इन विवरणों के प्रकाशन का विचार उठाया किन्तु पूर्ण न हुआ।

हृदय कमल,

सर-आनन्द मानस में तरतो,
मनहस समीप बनो रहतो।
परि मुक्तन मुक्तन के सग में,
झल दारिद दु:ख झकोरहतो॥
गड़ि जातो दयानिधि-पायन में,
दल-फूल-हजार खिलो रहतो।
तब साँचो मनोहर' पकज होतो,
जुपै हरि हाथ बिको रहतो॥

भारती कृपा

मीत न बीच विनोद में आय,
मनोहर' जो रचनाचित भावत।
बीन बजाय महा मुसकाय,
उड़ावत हँस सराहत आवत॥
मंद हिए में अमन्द छटाको,
सुछन्दन की प्रतिभा सरसावत।
ध्यान पै कान लगाय गिरा,
कवि कन्ठ में आपुहि आप है अवत॥

करुनाकर को कर,

रक्त के विन्दु नें क्यों रहतो
मुख, नासिका, केस, सरीर, सपिंजर।
बन्धन में बधतो कत जीव
अचेतन चेतन को बनतो घर॥
सांसन के मिस ही पलतो फलतो
तन मानुस कैसे मनोहर।
क्यों तरतो तम-पूरित मारग
हो तो न जो करुनाकर को कर॥

आप राष्ट्रीय दृष्टि कोण से भी यदाकदा रचना किया करते थे तथा हास परिहास और रस रंग की रचनायें करने में सिद्ध हस्त थे। तीनों के उदाहरण देखिए'—

किसान

कौसल कलारू कमलारू सबै रिद्धि सिद्धि
जानिकै निषिद्ध गही सिन्धुन की पाप है।
राजन को राज महाराजन को महाबल
मुनिन को तप-बल गयो तजि साथ है॥
वेद बिन विप्र भए तेज बिन छत्रि कुल
बनिज बिहीन बंस बिकल अनाथ है।
भूमि एक देश की मनोहर' रही है सेष
सान अब हिन्द की किसान तेरे हाथ है॥
दीनता दै अपनावत मोहि
तो बन्धुता को फिरि नात न छीजै।
होय कभी नहि मार्गौ कहूँ
सु 'मनोहर' की इतनी सुनि लीजै॥
खातो खरो करि राखो इतै
अमला कमला के सुपुर्द जो दीजै।

सुनते सदैव से ये देखी मूर्तिमान आज
सोना औ सुगन्ध साथ साथ दिखलाती है

(४)

देखी कलाधर में न कान्ति निष्कलक जैसी
चारु चन्द्र मुख ` चमक दिखलाती थी
पीछे पड जाती प्रभा पूरण प्रभाकर की
प्रेम पारावार की प्रतीक दृष्टि आती थी
दीप्तमान दामिनी भी देख के दमक जाती
दिव्य द्युति पर नहीं दृष्टि थम पाती थी
कान्तिमान कचन सी कलित कलेवर सी
कोमल कुसुम सम कामिनी दिखलाती थी ॥

(५)

ललित कलिन्दजा में केलि करती थी कभी
कूल पर कज की कली सी दिखलाती थी
मञ्जुल मरालनी सी मन्द मन्द तैरती थी
वेणी व्यालिनी सी जल पर बलखाती थी
जब बायु वेग से हहर उठती थी तब
सुन्दरी लहर की लहर बन जाती थी
डूबती थी तब शून्य सरिता दिखाती जब
उतराती छवि की छटा सी छितराती थी॥

(६)

तीर पर रूप सरिता के खडे देखते थे
यौवन सलिल वहां मारता हिलोर था
उस ओर प्रेम की अगाध जल राशि और
प्यास भी अपार लिए प्यासा इस ओर था
छलक रहा था रस ललक रहा था प्राण
पलकों के प्याले भर लेने को विभोर था
तृप्ति के सुपास के समीप जाना किन्तु इस
मृग की मरीचिका का ओर था न छोर था ॥

(७)

सुन्दर शरीर से थी सुखद सुगंधि आती
सुधि बुधि सारी तन मन की भुलाती थी
नवल लवग लतिका सी लहराती वह
सुछवि सुहाती लोल लोचन लुभाती थी
सुमन समान भी सुघर सुकुमार अति
मुकुलित कज की कली सी छवि पाती थी
फूलों के समान ही मधुर हासिनी थी वह
चम्पक-वरणि चारु चित्त को चुराती थी ॥

(८)

देवी दानवी हो या कि मजु मानवी हो कौन
शोभा सुर पुर की समूर्ति दिखलाती हो
अथवा अवश्य ही अनिन्द्य अपसरा हो कोई
विश्व की विभूत वन्दनीय भव्य भाती हो
शाप वश कोई दिव्य देव कन्या हो किंवा
नर तन धारी वनदेवि छवि पाती हो
किस हेतु वन मे विहार करती हो कहो
किस शुभ नाम से पुकारी तुम जाती हो ॥
"शान्तनु से उद्धृत"

सरिता.—
तार है न टेलीफोन है न पोस्ट आफिस है
रेडियो भी शायद वहां तक न जाता है
रेल है न जाती वहां कार पहु चाती नहीं
वायुयान जाने का न मार्ग दिखलाता है
कैसे दशा जाने हम उनकी हमारी वह
यन्त्र मन्त्र तन्त्र भी न काम कुछ आता है
सरिते! सदेश लिए जाना और सिन्धु तक
सो रहा हमारा जहा भाग्य का विधाता है ॥

पं० रघुवरदयाल मिश्र सं० १९५५-२०११

आप इसी जनपद के ग्राम सिकन्दरपुर खास के रहने वाले थे। आप भारतीय पाठशाला के प्रारम्भिक अध्यापकों एव सस्थापकों में से थे। पश्चात आप मद्रास चले गए जहां हिन्दी प्रचार सभा के सयुक्त मन्त्री का भार ५) के वेतन से प्रारम्भ किया। वहां रहकर ३५ वर्ष निरतर आपने साहित्य सेवा की और अत में ७५०) के वेतन से सेवा मुक्ति पाई। आप एक लेखक और विद्वान क रूप में परम प्रसिद्धि पाए हुए हैं। यद्यपि आपकी शैक्षिक योग्यतायें केवल हिन्दी विशारद तक थी किन्तु अपनी प्रतिभा के कारण मद्रास विश्वविद्यालय के सीनेट सदस्य भी नियुक्त हुए और बोर्ड आव स्टडीज के मेम्बर रहे विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं के आप परीक्षक भी थे। हिन्दी के चोटी के साहित्यकारों श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री दिनकर

श्री पं० भजनलाल जी पाण्डेय श्री "हरीश" विशारद जन्म संमत १६५१

श्री प० चन्द्रीदीनात्मज श्री भजनलाल जी पाण्डे पा जन्म ग्राम अकबरपुर में हुआ। आपके कुटुम्बियों का मुख्य व्यवसाय अध्ययन अध्यापन ही रहा है। आपके ज्येष्ठबन्धु 'श्री गिरीश जी भी कविता किया करते थे। आप इस समय फतेहगढ़ के म्यु० हा० सै० स्कूल में कार्य कर रहे हैं। भारतीय पाठशाला इन्टर कालेज के पुराने प्रसिद्ध अध्यापक रहे हैं। आप राजनीति के भी कुशल और तपे हुये खिलाड़ी हैं तथा स्वतन्त्रता सग्राम में जेल भी हो आये हैं। आप अच्छे व्याख्याता, वक्ता तथा सुलेखक है। आपने स्थानीय पत्र प्रलय तथा स्वाधीन का सपादन किया आपके साहित्यिक लेख तथा कविताएँ यदाकदा विशालभारत सुकवि आदि पत्रो में निकलते रहते हैं —आपकी कविता के उद्धरण नीचे दिये जाते हैं। खड़ी बोली और व्रज भाषा दोनोंमें लिखते हैं।

एकाकिनी (१)

प्रकृति-बधू की हास्य श्यामला छटा चतुर्दिक छाई।
गगनस्पर्शी हिमनग ऊपर लेती थी अगडाई।

(२)

बसती सूनसान निर्जन वह एकाकिनी विचारी।
रवितनया तट करकफुन्ज में जग प्रपन्च से न्यारी

(३)

कोई सुहृद नहीं था, उसको समुद प्रशसा करता।
और न कोई प्रेमी हो था हृदय प्यार से भरता।

(४)

कोई जटित शिला से सिमटी, पारिजात सी बाला।
प्रात गगन में शुक्रोदय सम करती थी उजियाला।

शून्य काल के पुलिनों पर—
आके चुपके से मौन?
इसे बहाजाता लहरों में
यह रहस्यमय कौन?

कुहरे सा धुंधला भविष्य है,
है अतीत तम घोर?
कौन बतावेगा जाता यह,
किस असीम की ओर?

पावस निशि में जुगनू का
ज्यो आलोक प्रसार
इस आभा में लगता तमका,
और गहन विस्तार

इन उत्ताल तरगो पर यह—
झझा के आघात,
जलना ही रहस्य है बुझना—
है नैसर्गिक बात।

(२)

बताता जारे अभिमानी

कण कण उर्वर करते लोचन;
स्पन्दन भरदेता सूनापन;
जगका धन मेरा दुख निर्धन,
तेरे वैभव की भिक्षुक था,
कहलाऊ रानी
बताता जारे अभिमानी

दीपक सा जलता अतस्तल;
सचित कर आसू के बादल;
लिपटा है इसमें प्रलयानिल
क्या यह दीप जलेगा तुमसे;
भर हिम का पानी
बताता जारे अभिमानी?

चाहा था तुझमें मिटना भर;
दे डाला बनना मिट २ कर;
यह अभिशाप दिया है या वर;
पहली मिलन कथा हूँ या मैं;
चिर विरह कहानी?
बताता जारे अभिमानी।

तोरि डारे स्यन्दन ग्रौर सारथी मरोरि डारे।
रथी मारि डारे जो थे लपटे सनाह मे ॥
वाल बीरताई देखि थीरता पयान भई।
बूड़त कुरुराज परे चिन्ता प्रवाह में ॥
मौत अनुमाने कूर कायर बराने सबै।
पौरि पौरि भाजे कोई शोणित प्रवाह मे ॥

व्यङ्ग विनय

करि ने बुलाया तुम्हें पुष्प दिखलाया एक।
त्यागि वैनतेय तहां तड़े पग जाते हो ॥
पोटरी दबाए काल भिक्षुक सुदामा सुना।
दौरि द्वार प्राए छीनि तन्दुल चवाते हो ॥
सबरो के भौन कौन ग्राशा में गए थे ग्राप।
बैठि भ्रात साथ जहा झूठे बेर खाते हो ॥
करि मैं किसी के कनी दाल भी दिया है कुछ।
दौड़े चले जाते जहा शाक तक पाते हो ॥

दोहे

'इन्द्र' रहे जिन सरन पर राज हस गम्भीर।
दम्भी कपटी तह बसे यह बगुला वे पीर ॥१॥
'इद्र' कहा कोकिल गए कह मनहारी कोर।
फोरे डारत कान को, यह कागन की भीर ॥२॥
'इन्द्र' जहा तुमने लखों वे मैना गुणवन्त।
तिन विटपन की यह दशा चिमगादर लटकन्त ॥३॥
जिन तरु शीतल छाह में बाजकियो विश्राम ।
तह पर गिद्ध समूह यह बैठो नोचत चाम ॥४॥
लखि बागन की दुरदशा उठत 'इन्द्र' हिय हूक।
डोलत जहा मयूर थे बोलत तहा उलूक ॥५॥
निकट गए गजराज के होत रहे मद चूर।
इन्द्र ग्राजु उन गुहन बिच स्यार उड़ावत धूर ॥६॥
झूमत यौं गजराज को जह पर भीड़ अपार।
ग्रहो इन्द्र उस ठाऊं पर यह सूकर पतनार ॥७॥
स्यामकर्ण घोड़े जहां सोहत थे सब काल।
तहां सराहत इन्द्र ग्रब लखि गर्दभ की चाल ॥८॥

पं० रामाधीन त्रिवेदी 'प्रचण्ड'
ग्रायु लगभग ५१ वर्ष

प० रामाधीन त्रिवेदी उपनाम 'प्रचण्ड' के पिता का नाम प० देवी दयाल त्रिवेदी था। ग्राप मुहल्ला कटरा नुनिहाई के रहने वाले है। ग्रध्ययन ग्रध्यापन में ग्राप की विशेष रुचि रही है। ग्राप की जीवका का ग्राधार ग्रौषधिविक्रय रहा है। इस समय ग्राप बहुत शिथिल हो रहे हैं। ग्राप वीर रस के प्रेमी कवि हैं।

(१)

देखि दल शत्रु धाए कोपि कै प्रतापसिंह,
छुधितबिलार ज्यों शिकार लखि कीर को,
एक लिग जू को जय सुनत यवन कापे,
भभरि भगाने जब लागो झरि तीर को।
शोरचहुँ ग्रोर जोर याखुदा बचाग्रो थाग्रो,
चाल न चलत गाजी, हाजी ग्रौर पीर की।
भनत 'प्रचण्ड' रुण्ड मुण्डन सो पाटी महि,
भत प्रेत योगिनी पुकारें जय वीर को ॥

(२)

कृष्ण के सखा को सुत बकड विकट वीर,
नाम ग्रभिमन्यु यश जाको विश्व भर में।
द्रोण दुर्योधनादि सप्त महारथियो के,
छक्के है छुड़ाए गहि चक्र-रथ कर में।
विष्णु भगवान जिमि दैत्यन सहारो दल,
कौरव समूह त्यो बिदारो पल भर में।
भनत 'प्रचण्ड' रणधीर कहै बार बार,
वीरता दिखाग्रो ग्राग्रो सामने समर में ॥

'बूढ़ा कालका'
(ग्रायु लगभग ५५ वर्ष)

ग्रापका वास्तविक नाम प० कालकाप्रसाद बाजपेई है परन्तु ग्राप ग्रपने उपनाम से ग्रधिक विख्यात है। ग्रापने ग्रपनी ग्रधिकतर रचनाएं बृज भाषा में ही की है, परन्तु समय समय पर खड़ी बोली को भी ग्रछूता नहीं छोड़ा है। इनकी रचनाग्रो का प्रकाश समय समय पर मैथिल बन्धु पत्रिका से होता रहा है।

उदाहरण निम्न है—

(१)

महादेव स्वामी एक ग्रर्जी है हमारी,
तुम भक्तन हितकारी, विनय मेरी सुन लीजिये
दीनन को दीन समझ, दासन को दास जान,
मैं हू ग्रनाथ, नाथ कृपा दृष्टि कीजिये।

प्रबोध मिश्र (आयु लगभग ४५ वर्ष)

आपका वास्तविक नाम श्री रामगुलाम मिश्र है। आप वङ्पुर में एक प्रारम्भिक पाठशाला में अध्यापक है। नगर के साहित्यिक जीवन के आप एक सेनानी रहे हैं। प्रबोध जी की लेखनी अत्यन्त प्रखर और प्रभावशाली है। आपकी प्रारम्भिक रचनाओं ने वातावरण में एक चेतना उत्पन्न कर दी। व्यजना और मार्मिकता तो मानो आपकी कविता के परिधान और प्राण है। 'शुक से' नामक रचना पर आपको सेक्सरिया पुरस्कार भी मिल चुका है आप कवि ही नही उतने ही विद्वान हैं और आप का जनपद साहित्य का अध्ययन श्रेष्ठ है।

'प्रबोध' जी वास्तव में अबोध उतने ही है जितना कि एक शिशु। वही सरलता और वही स्नेह, आप एक ऐसे उत्कृष्ट साहित्य सेवी हैं जिनकी साधना मूक है किन्तु सदेस मुखर। उनकी लेखनी जिस ओज और गति को लेकर चली थी, वह आज मद होगई है। अस्वस्थ मन और वातावरण चेतना का भार ही इसका कारण है। आप अपने में इतने समिति होगए हैं कि समाज और लोक का लाभ उनके लिए अन्यथा है।

वह स्वस्थ हो और अपनी सगठन और सृजनशक्ति द्वारा हमें और हमारे साहित्य को सशक्त बना सकें, ऐसी वाणी से याचना है। (आपके स्पन्दन निम्न पक्तियो में बिखरे हैं)

जवान

हम जावन हैं, हमको ही तो व्याही गई जवानी है।
हम दीवाने उसके ऊपर, वह हम पर दीवानी है। टेक।
किससे गणना हुई हमारे इन असख्य अरमानो की।
बुझ पाई है प्यास हमारे कब चिर प्यासे प्राणो की।
पहुच हुई कब लक्ष्य हमारे तक जग के अनुमानो की।
नापी है रे। पग की दूरी किसने हम गतिवानो की।
'बावन' हैं हम, कीर्ति हमारी ही वह गई बखानी है।
हम जवान है, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥१॥
राज-मार्ग मिल जाय स्वच्छ अथवा झाडी झकाड मिले।
कोलाहलमय गाव मिले अथवा मैदान उजाड मिले।
सागर मिले अथाह तरंगित अथवा उच्च पहाड़ मिले।
मिले ठिकाना या न ठहराने को थोडी भी आड़ मिले।
गति अबाध है, बढते चलने की ही हमने ठानी है।
हम जवान हैं, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥२॥
उमँग रहा है वक्ष-स्थल दृढ़ उठती हुई उमगो से।
बाकापन भरपूर, हमारे झलक रहा है अगो से।
उष्ण हमारा शोणित, है चिढ़ ढीले ढाले ढगो से।
खोजा करते स्वय सदा, है हमें मुहब्बत जगों से।
चलते जब हैं साथ हमारे चलता आधी पानी है।
हम जवान हैं, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥३॥
भय कैसा रे ! साथ मृत्यु के करते सदा ठठोली हैं।
शोणित से ही हम मतवाले, खेला करते होली हैं।
देखि अनीति फड़कते हमने कब न भुजाएँ तोली हैं।
आगे तीखे तीरो के है बढ़े, छातिआ खोली हैं।
तलवारो से लिखी हमारी गई कठोर कहानी है।
हम जवान हैं, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥४॥
पूरे करने सभी, पिताओ के दिलके अरमान हमें।
माताओं के कोखो का करवाना सुयश बखान हमें।
बहिनों की राखी की लज्जा, रखने का है ध्यान हमें।
वीर बधू कहलाने का, देना बधुओ को मान हमें।
देश जाति का हम से ही तो, रहता आया पानी है।
हम जवान हैं, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥५॥
आती नही पसन्द हमें है, यह गन्दगी जमानों की।
सुनी पुकार समय की, भागी टोली हम दीवानो की।
बन्धन को स्वीकार करें, यह रीति न हम मस्तानो की।
बसी होशियारो से हटके, बस्ती हम नादानोकी।
हम नवीन कैसे निभ सकती, दुनिया हुई पुरानी है।
हम जवान है, हमको ही तो व्याही गई जवानी है ॥६॥

शरद

तपित ग्रीष्म ने तीव्र पवन से पथ को स्वच्छ कराया,
भेज सदेशा दिनकर करसे वर्षा को बुलवाया।
पाते ही सदेश दूर से वर्षा भागी आई;
आते ही छिडकाव कराके उसने धूल दबाई।
भर उमग में प्रकृति वधूने मल-मल खूब नहाया,
रग बिरगे परिधानो से अपना गात सजाया।
बाजे बजा बजा मेघो ने धरा गुजादी सारी,
मटक मटक के चपला चपलाने आरती उतारी।
बिनी चादनी की पहने सद्र की उजली सारी,
निर्मल हँसी काम से हँसनी शरद सप्रेम पधारी।

इस स्थान को छोड़कर देव प्रयाग में अध्यापन का कार्य कर रहें हैं ।

कविता का उदाहरण निम्न है ।

क्षितिज के पार—

दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार,
कैसे मैं अब रहूं यहां पर हे जीवन आधार !
सुना सुना कर मंजुल गाना,
मुझे बनाता है दीवाना,
यहीं बसा क्या सचमुच मेरे स्वप्नों का संसार,
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
अरुणोदय में खग कुल गाता,
मानो यह सन्देश सुनाता,
देख क्षितिज पर कौन विहँसता खोल सुनहला द्वार ।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार !
हटा तिमिर का परदा काला,
छाया चारों ओर उजाला,
मेरा भी अन्तर तम करदो ज्योतित इसी प्रकार ।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
दुनिया के ये लोग तुम्हारे,
दिखा नेह अरु नाते सारे,
बाँधें अपने कठिन पाश में मुझे न प्राणाधार ।
दिव्यनाद ले कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
मन मन्दिर में तुमको पाकर,
पद पंकज में शीश नवाकर,
हृदय वेदना के देता हूं अश्रु बिन्दु उपहार ।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार

रमेशचन्द्र जी वर्मा 'रमेश' (आयु लगभग ४० वर्ष)

आप नीमकरोरी ग्राम के रहने वाले श्री बनवारी लाल जी के सुपुत्र हैं। वर्तमान में राजकीय दीक्षा विद्यालय फतेहगढ़ अतर्गत अध्यापन कार्य करते हैं। माधुरी,सुधा वीणा, सरस्वती, सैनिक तथा सुकवि में आपकी कवितायें समय समय पर प्रकाशित होती रही है। फर्रुखाबाद कवि कोविद संघ के प्रारम्भ से ही सदस्य, सहायक तथा सेवक रहकर नगर के सम्मेलनों में प्रमुख भाग लेते रहें हैं। 'संघ' द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'डाली' और 'वातायन'में आपकी कुछ रचनायें संगृहीत हैं। कविता का उदाहरण निम्न है —

'कवि'

आनन पर ओज की उमंग आते ही 'रमेश'
बधनों के जाल तोड़ फोड़ क्यों मृणाल है।
विधि के विधान से बड़ा बना के संविधान,
रख उंगली पर इन्द्र आसन उछाल दे॥
भृकुटि विलास से हो विश्व में मचादे क्रान्ति,
काल के भी आगे जो कि जाके ठोंक ताल दे।
सोतों को जगादे जो नहीं 'नहीं मरेहुओं में,
कवि है वही कि जो नवीन जान डाल दे॥

रामनरायण गुप्त एम० ए० साहित्यरत्न (आयु ४० वर्ष)

आप भारतीय पाठशाला में गणित के अध्यापक हैं। गणित के ही समान आपका स्वभाव भी क्लिष्ट है। कई वर्ष पूर्व से कविता लिखते हुए भी कभी प्रकाश में नहीं आये हैं। कविताएँ बड़ी रोचक और भावपूर्ण होती हैं।

'अभय' शर्मा एम०ए० साहित्यरत्न (आयु ३५ वर्ष)

रायबहादुर शर्मा 'अभय' का जन्म १ नवम्बर सन् १९१९ ई० को जिला फर्रुखाबाद के ग्राम रामपुर मांझगांव में हुआ। पिता माता के वंशानुगत प्रभाव से 'अभय' जी की काव्य प्रतिभा मुखरित होने लगी। एम० ए०, साहित्यरत्न हो नगर पालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। कवि होने के साथ साथ आप सफल वक्ता, आलोचक, एव सुयोग्य शिक्षक भी हैं। आप के सौम्य स्वभाव और सरल प्रकृति की छाप जन जन के मन पर है।

'करुण' 'वीर' और हास्य पर आप खूब लिखते हैं। आप के ही द्वारा कथित सात एकाङ्की नाटकों में एक 'माण्डवी' एक 'उत्तरा' करुण रस के द्योतक हैं। 'बापू' विषयक छंद भी कवि सम्मेलनों में वीरता का प्राण फूंक देते हैं। यहां पर उदाहरण स्वरूप 'बापू' के छंद उपस्थित है।

'बापू'-
डम-डम डमरू बजा न शिव शंकर का,
रुद्र का न रौद्र, वे दिगम्बर अजूबा थे।
तमक तमक करते न ताण्डवनृत्य, तामसी थे,
हंस हंस देते थे, विश्वंभर दिलरुबा थे ॥
खप्पर रणचण्डी का न, काली का भरा कभी था
वे न प्रलयङ्कर विजयङ्कर खूब खूबा थे।
गान्धी थे कि शिव थे, शान्त २ भव्य भारत के,
अभय, अभयङ्कर सत्यङ्कर मनसूबा थे ॥१॥
पराधीन भारत में जगा दी अलख ज्योति आके,
सोई हुई राख मे से लपटें खरी हुई।
वरसों की बरोसी में लगा दी एक फूंक ऐसी,
राख बनी, राम कृष्ण अस्थियां हरी हुई ॥
बुद्ध-की अहिंसा, 'सत्य' सत्य- हरिश्चन्द्र वाली,
'शान्ति' भी दधीचि की निकली निखरी हुई।
'अभय' फिर क्या था बस मातृभू मां की तब,
लालसाएं ललकीं औ हरी हुई हरी हुई ॥२॥
—अप्रकाशित 'बापू' से।

श्रीमती स्वर्गीय उमा नन्नो चित्रे (३५वर्ष)

आपका जन्म सन् १६२० ई० में हुआ था और कविवर चित्रे की धर्मपत्नी थी। आप मैट्रिक पास स्वतंत्र विचारों की विदुषी देवी थीं। जिनकी स्मृति में अब भी कभी कभी कविवर चित्रे की आंखें भर आती हैं। कवि को कवि हृदय, पत्नी का मिलना बड़े ही सौभाग्य की बात है और कविवर चित्रे का तो समस्त परिवार ही कवि है। 'नेहनीड़' आपकी रचना है। सन् १६५२ ई० में स्वर्गवास होगया।

(१)

"पागई"-
पागई हूं आज फिर से स्वप्न का संसार अपना।
रजनि कुछ लज्जा समेटे,
देखती नीलम गगन में,
तारकों की दीप माला को-
छिपाये निज नयन में।
मुस्कराती रश्मियों की,
छवि लिये उद्विग्न मन में।
खेत सुमनों से रहो कर पूर्णिमा शृंगार अपना।
इस अंधेरी मौन निशा को,
है धवल शशि ने सजाया
ज्योत्सना का प्रणय जगमें
एक मधुर दीपक जलाया।
थपकियों औ लोरियों से
रजनि ने जग को सुलाया
है दबाये आज उर में शून्य निश मृदु प्यार अपना।
पागई हूं आज फिर से स्वप्न का संसार अपना।

हरिनारायण मिश्र 'पावन' (आयु ३४ वर्ष)

वचनेश जी की शिष्य परम्परा मे से हैं। कविता के अतिरिक्त अभिनयादि मे आपकी विशेष रुचि है। वर्ण्य विषय वस्तु के निरीक्षण से सम्बन्धित रहता है। इधर आप साहित्यिक क्षेत्र में कम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कविता का उदाहरण निम्न है।

पतंग-
थिरक-थिरक कर उड़ती नभ में
अपना चचलपन दिखला कर।
तुझे उड़ाया किसी चतुर ने
धनुष-बाण का रूप बनाकर ॥
गुण पीने में परम कुशल तू
नवित शीश बन जाती है।
पा जाने पर गर्वित हो सिर
ऊंचा कर तन जाती है॥
उस उन्नतकारी के गुण से
आसमान चढ़ जाती है।
किन्तु ! भाग्य है सीमायुत
फिर और नहीं बढ़ पाती है॥
फिर जितना गुण पीती तू
उतना ही पेटा देतीं है।
अपने गुण के बोझ निबल हो
अवनति का रुख लेती है॥
देख तुझे बलहीन दूसरी
जोम भरी उड़ आती है।
तुझे काटकर अपने गुण से
अपना जोर दिखाती है॥
तुझे लूटने को ललचाकर
सारे लोग दौड़ पड़ते।

नाश को निर्माण का नव पथ दिखा
अमावस्या पूर्णिमा में दूं बदल
इस तरह तम दूर कर निज हाथ से
चाहता हूं हर घड़ी चलता रहूं ।

(२)

गीत सदा मस्ती के गाते हम दीवाने चले जा रहे ।
नई उमंगों की वीणा पर
प्रणय रागिनी छेड़ रहे हैं,
अपने पथ पर आने वाले
शूल फूल में मोड़ रहे हैं,
दुर्गम आते पन्थ किन्तु—
उनमें नव पथ हम पा जाते हैं,
प्लावन की ऊर्मिल लहरों को
हम कर पार सदा जाते हैं,
जीवन के उलझे स्वप्नों में जीन खोजते चले जा रहे ।
बन्धन आते किन्तु उन्हें हम
अपना मुक्ती द्वार बनाते,
नहीं किसी के दरवाजे पर
दान हेतु निज कर फैलाते,
सौरभ बिखराते हम अपना
नई दिशायें स्वयं बनाते,
तीक्ष्ण खड्ग की धारा को भी
कोमल किसलय मान सजाते,
इस जीवन के दुर्गम पथ पर साहस करते चले जा रहे ।
हिम गिर से ऊंची बाधायें
आती सदा सुलभ बन जाती,
आशायें अपने जीवन की
नूतन दीप सजोकर लाती,
सदा तिमिर के आडम्बर में
दिन कर की किरणें ले आते,
छोर क्षितिज का छूते बढ़कर
मानव जीवन पूर्ण बनाते,
अपने पथ की लीक सदा हम नई बनाते चले जा रहे

(३)

तुम्हारे जाने के ही बाद
प्यार का होगा रूप नया ।
मूक शब्दों की माला मञ्जु
विहँस कर फैलाये सुपराग
बजेगी वीणा में झंकार
हृदय में नित्य उठेंगे राग,
शून्य पथ पर सबल निष्प्राण
मागते होंगे अमर सुहाग
तरी जीवन की लहरा कर
उठायेगी पतवार नया ॥ तुम्हारे...
नहीं पाया जीवन में कभी
किसी के मधुर प्यार का बिन्दु
शून्य का रहा न मुझको ज्ञान
चमत्कृत हुआ न जीवन इन्दु,
जले कब अन्तर तर में दीप
तरङ्गित हुआ न मानस सिंधु
प्रलय के झोंके आते रहे,
ज्वार जीवन में उठे नया ॥ तुम्हारे...
हृदय की ज्वालाओं के पुञ्ज
प्रलय के गायेंगे नव गान
बहायेंगी जल धारा नित्य
नयन के कोयों की मुस्कान,
मुस्करायेंगे होकर खिन्न
स्नेह के साथी छोड़ गुमान
तभी समझूंगा जीवन धन्य
यही मेरा अनुराग नया ॥ तुम्हारे···
बादलों में चमकेंगे चित्र
सुभाषित होंगे जिनके कोण
लतायें दिखलायेंगी नृत्य
नेह से गायेगा फिर कौन
तुम्हारी स्मृति से ही अमर
प्यार की बातें होंगी मौन
हृदय मन्दिर में अर्चन का
हमारा होगा ढंग नया ॥ तुम्हारे···

रामचन्द्र 'सरल' आयु २६ वर्ष

आप मुहल्ला कोठापार्चा के निवासी हैं। सोने चांदी की दलाली करते हैं। नवयुवकों में आप उत्साही और होनहार कवि हैं। यदि इसी भांति आराधना करते रहे तो

वरदान बेचता हूं अरे कोई लेलो,
क्या दोगे इसका मोल कहो कुछ बोलो।
(तुहिन से)

श्रीनाथ मेहरोत्रा 'श्रांत' एम०ए० साहित्यरत्न
(आयु २८ वर्ष)

आप नगर के श्रीमान कवियों में प्रतिनिधि कवि हैं। आप में निःसंदेह बड़ी प्रतिभा है। आपकी कविताओं का विषय दर्शन है, अतः कवितायें भी क्लिष्ट होती हैं। अंग्रेजी कवि विलियम ब्लेक की ओर आपका झुकाव है। अंग्रेजी कवि विलियम ब्लेक की भांति आपका भी विचार है कि मेरी कविता को लिखाने वाला वही (ईश्वर) है अतएव वह सर्वोत्कृष्ट है। उदाहरण प्राप्त न होसके।

नाथूराम सिंह कश्यप 'मस्तराम' देहाती
(आयु लगभग २८ वर्ष)

कलात्मक साहित्य को काष्ठ पर उत्कीर्ण कर और स्वरों में मुखरित करने वाले इस कलाकार का मूल स्थान तो हरदोई है किन्तु वर्तमान में यहीं साहित्य सृजन कर रहा है। आप से अधिकांश व्यक्ति हास्य कवि के रूप में परिचित हैं किन्तु आप संवेदनात्मक गीत भी लिखते हैं। लोक काव्य से भी आपको प्रेम है। कविताओं का वर्ण्य विषय प्रगतिवादी है।

कविता का उदाहरण निम्न हैः—

परिचय–

पूछ रहा जग क्या बतलाऊ मैं अपना परिचय।
मानव की भूलों का हूं मैं एक बड़ा संचय॥
हमारा इतना सा परिचय।
किसी दुखी माता की ममता के नयनों का पानी।
अथवा जग से ठुकराई विधवा की करुण कहानी॥
या कष्टों की सीमा का हूं
मन मोहक अभिनय। हमारा—
जीवन के संघर्ष क्षेत्र में जीत मिले या हार।
उठने से पहले जीवन का मिट जाना स्वीकार॥
सरल किन्तु जगकी दृष्टि में
विषमय विषम विषय। हमारा—
किसी पथिक के पथ पर अंकित धुंधली सी परिभाषा।
अथवा पथ से बिछुड़ गया उस राही की अभिलाषा॥
आंसू की धारा ही जिसका
करती है पथ तय। हमारा-
गहन अमा में खोया खोया खोज रहा विश्वास।
चिर अतीत की मजुंल घड़ियों का स्वर्णिम इतिहास॥
सप्तस्वरों से अलग, किन्तु
मर्मस्पर्शी इक लय। हमारा—

खोज-

मैं भूले पथ का पथिक अभी विश्वास खोजता हूं।
अमर इतिहास खोजता हूं।
कवि स्मृति पर मानवता के जलते अंगार।
चिर अतीत में लुटा हुआ इक विधवा का शृंगार॥
अबला के संग किया गया
उपहास खोजता हूं।
मरघट की सूनी वेला में प्राणों का नर्तन।
और नाशमय लघु घड़ियों में जगका पुनः सृजन॥
मानव से छिनगया हृदय का
हास खोजता हूं।
सागर की भंवरों में खोया खोया एक किनारा।
और आंसुओंमें जीवन के पथ का क्षणिक सहारा॥
नयनों से ढुलके मोती
की लाश खोजता हूं।
सूर्य ताप से तपित ग्रीष्म ऋतु में जल की धारा।
और भावना जिस में बन्दी वह काली कारा॥
बन्धन से करसके मुक्त
अवकाश खोजता हूं।
झोपड़ियों में बुझते दीपों का लघु क्षीण प्रकाश।
और कफन बिन मरघट में जलती करुणा की लाश॥
इस धरती का बीता सा
मधुमास खोजता हूं।

कृष्णराम पाराशर एम० ए० एल एल० बी०
(वर्तमान आयु २५ वर्ष)

आप इसी जनपद के शमशाबाद के स्थाई मूल निवासी हैं। अपने पिता प० जगदीश नारायण जो पाराशर के सहयोग में स्वयं वकालत कर रहे हैं। साहित्य और उसकी सेवा के प्रति आपकी स्वाभाविक रुचि है। आपकी कविता में नैसर्गिकता छाई रहती है। आपके स्वभाव की सरल

सहकर कितने ही शीत वात
हे वस्त्र सभी धूसरित धूल
पग पग पर चुभते चलें शूल ।
फिर भी लथपथ उग पर डग धर
पल पल पर उर का स्पन्दन
कच्चे धागे सा यह जीवन
विजयों हारों से परिपूरित
पग पर हो तो अवलंबित
उज्वल भविष्य के गान अमर।
मैं फसा हुआ भ्रम के क्रम में
विश्वास किए परिवर्तन में
है मुझे लक्ष्य का ज्ञान नहीं
यद्यपि वह स्थित निकट कहीं।
कानों में पड़ते नूतन स्वर
आई बाधायें आयेंगी
इस पथ से मुझे हटायेंगी
पर मैं उनको भी बाधा बन
चल लूंगा मार्ग कड़े निर्जन
तप ले दोपहरी का दिनकर।
है पंथ अपरिचित अगम धार
जाना है मुझको शीघ्र पार
बह रही नाव गहराई में
तट पर स्थित अमराई में ।
यदि रुकने पाता मैं क्षण भर

महेशदत्त औदीच्य 'प्रबल' (आयु २५)

आप नवीन श्रेणी के तपोनिष्ठ कवि है। शिवजी के अनन्य भक्त और शारदा के सेवक हैं। छंद और गीत तीनों शैलियों में लिखते हैं। बाल-साहित्य और प्रबन्धात्मक चरित्र लिखने का भी प्रयास आपने किया है। नारद मोह एक चित्र सती आदि आपके छोटे २ खण्ड काव्य और प्रबंध हैं। यदि आपको कविता का क्रम यथाविधि चलता रहा तो अवश्य एक स्थान प्राप्त कर लेगी। आप भावुक और सरल प्रकृति के हैं। पाण्डव बाग में पूजार्चन का कार्य भी करते हैं।

कविता के उदाहरण निम्न हैं:-

बारत बसन्त है-

पीर उर बारी लयें, पीरी भई बारी अति,
पीतम पियारो दूर, बसत दिगन्त है।
कोकिल लबारी भई, कूक सुनि लागे हूक,
चन्दन चीर चोवा में, जम वत हुन्त हैं ॥
'प्रबल' सुधाकर हूँ, लागे अग्नि खण्ड सम,
चातक चकोर देखि, आग ही लगन्त है।
कन्त बिन कूर सम, लागत सदा ही बुरो,
बारी वय बारी को बारत बसन्त है ॥

उपालम्भ—

शरण आये को रख लेना या तुम्हारा प्रण,
भूल रहे विरद न इससे कहीं घट जाय।
लाज रखने को दौड़ आते थे नंगे पैर,
होगये अचिन्त्य यश आपका न घट जाय ॥
'प्रबल' सा दुखी है आपकी ही ड्योढ़ी पे पड़ा,
अँगद सा कहीं न इसका भी पैर डट जाय।
राखिए कृपालु लाज आज अवसर पे आय,
ऐसा हो कहीं न आपकी ही नाक कट जाय ॥

गीत

निभ सकें जो काश दोनों,
गीत मेरे प्रीत तेरी।
दे सकें आनन्द मुझको,
हार हो या जीत मेरी ॥
भावना से जन्म पाकर,
कामना में पल रहे हैं।
कल्पना के चित्र सारे,
जल्पना में जल रहे हैं।
सृष्टि की सवेदना से,
छल रहे सपने सुनहरे।
ढल सकें जो साथ दोनों,
भाव मेरे प्रीत तेरी ॥ निभ सकें···
शलभ हो जीना न मुझको,
दीप जिसका मृत्यु पर है।
सुमन हो जीना न मुझको,
... ... — है॥

मैं आदि अन्त के चक्कर में घूमा अब तक
आश्चर्य मुझे में आदि अन्त औ प्रलय सृजन' ॥ तृण'''

५ शिशु ५
लिये युग युग पलको पर आज
उतर आया है कौन सभीत ?
गा रहा अनजाना सङ्गीत
सजग होती है जिससे प्रीत !
नया उतना ही है यह जन्म
पुराना जितना इसका राग !
अरे अनुभव का लिये प्रमाण
रुदन में खोल रहे अनुराग ॥

तु सपनो को भाषा लिये
ाते जन्म—मरण के गीत।
न्धु की गम्भीरता सहास
रहे हो निर्भय सविनीत ॥
बुद्ध के मगलमय उपदेश
राम के ईश्वर जैसे कृत्य।
कृष्ण के योगीपन में रमे
जगा करते तुमसे ही नित्य ॥
वेद की वाणी तेरा बोल मौन भी है तेरा अनमोल।

वीरेन्द्र मृदु (आयु २२ वर्ष)

आप लाला लक्ष्मनप्रसाद आढ़ती कपड़ा के सुपुत्र हैं। बाल साहित्य सम्बन्धी कविताए लिखते हैं आपका भविष्य उज्वल है यदि उसे उचित मार्गदर्शन मिलता रहे। उदाहरण निम्न है।

प्रिय अब भी तेरी वह सुषमा आती मृदु ऊषा बन कर।
वह धीरे धीरे आना
चुपके चुपके मुस्काना।
कुछ तिरछे नयनों से कहना कुछ कह कह कर रुक जाना।
कुछ घूंघट पट का उठना
कुछ उस लाली का बढ़ना।
कुछ रुकना उगना कप जाना फिर पल में तेरा छिपना।
वह साड़ी लहरो वाली
कितनी सुन्दर लगती थी।
हैं ये बीती पिछली बातें पर याद हैं मुझको अब भी
मैं गुन गुन गाता फिरता
जग पागल मुझसे कहता।
पर तेरी मदमय सुषमा भी मैं देखा तट से करता।
भीगी पलकों से छन कर
धुंधले स्वप्नों से सज कर।
प्रिय अबभी वह तेरी सुषमा आती मृदु ऊषा बन कर।

(२)

अम्मा मुझ को चिड़िया लादे
उसके पर मेरे चिपकादे।
उड़ जाऊंगा नेक देर में जहां कहीं मुझको बतलादे।
मा ये दिन भर पद गाती है
जाने कह से पढ़ आती है।
मैं भी सीख जाऊंगा जाकर जो यह पढ़ने को जाती है।
फिर देखोगी मैं नन्हासा
बातें करता हूं क्या कैसा।
चिड़यों सग जल्दी से पढ़ कर बन जाता सबसे अच्छासा।

अवधेश कुमार मिश्र 'दीपक' (आयु लगभग २० वर्ष)

नगर के नवयुवक नवोदित कवियो में आप अच्छा स्थान रखते हैं। आप अत्यन्त भावुक कवि हैं। भाषा शृ गारिक और संस्कृतनिष्ठ होती है। कविता का विषय प्रेम की रहस्यानुभूति है। आपकी 'मीनाक्षी' नामकी एक कविता पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। आप इस समय लखनऊ विश्वविद्यालय के बी० ए० के छात्र है।

आपकी कविता के प्रति महान निष्ठा है। न जाने कितने स्वप्न, भावी कल्पनाओ द्वारा निर्माण करते हुए साधना के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। आप का भविष्य अतीव उज्वल है।

वन्दना के स्वर,
वारिद—मधुर वाहिनि !
मुझको कोटि प्रगतिमय वर दो !
पचभूत युत मृन्मय काया
तमगुण—तम में तन्मय छाया
कर दो चूर्ण, पूर्ण हो जीवन
फूट पड़े चिर चिन्मय माया

(२)

इस जहाँगीर के प्याले से कोई सप्रेम पीकर देखे।
ओठों पर रक्खा हो न कभी अंगूरी मदिरासव जिसने ॥
यह वह विचित्र जल है जिसका एक अल्प घूट पीते पीते।
हैं सर्व मलिनता धुल जाती ससारचक्र मर्दित मन से ॥
भरकर यह सुधमायुत प्याला दिन रैन छलकता रहता है।
मदमत्त नयन अवलोक जगत इसको ही 'झेलम' कहता है॥

बाबूराम दीक्षित एम० ए०

जन्म स्थान पिपरगाव, जिला फरुखाबाद जन्म तिथि अषाढ़ सुदी १३ सम्वत १९५६ विक्रमी सहायक उपविद्यालय—निरीक्षक फरुखाबाद के पद पर कार्य कर रहे है। रचानाओ में तत्कालीन घटनाक्रमों के विचारों का अच्छा समावेश रहता है। श्रद्धाजलियां लिखन में आप विशेष सिद्ध है। यह गद्य में श्री प्रेमचन्द्रजी को तथा पद्य में श्री मैथिलीशरण जी को अपना गुरू मानते है और उन्ही की शैली पर लिखने का प्रयत्न करते है।

राष्ट्र पिता पूज्य महात्मा गाधी जी के निधन पर

— हृदयोद्गार —

(१)

रे नर पिशाच नाथू ! कायर कलङ्की तेरे,
फायर से डायर की दुष्टता लजाती है।
विश्व वन्द्य बापू के, जीवन की पावन ज्योति,
तेरी पशुता से, दिव्य ज्योति में समाती है।
रेडियो के द्वारा, यह ज्यो ही अपवाद फैला,
मच गया हा हा कार विश्व बिलखाती है।
हाय आज अस्त हुआ भारत का भाग्य भानु,
हिंदुओ के भाल पै, कलङ्क की निशानी है।

(२)

जनवरी तीस शुक्र सन् अड़तालिस को,
सध्या को नाथू ! वज्र भारत पर ढाये है।
हुये जासों वन्द काज उलझे है, साज बाज,
भूले सुधि बुधि, सब शोक में समाये है।
औवितों को कहे कौन ? प्रकृति हुई दीन मौन,
रात्रि से शोक घन गगन माहि छाये है।
आज धमधार मर्यादा पुरुषातम गांधी,
कर स्वतत्र देश, हाय स्वर्ग को सिधाये है।

मोहनलाल अवस्थी 'मोहन' बी० ए०

(आयु २८ वर्ष)

आप पिपरगांव के निवासी है। वर्तमान में प्रयाग विश्व विद्यालय में अध्ययन कर रहे है। आप गीत शैली में भी विशेष स्थान प्राप्त कर रहे है। सुगायक होने के कारण सम्मेलनों में खूब जमते हैं। कविताए यत्र तत्र पत्रो में प्रकाशित होती रहती है। आपका लिखित महारथी कर्ण खण्ड काव्य प्रकाशित भी हो चुका है। आपकी प्रतिभा से साहित्य को कोई स्थाई वस्तु प्राप्त हो सके, यह कामना है।

— प्रात हो गया —

हुआ विकल अधीर कब
निराश वर्ष कब चला
विभावरी न जान सकी
और प्रात हो गया
नया प्रभात होगया।

(१)

पहिन दुकूल दुग्ध धवल
अग अग थे खिले
कुमोदिनी प्रसन्न थी कि
आज पिया है मिले
मृगाङ्क भी रुका रहा
विनत वदन झुका रहा।
वियोगिनी परन्तु बात-
कह सकी न सुन सकी।
कि चल दिया मयक, वज्र पात होगया।
नया प्रभात हो गया।

(२)

मिटी समस्त क्लान्ति
प्रकृति के विषाद धुलगए।
किरण सरोज से मिली
कि बन्द अधर खुल गए।
विहग कूजने लगे
दिगन्त गूजने लगे।
कुमार स्वप्न भूमि पर
खड़े निहारते रहे।
सुवर्ण सिन्धु में रजत प्रपात खो गया।
नया प्रभात होगया।

सुशिक्षित नहीं हैं इस लिये भाषा पर नियन्त्रण नहीं है किन्तु जो भाव आपकी कविता में हैं वे उसे मूल्यवान बनाते हैं। आपके एक मात्र पुत्र का बलिदान भी काश्मीर युद्ध में होचुका है।

आपकी पुस्तकें प्रकाशित—वीर व्यापार, वैदिक सध्या, कश्मीर की लड़ाई और अप्रकाशित नौजवान, अनुराग-वीथिका, विनोद विहार [प्रहसन], आदर्श सती [गल्प] और स्फुट रचनायें है। उदाहरण निम्न है।

वाणी वन्दना-

कानन निवासिनी तू जीवन की साथिनी है
पास बैठि दिव्य तार वीणा के बजाती जा,
रागिनी जगाती हुई बोध भावना से भरी
राखती दयालु, दृष्टि नेह वर्षाती जा।
चेतना न भूलू शुद्ध सुरुचि सुधा के सने
शब्द मोतियों की मंजु मल्लिका बनाती जा,
पूरन प्रतापियों का विरुद बखाने छा
काव्य कान्य अनुराग उपजाती जा।
देके प्रेम हाला मतवाला जो बनाये मोहिं
क्षीर सा पिलाती पूर्ण तन्मय बनाती जा,
जीवन में मोह अन्धकार नाशन को मातु
मस्तक पर विराज ज्ञान दीपक जगाती जा।
वीणा झनकाती हुई राखती सतर्क प्रेम
जामें से अगण दोष दाहक दुराती जा,
पुण्डलीं जगाती उच्च मेधा सरसाती
इच्छा लेखनी के साथ २ लेख में समाती जा।

श्री शिवप्रसाद द्विवेदी

आपका जन्म कन्नौज मुहल्ला होली में सं० १९६६ के श्रावण मास में हुआ था। आप ने कुशाग्र बुद्धि होने के कारण शिक्षण काल में कई पुरस्कार प्राप्त किए। विद्यार्थी जीवन से ही आप कविता प्रेमी थे आप सन् १९४१ से १९४३ तक कन्नौज से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक राष्ट्रीय-हलचल के सम्पादक भी रहे। आप की कवितायें धार्मिक एवम् राष्ट्रीयता के रंग से ओत-प्रोत होती है। आज कल आप पैराशूट आफिस कानपुर में मुख्य लेखक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

कन्नौज का किला

था सुख ही सुख ठौर सभी
दुख का न 'प्रसाद' कहीं लवलेश था।
लख के जिस के धन— वैभव को
लज्जित सा अति ही अलकेश था।
दुर्गितों से जो नाचा हो
जग में न बचा कोई ऐसा नरेश था।
थे अमरेश से हर्ष महीप बने
अमरालय भारत देश था ॥१॥

देखते हो जिसे ढेर सा आज
कभी इस पै धरा धन्य थी होती।
ले निज गोद समोद इसे
निछावर थी करती निशि मोती।
उषा जिसे भर अचल में निज
प्रीतम के हित हार पिरोती।
निर्मल नीर से थी इस के
चरणों को कालिन्दी निरतर धोती॥

बैठ एकान्त सँयोगिता भी यहीं
प्रेम का पाठ पढ़ा करती थी
मूंद स्वलोचनों को यहीं पर निज
इष्ट का ध्यान धरा करती थी।
आकुल हो कभी मस मरालिनी सी
यहीं पर विचरा करती थी।
कुन्दन, कोकिला, कीर, कुरंग
मतग का मान हरा करती थी॥

मांगते प्रेम की भीख रहे
बहुतेरे परन्तु उन्हे ठुकराया।
भूली नहीं पल भर को जिसे
हृदयासन पै एक बार बिठाया।
अन्त में छोडे सभी सुख साज
सहेलियों का सुसमाज न भाया।
पृथ्वीराज का पावन प्रेम ही
था उसके अग अग समाया॥

श्रान्त से हो जग—कलान्तियों से
जब प्राणी सभी एक ओर थे सोते।
था प्रहरी खड़े द्वार कहीं, कहीं
भार सा जीवन भार थे ढोते।

भारती ! क्या भारती उर दीप ही से भव उतारू
भेंट में श्रद्धा सुमन दूँ अर्घ्य हित प्रेमाश्रुधारू
सार्थक निज नाम करने, आज वाणी दान दो माँ !
शारदे वरदान दो माँ

उपालम्भ (व्रज-भाषा)

आवत जो घनश्याम कहूँ,
तौ मयूरिहु पिउ पिउ टेर लगावत ।
जो कहु आउते होत गुपाल,
तौ गाव की गैल गऊन गुहारत ॥
जो मुरलीधर आवन होत तौ,
झुंड कुरंगिन के घिर आवत ।
काहे को टेरत काँव कुठाँवरे,
काग कलको न क्यों उड़ आवत ॥

(२)

पठए तुम भोग के भूप कन्हाई के,
ऊधो हमें कहा योग सिखावत ।
हम बावरी स्नेह की सिन्धु पिये,
तिन को तुम ज्ञान की गाढ़ि दिखावत ॥
हम नित्य वियोग की आगि जरें,
तुम काहे जरे खरे लोन लगावत ।
जु वे भोग को योग बतावत श्याम,
ते योगी वियोगिनि योग पढ़ावत ॥

गिरिजेश त्रिपाठी (आयु २६ वर्ष)

आप कन्नौज निवासी हैं । नवयुवक कवियों में आपको श्रेष्ठ स्थान मिल सकता है । आपकी कविताएँ निस्संदेह बड़ी सुन्दर है । आपका भविष्य अति ही उज्वल प्रतीत होता है । उन्हीं के शब्दों में उदाहरण एवं परिचय प्राप्त कीजिए ।

आपकी कविता के उदाहरण निम्न है ।

सुन्दर सुगन्ध खान काशी से महान जान,
तीर्थ स्थान कान्यकुब्ज का निवासी हूँ ।
प्रेमका प्रकाशी विश्व बन्धुता विलासी कुछ,
काव्य कल्पना के साथ जीवन विकासी हूँ ।
साथ रघुनाथ हैं सनाथ में नवाऊँ माथ,
सीता की रसोई मार्ग निकट निवासी हूँ ।
सुन्दर सुभ्रात है त्रिपाठी जात भ्रात मम,
नाम गिरजेश कवि रचनाभिलाषी हूँ ।

—ईश-वन्दना— (प्रमाणिक)

नर तन धर खल बधन अटल पन
अजर अमर जल सयन सदन कर
सरमद सबल हरन अघ बल कर
सहस मदन सम सजल बदन कर
सहस धरन कर हरन जनन मन
अपरस तन कर दरद दलन कर
जलज नयन कर हरन नरक सब
जगत करन सत पथ नर तन कर
अभय अनल जन जनमन हर भय
बधन सकल खल दल कर छल बल
नमत चरन पर सकल जगत यह
हरन करत पल पल अघ बल बल
अचयन अक्षय अकथ अचरजमय
अनघ हरन सब कल दर दल बल
सदय समद अम जनक मथन मद
अभय करत जन हरत खलन छल

मथुराप्रसाद मिश्र बी० ए०
(आयु २६ वर्ष)

आप एक अच्छे गीत कार व लेखक हैं । मकरन्द नगर (कन्नौज) में रहते हैं । आपका जन्म १९२९ ई० में हुआ । आपके गीत मार्मिक, कान्त, कल्पना युक्त और ओजस्वी हैं । निसंदेह यदि आपका काव्य क्रम इसी प्रकार चालू रहा तो हिन्दी को बहुत कुछ प्राप्त होगा । उदाहरण निम्न हैं ।

वह सुघर कल्पना टूट गई,
वह सपना रहा अधूरा ।
प्रानों की वह मधुर पिपासा
आंखों का उज्ज्वल अनुराग ।
निशि के अञ्चल में मुह ढककर,
होने वाला सरस विहाग ।
आंखो में मधु-प्रेम मधु भर,
आहों के विगलित स्वर में ।
हो न सका अभिसार असीमित,
किन्तु हो गया दुखद सवेरा ।

प्रेम प्रणय परिणय गठबन्धन
सभी तोल कर जान चुके हैं
किन्तु कसौटी पर कस कर कब
अपने को पहचान सके हैं।
मधु पी लेते सभी मधुपजन पर विषपान कठिन कितना है।

पं० लक्ष्मीनारायण जी द्विवेदी

(आयु ६० वर्ष)

आप तिर्वा के निवासी संस्कृत के विद्वान अध्यापक हैं। संस्कृत एवं हिन्दी दोनों में रचनाएं करते हैं। आप अत्यन्त साहित्य प्रेमी और रसज्ञ हैं। काव्य शास्त्र के ऊपर आपका विशेष अधिकार है। यह हमारे जनपद और प्रकृत भाषा की एक निधि है। उनकी कविताओं के उदाहरण निम्न हैं।

'जगी रहैं' (वक्रोक्ति कृष्ण गोपी प्रश्नोत्तर)
नैन अलसौंहे लै चली हो कित ? बूझैं कहा ?
अलसौंहे होय आके जो निसि जगी रहैं।
बात चलो कुञ्जन कूं हों न बाल चाहौं तोहि।
चाहौं वाहि जासौं तुव प्रीति उमगी रहै।
कामिनि ! कहां ते रस नूतन समाय्यो दीठि ?
दीठि सदा तुव रस—साजन पगी रहै।
मोहिनि ! दै मीठो मोहि का करौगे मीठो कान्ह
मोहन मिठाई तुव होठन लगी रहै॥१॥
मान पै (श्रीकृष्ण मुख वर्णन)
सावन अमावस निशीथिनीन वारि डारों।
कुंडल कलित घुंघराली अलकान पै।
तोरि डारों भृङ्ग मय काम धनु भौंहन पै।
वारि डारौं कोटि बान तीखी अखियान पै।
सन्ध्या सोन मेघ अवलीन कों निदरि डारौं।
मधि डारौं विद्रुम अरुन अधरान पै।
सरद सुधाकर करोरनि निचोरि डारौं।
साम के सलोने सुचि आनन की आन पै॥१॥

★ श्रीकृष्णावेश ★

डारों सबै सब को सहेली बूझै राधिका सों
प्यारी ! नयो काह ? तेरो सुधि गयो भग है।
बोलैं अरी क्यों न ? तनि नैननि उघारि हेर।
तेरी दसा देखें हिय भयो जात भग है।
वाही छिन बैन कढ़े राधिका के आनन तें—
प्यारी बिन तोहि मोहि डाकत अनङ्ग है।
राधे तें कहां है ? हाय दरस करावौ कोउ।
सुनि योगि जन की समाधि भई दग है॥१॥
मुमूर्षु बैल की गाड़ीवान से प्रार्थना (समस्या-'बनावै न')
मेरे नाथ गाड़ीवान ! हा हा कै निहोरो करौं,
एतो बिनै मेरी तें हिया ते बिसरावै ना।
मेरो तन छूटै पै चमार कों पताइ दीजै,
जजर जुवा है, धीरे काई फाटि जावै ना।
जूता जीन पुर हू बनावै, मम मास खाय,
बैंचै हाड़ पोढ कोऊ वस्तु ध्यान जावै ना।
एतो सब करै, पै बहाइ अनुमान कहौं,
मेरी खाल काटि कै सो चाबुक बनावै ना॥
— मीन—विलाप —
सावन विचार विकराल ऋतु ग्रीषम को,
मीन मन आकुल किलोल नेकु नावै ना।
सूरज के तपन तें विलाप जरि जाय जल
प्रान रखवार मम कोउ दीठि आवै ना।
जानै मीत भेक कछु जिय की आरति सोऊ—
जाइ कहूँ नीर तीर—वारिद सुनावै ना ?
आरत अधीर मुख पङ्क में गराय कहै
बिन घन—स्याम कोऊ बिगरी बनावै ना॥
पीउ पीउ पुकार करने वाले चातक पर स्नेह प्रदान
लाल नैन कोकिल ! त कारी विकराली कूर
बोलि बोलि बोल मेरे प्रान जरावै ना।
बरत बसत में पलास किंसुक अशोक
अब तिन सग तें हूं काहे बरि जावै ना।
मरी रे मलिन्द हूं पतङ्ग दाडिमी गुलाब
पङ्कज प्रदीपन पै कोऊ रुचि पावै ना।
जीउ जीउ चातक ! बुलाउ पीउ पीउ पीउ—
रटनि लगाउ प्रान सों हित मनावै ना॥
आनन—प्रदेश के पथिक 'नयन'
दृगों को भाता यही प्रवास।
श्रावण कुहू निविड रजनी में
ज्योत्स्ना मय मधु—हास।
अर्ध निशाकर उर में करता
प्रकृति—तनय विलास॥

हरिश्चन्द्रदेव जी 'चातक'
(आयु लगभग ६५ वर्ष)

चातक जी ग्राम अतरौली (छिबरामऊ) निवासी हैं। आप जिले के कवियों में प्रमुख हैं। काव्य की प्राचीन व नवीन सभी धाराएं आप ने बहाई हैं। आज कल गीत शैली में लिख रहे हैं। आपने पर्यटन खूब किया है इस लिये आपकी कविता में ज्ञान और अनुभव की छाया छिपी रहती है। आप के अनुसार आपकी नैवेद्य वासन्ती, क्रान्ति दूत, नीराजन, रक्तकमल, भावों के स्वर्ग में काव्य पुस्तकें प्रकाशित होचुकी हैं। कतिपय का अंग्रजी तथा जर्मनी में अनुवाद भी होचुका, सुना जाता है।

अस्तु:

चातक जी निसन्देह उच्च कोटि के कवि हैं किंतु उन्हें उचित सम्मान न मिलने के कारण क्षोभ है सम्भवतः इसी कारण कुछ अहमन्यता प्रभाव जम बैठी है। जमीदारी उन्मूलन से आप और पराश्रयी होगये हैं। कविताका उदाहरण निम्न है।

।घट—

(जीवन के दो चित्र)

कोमल कुसुम से करों में रहते हो कभी—
और कभी कृश कटि ऊपर दिखाते हो।
कभी मृदु अंक में जमाते जाके आसन हो—
यौवन सुखों को देख-देख न अघाते हो।
पद-रज जिसकी चढ़ाते सभी शीश पै हैं—
उसी सुन्दरी के कभी शीश चढ़ जाते हो।
जान गया जीवन से पूर्ण हो इसी से तुम—
(घट) होके (बड) से भी बढ़ पाते हो।
जीवन-विहीन ग्रीवा रज्जु से बंधी हुई है—
लटक रहे हो नीचे नीचे अंधकार में।
भटक रहे हैं हाय भटक रहे हो हाय—
निरपाय भटक रहे हो मझधार में।
साहस करो! विलोको सामने हो जीवन है—
लो डुबो दो रिक्तता को पूर्णता के प्यार में।
फिर यही पात्र बन जाओगे समादर के—
विजय तुम्हारी बाट जोहती है हार में।

चित्र की चिन्ता-

कितनी आशायें ले मन में जब कोई है सन्मुख आता—
याचना पूर्ण आखों से वह जाने क्या क्या है कह जाता।
दोस्मित अधरों से जब स्वागत पाने को मुझसे ललचाता—
तब देख मुझे निस्पन्द मूक वाणी विहीन वह पछताता।
मेरी यह ममता हीन भुजा कब दीन दुखी की ओर उठी—
मेरे मन में कब करुणा की पलभर भी एक हिलोर उठी।
मैं रहा तरसता ही दुखियों का एक अश्रु कम कर न सका—
दो बोल प्यार के कह कर के मुर्दों में फिर दम भर न सका।
उन खारे उष्ण हृदय खण्डों से कभी नहीं भीगी छाती—
मैं कभी नहीं यह कह पाया क्यों तुम्हे न मेरी सुधि आती।
मेरे अपाङ्ग मण्डित लोचन मादकता कहा उडेल सके—
मेरी हृत्तन्त्री से आकर गीतों के स्वर कब खेल सकें।
उन कोमल हाथों को छूकर कण्टकित न मेरा गात हुआ—
उनके विछोह से कब मेरा जीवन रो-रो बरसात हुआ।
भू-कम्प हृदय में नहीं उठा सामने प्राण धन को पाकर—
गालों पर लाली कब दौड़ी मधुमय आलिङ्गन में आकर।
मुझमें स्पन्दन अनुभूति नहीं तो फिर उच्छवास कहाँ होगा—
मैं तो अपने से बिछुड गया जान अब वास कहाँ होगा।
बस इतनाही क्या कम गौरव प्रियतम की प्रतिकृति कहलाता-
उनको अपने में बाध रखा उनसे मेरा अटूट नाता।
है अमिट सखे! मेरा चित्रण परिवर्तन का ना मुझे भय है—
मैंने यौवन को स्थिरता दी मुझको देखो वह अक्षय है।
मुझको व्यापार पसन्द नहीं—
जिसको अपनाया अपनाया।
यह क्या दर्पण सा जो आया—
उसको अपने में दिखलाया।
बस अब इतनी ही चिन्ता है—
उन्माद प्रेम का घटे नहीं।
जिनका हू उनके चरणों से—
पलभर जो मेरा हटे नहीं॥

नेह जी (आयु ५५)

नेह जी छिबरामऊ के पूर्व प्रसिद्ध कवि हैं। कुछ परिस्थितिवश आप दूसरे व्यसन में पड़गए। वैसे आप एक सच्चे और प्रतिभाशाली कवि हैं। आपकी कई अप्रकाशित पुस्तकें हैं।उदाहरण प्राप्त नहीं हुआ।

शित होने वाला है। आप की कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

उदगार—
प्राण अब देख न तू उस ओर।
छोड़ दिया तूने जो अपने पथ का पिछला छोर।
'प्राण' अब देख न तू उस ओर॥

हा पड़ी सो रही व्यथायें,
देख कहीं वे जाग न जायें,
नयनों में जो छिपे श्यामघन-
कहीं न अविरल धार बहायें,
और बहा ले जाय न तुझको उनकी एक हिलोर।
'प्राण' अब देख न तू उस ओर॥

झंझावात विकट आवेगा,
जो झकझोर तुझे जावेगा,
मन वीणा के तारों पर तू,
कैसे राग मधुर गावेगा,
उर तन्त्री के तार टूट कर देंगे दुख घनघोर।
'प्राण' अब देख न तू उस ओर॥

हैं आंसू के थोड़े से कण,
पर आंखों से प्रतिपल प्रतिक्षण,
गिरेंगे इस भांति कि मानो—
टरक निकले सोने का प्रण,
जिन्हें रोकती आई आंखें बाध पलक की कोर।
'प्राण' अब देख न तू उस ओर॥

जिस उपवन में सुमन नहीं रे,
बढ़ता क्यों उस ओर अभाग ?
बढ़ उस पथ पर आग आगे
जिस पर तेरी किस्मत जागे,
रात अंधेरी बीते तेरे जीवन का हो भोर।
'प्राण' अब देख न तू उस ओर॥

रामप्यारे श्रीवास्तव 'नीलम'

(जन्म १० जनवरी १९३४ ई०)

आप मूलत जिला रायबरेली के रहने वाले हैं। किन्तु वर्तमान में छिबरामऊ में अध्यापक हैं। वहां की पा० सा० परिषद की शाखा के मन्त्री हैं। तीन वर्ष से कविता कहानी और एकांकी लिख रहे हैं। इण्टर में आंसू छन्द में 'बुझते दीप' नामक खण्डकाव्य लिखा था। किन्तु प्रकाशित नहीं कराया। तब से बराबर गीत लिख रहे हैं। विचारों से पूर्ण आशावादी हैं। व्यंजना में छायावादी पुट रहता है किन्तु अस्पष्ट कुछ भी नहीं भाषा सरल सबके समझने लायक होती है।

कविता के उदाहरण निम्न हैं—

प्रगति के पथपर—
अचानक किसी रूप का तेज पीकर,
नयन मेघ घट से गिरा नीर होगा।
पिये दग्ध रवि की ज्वलित ज्वाल पुंजे,
सुलगते उदधि से उठी मानसूने।
शलभ प्यास की रट जलन को छिपाये,
कि सौ सौ दरद ले जली लालटनें।
छिपी मेघ पट में छली चंचलाका,
तड़पना बुझाना नरा पीर होगा।
खड़ी इक सुहागिन क्षितिज ताकती है,
विसुधतन विसुधमन शरम के दुआरे।
गया बीत सावन, शरद, फागुनी भी,
गया सूख बेला सजाये, सवारे।
विधी प्राण कोकिल भरी बासुरी भी,
कहीं रूठ ऋतुपति गया कीर होगा।
विवस वृद्ध नभ से गिरा एक तारा,
न रोका धरा ` गया धस रसातल।
वहीं क्रोध भड़का ज्वाला मुखी बन,
उड़ी हैं स्फुलिंगे जला नभ धरातल।
किसी वंचना से सताया, उपक्षित,
प्रगति की डगर पर चला वीर होगा।

गीत—
नन्हे नन्हे फूल खिले साल भर,
और भ्रम गूंजे डाल डाल पर,
किन्तु आदमी सदा उदास है, हताश है
वह सदैव प्यार से निराश है।
जिन्दगी की धार सदा आगे आगे बढ़ रही,
वासना की लहर नदी के कगार चढ़ रही,

स्व० लालमणि गुप्त
नगर के एक उदारमना
समाजसेवी

स्व० कविवर बाबूराम जी
शुक्ल
जिन्होंने आधी चौपाई व
पीन संग्रह नामक ग्रंथ
लिखे।

पत्थर वाला मंदिर गल्ला
मंडी फर्रुखाबाद जिसमें
समस्त देवताओं और
अवतारों के चित्र उत्कीर्ण
है।

शास्त्रों के विद्वान यहां हुए हैं। ज्योतिष के क्षेत्र मे जानकी प्रसाद जी (बिल्लो स्याली कूंचा) अपने समय के सिद्ध भविष्य वक्ता थे। वैद्यों में गुल्ली गुसांई (जिनकी मृत्यु १५-१६ वर्ष पूर्व लगभग ८० वर्ष की आयु में हुई थी) और मसुसराय (तथा प्रसिद्धि 'लल्ला' वैद्य पर स्थिर होती हुई उनकी परम्परा) बल्देव प्रसाद मिश्र, बड़े हकीम, तथा रगीलाल वैद्य निश्चय ही हमारे जनपद के गौरव रह चुके हैं। भक्त और सतों मे देवीसहाय जी स्वामी चिदानद,ब्रह्मानद और स्वरूपानद का नाम स्मरणीय है। देवीसहाय जी शकर के परम भक्त थे। इनके निर्मित भजन नगर और जनपद मे अत्यन्त लोकप्रिय हैं। कहा जाता है कि एक बार गोला गोकर्णनाथ मे दर्शनार्थ जाने पर मंदिर के कपाट इनके लिए स्वत. खुल गए थे।

स्वामी चिदानद जी पजाएवाली बगिया में रहते थे। इनके पास एक फर्सा सदैव रहता था। एक बार उसे वह खानपुर में भूल आए। भक्तों के पूछने पर आपने कहा कि जहां होगा वह स्वय आजाएगा। फर्म को एक व्यक्ति ने खेत से लाकर अपने घर रखलिया। उसी रात्रि को उसके लड़के को दस्त होने लगे। फर्सा देने पर ठीक होगए।

ब्रह्मानद जी की प्रसिद्ध सर्वाधिक रही। उनकी सिद्धि के चमत्कार बहुत से देखने में आए। चौधरी फतेहचन्द्र पालीवाले ने एक मुकदमें में श्री लाभ करने पर एक भण्डारा देने का सकल्प किया था। उसकी पूर्ति न करने पर स्वामी जी ने उन्हें श्राप दे दिया था जिसके कारण उनके दो निद्राए हो गई थी वह अन्त तक जैसी की तैसी बनी रही। स्वामी जी कठोर शीत में भी नग्न ही रहा करते थे। कुछ लोगों को इस आचरण पर सदेह था। उनकी परीक्षार्थ सराबगी मुहल्ले के बिद्दो तथा दो अन्य व्यक्ति गए थे। स्वामी जी के स्थान पर जाकर उन्होंने देखा स्वामी जी नग्न बैठे हुए हैं। उन्हें देखते ही स्वामी जी ने उनके वहां आने का अभिप्राय बता दिया। उन लोगों को इतना शीत अनुभव होने लगा कि वह निर्जीव से होने लगे। प्रार्थना करने पर स्वामी जी ने उन्हें अपने पास आकर बैठने को कहा। पास जाकर उन्हे इतनी गर्मी लगी कि पसीना निकलने लगा। वह दो व्यक्ति तो लौट कर वापस आगए, किन्तु कहा जाता है कि बिद्दो उनके घर में ही अनुरक्त होगए और फिर घर लौटे ही नहीं। स्वा जी का देहावसान लगभग ४०-५० वर्ष पूर्व हुआ है। उन स्मृति अभी बहुतों के पास सुरक्षित है।

एक अन्य सिद्ध महात्मा फणीन्द्र स्वामी(दाक्षिणात्य ने भी अपना स्थाई निवास इसी नगर को बनाया था आप सर्वज्ञ थे आपकी विशेष अनुकम्पा श्री लालमणि जी प्रे वालों पर थी। उन्होंने अपने जीवन में स्वामी जी के अने चमत्कार देखे थे। महात्मा फणीन्द्र स्वाम एकाएक कुर्सी पर बैठे ही बैठे समाधिस्थ हुए और ब्रह्म में लीन होगए। स्वामीजी ४०-४२ वर्ष पू लगभग १०० वर्ष की आयु में समाधिस्थ हुए थे आप दक्षिण से पैदल यात्रा करते हुए ही यहां पधारे थे।

नगर के परम भक्तों में थी श्री १०८ बाबू श्याम-सुन्दर शरण गुजराती का नाम भी सदैव स्मरण रहेगा। आपका जन्म स० १९२८ तथा मृत्यु स० २००६ में हुई। आप मु०किशनसहाय के निवासी थे। आप कुछ काल तक रेल्वे में मालबाबू रहे। आप उन परम भागवत पुरुषों में से थे जिन्हें भगवान ने स्वयम् दर्शन दिये थे। आप सदैव गगा सेवन और हरिस्मरण में प्रवृत्त रहते थे। आप अत्यन्त सकोची और विनीत थे, यही कारण है कि बहुत से व्यक्ति उनके महत्वको नहीं समझ सके। स्वामी स्वरूपानद तथा ब्रह्मानद जी की आप पर महान अनुकम्पा थी। आप एक उत्तम कोटि के कवि थे। प्रतिदिन दो पद बना कर मन्दिर में सुनाने के लिये देना आपका नियम था। तुलसी कृत समस्त ग्रन्थों के अर्थ करने में आप अत्यन्त पटु थे जनकपुर के सखा आदि उनकी पुस्तकें प्रकाशित भी हुई थीं। स्फुट पदों का सग्रह रामयणी कृपाशकर जी पुजारी, (भूतपूर्व पोस्टमैन) के पास सुरक्षित है। आपके विषय की दो घटनाएं उक्त श्री कृपाशकर जी द्वारा बताई जाती हैं जब भगवान ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन और सहायता दी। अपनी नौकरी का भार ग्रहण करने बनारस जा रहे थे। भगवान ने भक्त के दर्शनों की उत्कट लालसा देखी और एक बालक के रूप में सरयूजल अयोध्या स्टेशन पर लाकर उन्हे स्वय दे आये। उनकी पुत्री के विवाह के समय ठेले वाला

शास्त्रार्थ तीन दिन तक चलता रहा था, शास्त्री जी व्याकरण और मीमांसा के परम विद्वान थे। आप के ही दौहित्र स्वर्गीय गणेशदत्त शास्त्री व्याख्यानाचार्य हुए हैं। कन्नौज में भी स्वामी जी की शक्ति परीक्षा का प्रसङ्ग आया था। स्वामी जी जहां ठहरे थे वहां दो पहलवान व्यायाम कर रहे थे। कुतूहलवश स्वामी जी ने उनसे कहा कि वह पास पड़ी एक प्रस्तरशिला उठा लावे जिससे कि वह उसका आश्रय लेकर शयन कर सकें। दो तीन पहलवान भरपूर चेष्टा करने पर भी उसे जब हिला न सके तो स्वामी जी मुस्कराते हुए उठे और सहज भाव से शिला को उठाकर अपने शीर्षस्थान के नीचे रखकर लेट गए। मल्ल वेचारे व्यायाम करना छोडकर न जाने किधर चले गए।

स्वामी जी का आगमन कई बार हुआ। जिसके कारण यहाँ के लोगों से उनकी आत्मीयता भी बढ़ गई थी। लाला कालीचरन व बाबू दुर्गाप्रसाद से उनका काफी पत्र व्यवहार भी होता रहा। पता नही वह अब समाज में सुरक्षित है भी ? हां, यह अवश्य है कि स्वामी जी के आगमन का पूरा वृत्तान्त और उनका पत्र व्यवहार 'फरुखाबाद का इतिहास' नामक ग्रंथ में जो आर्य समाज द्वारा ही प्रकाशित हुआ था, विस्तृत रूप में छप गया है। प्रस्तुत विवरण भी उसी आधार पर संकलित किया गया है।

जनपद के मल्ल

फरुखाबाद में मल्लविद्या का काफी प्रचलन रहा है। अब भी नगर में सैकड़ों की संख्या में अखाड़े हैं। वास्तव में इनकी शक्ति का उचित दिशा मे नैतिक उपयोग ही नहीं किया जासका। दूसरे सामंतपद्धति का विनाश होने से इनके पोषण की समस्या सुलझ नहीं सकती है। जनपद मे द्वारासिंह प्रसिद्ध मल्ल थे। यह दिल्ली वाले नवाब वालिए-मुल्क खा के दरबार में थे। धाधूं से इनकी ऐतिहासिक कुश्ती हुई थी। लावनी बाज गनेश प्रसाद, चुन्नासिंह व मुक्खा सिंह (बंधुयुगल), लट्टी उस्ताद और चौबे आदि प्रसिद्ध मल्ल हो गए हैं। मल्ल द्वारासिंह और चुन्नासिंह, मुक्खासिंह समकालीन थे। द्वारासिंह ने चुन्ना मुक्खा के एक भाई शकरसिंह को तलवार से मार डाला था। प्रति-शोध रूप दोनों ने द्वारासिंह पर चढ़ाई की। मुक्खासिंह उस युद्ध में मारे गये थे। अन्त में चुन्नासिंह ने अपने भानजे प० द्वारकाप्रसाद की सहायता से द्वारासिंह को तलवार टुकड़े २ करके मारडाला और उसका रक्तपान किया। घटना मु० लडियाई के निकट घटी थी। खट्टीपुर के र दलमर्दनसिंह स्वयं कुशलमल्ल थे। उन्होंने मल्लों अत्यन्त आश्रय दिया था। मल्लों की परम्परा अब चलती चली जारही है। जगन्नो गुरू और रग्घू गुरू अखाड़े नगर में अब भी प्रसिद्ध हैं।

— व्यक्ति और बोलियां —

उत्तर प्रदेश तथा सीमावर्ती प्रदेशों में किसी नगर के चौराहे पर खड़े होकर यदि फरुखाबाद नाम घोष कर दिया जाये तो एक बार तो आसपास के व्यक्ति चौकन्ने हो ही जायेंगे और सचमुच ही यदि कोई व्यक्ति फरुखाबाद का वहां हुआ तो वह तत्काल ही पहचान लिया जावेगा। इसका कारण यह नहीं है कि फरुखाबाद आवासी होने में कोई रूप विचित्रता है किन्तु है एक स्वभाव की विशिष्टता। न जाने किन परम्पराओं के कारण फरुखाबादी को यह समझ लिया जाता है कि वह झगडालू है। वास्तविकता यह है कि फरुखाबाद के निवासी व्यवसाय आदि के प्रसङ्ग में अन्य अन्य नगरों में जाकर अपने इस गुण का परिचय देआए हैं और उसका परिणाम ही ऐसी कथोक्तियां हैं। किन्तु यह निष्कर्ष वैयक्तिक हो सकता है सामान्य नहीं। जनपद की सामान्य मनश्चेतना का विभाजन कई वर्गों में किया जा सकता है। वर्ग के अनुसार भिन्न स्वभाव भी बन गए हैं। कायमगंज उपद्रवों और झगडों के लिये प्रसिद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति छुरे चाकू का चमत्कार दिखाने को सदैव प्रस्तुत रहता है। इसका कारण यही रहा है कि कालान्तर से वहां संघर्षों का केन्द्र रहा। पठान स्वयं एक लड़ाकू वर्ग रहा है। कायमगंज मुहम्मदखां के संस्थापित किए गए राज्य की सीमाभूमि थी। अतएव युद्धकुशल सैनिकों को वहां रखा गया। धीरे धीरे उस स्थान की प्रवृति भी वैसी ही बन गई। सैनिक जीवन में अनाचार की भावना उत्पन्न हो ही जाती है क्योंकि शक्ति का उपयोग किसी अन्य दिशा में नहीं हो पाता है। यही कारण कायमगंज के आस पास की जनता के निष्ठुर और आतंकशील होने का है। फरुखाबाद के भी सैनिक

१८–१६वीं शताब्दि में नील,शोरा और अफीम का व्यवसाय प्रमुख रहा। शोरा की कोठियां फर्रुखाबाद, फतेहगढ़ में थी जिनमें मनो शोरा प्रस्तुत करके विदेश भेजा जाता था। नील और अफीम की खेती और उसका निर्माण बड़े रूप में प्रचलित था। सहस्त्रों रुपयों की पूंजी और सैकड़ों आदमियों की शक्ति इसमें लगी हुई थी। नील तो कम्पनी की ओर से तैयार भी करवाया जाता था। उन दिनो पूरा चीन अफीम की पिनक में अफीम की मांग किए जारहा था। फिर उससे लाभ क्यों न उठाया जाता। नील, अफीम और शोरा के व्यवसाय अब एक स्मृति के रूप में ही शेष रह गए है।

अर्वाचीन उद्योगों में नगर में छपाई का कार्य सर्व प्रमुख है। यहां की साध श्रेणी इस काम को हथियाए हुए है। इंगलैंड फ्रांस व अमेरिका छपे वस्त्रों की अच्छी मन्डी रहे है। यहां के कारखानों की शाखाएं उक्त देशों में खुलचुकीहै। अब नवीन प्रकार की मशीनों की छपाई के कारण इस उद्योग में मन्दी आती जा रही है। किन्तु रंग निर्माण और ठट्टा बनाने का कार्य प्रमुखता रखे हुए हैं। छपाई के कार्य में फर्रुखाबाद का नाम उज्वल रह चुका है। छपाई का प्रारम्भ १७५५ के लगभग नामदेव साध द्वारा हुआ था इस व्यवसाय में लगभग ३००० व्यक्ति व लगे हुए हैं लगभग १० लाख के माल की खपत भारत में होती है और २० लाख की बाहर विदेश में। जनपद का दूसरा व्यवसाय जो भारत विख्यात है, वह है, इत्र का।

कन्नौज के इतिहास के साथ इत्र का इतिहास सर्वंव ही जुड़ा चला जावेगा। इत्र का आविष्कार तो नूरजहां द्वारा माना जाता है किन्तु इससे पूर्व भी चन्दन और प्रलेप प्रसिद्ध थे। प्रलेपों का एक विशेषज्ञ नूरजहां के दरबार में था। वह कन्नौज का ही निवासी था। इनके आविष्कार के पश्चात उसने कन्नौज को अपना इत्र उत्पादक स्थान बनाया। तभी से कन्नौज में इत्र का केन्द्र होगया। वास्तव में कन्नौज में इत्र निर्माण का कार्य उतना नहीं होता है जितना वितरण का। अलीगढ़ जौनपुर लखनऊ आदि से इत्र की रूहें आती है, जो तैल शरीर में प्रविष्ट होकर कन्नौज की कारीगरी का उदाहरण बन जाती है। कुछ भी हो कन्नौज का नाम इस बात में प्रसिद्ध है। इस व्यवसाय में एजेन्टों की अधिक खपत है। निर्माण का कार्य प्रमुख नहीं है, फिर भी ५०—६ कोठियां अच्छे इत्र की हैं। लगभग १५०० व्यक्ति अपनी जीवका अर्जन करते हैं। कन्नौज के आसपास विशेषतय गङ्गा जी की ओर दो तीन मील तक गुलाब आदि के पुष्प बाग दिखाई पड़ते हैं। यह फूलों की खेती इत्र के प्रयोग से ही की जाती है। सन्दल कन्नौज की एक विशेषता है। दो सन्दल के मिल अत्यन्त प्रसिद्ध है।

तृतीय प्रमुख व्यवसाय वस्त्र का है। लगभग ५० वर्ष पूर्व यहां की भूमि कपास के उत्पादन के लिए अत्यन्त उर्वर थी किन्तु अब यहां कपास बिल्कुल नहीं पैदा होती है, जो कायमगंज की ओर थोड़ी बहुत होती है वह अच्छी नहीं होती है, फिर भी जुलाहोंगीरी जनपद का एक प्रसिद्ध उद्योग है। इसी के साथ दरी निर्माण का व्यवसाय है। कहा जाताहै कि५०० व्यक्तियों के बैठनेके लिये पर्याप्त एक एक दरी यहां बनाई जाती रही है। अबभी यहा दरियों के कई कारखाने है जहा से दरियां बनकर निर्यात होती है। जरी की कढ़ाई का काम भी बहुतों को जीवका दिलाता रहा है।

पीतल के बर्त्तनों का निर्माण और सराफा भी प्रसिद्ध उद्योग हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्य बजारों में इनकी गणना है। कायमगंज में चाकू छुरे आदि लोहे के औजार तथा ताले बड़ी सतर्कता से बनाए जाते हैं। उलियापुर ग्राम इसी लिये प्रसिद्ध है। छिबरामऊ कच्चे व पक्के चमड़े के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध है।

फर्रुखाबाद का उत्पादन और व्यवसाय दोनों ह्रास पर है। जलवायु भी कुछ विषम होती जारही है। यह प्रदेश अपने हरे भरे बागों से आच्छादित था किन्तु उनके कटने से जमीन बलुई होती जारही है और उत्पादन कम। फर्रुखाबाद में रेल की मुख्य लाइन न होने से व्यापार में बड़ी अड़चन पड़ती है, यदि शाहजहांपुर जोकि गंगा के उस पार है रेल द्वारा फर्रुखाबाद से जुड़ जाय तो व्यापार तथा आवागमन में बहुत उन्नति हो सकती है। गङ्गा द्वारा जिस समय व्यापार होता था उस समय की समृद्धि अब दृष्टिगोचर नहीं होती। अबसे पचास वर्ष पूर्व ऊंटों और घोड़ो के दल के दल लदे हुए दिखाई देते थे किन्तु वह व्यापार अब क्षीण होगया है। कानपुर

था। आपकी मृत्यु को भी लगभग ८० वर्ष हो गए हैं। ग्वालियर के जोरावर सिंह भी इस दरबार में अपना एक प्रमुख स्थान रखते थे। आप तबला तथा पखावज बहुत सुन्दर बजाते थे।

श्री जोरावर सिंह जी के दो शिष्यों का नाम उमराव जी तथा गोपाल जी था। यह लोग मदार दरवाजा कालीदेवी के पास के रहने वाले थे। आपके वंशज अब भी इसी स्थान पर रहते हैं तथा यही कार्य करते हैं। आप दोनों तबला तथा पखावज के अच्छे वादक थे।

इसी काल में मोहनलाल जी सारंगी के अच्छे वादक हुए हैं यह कादरबक्स के शिष्य थे। मोहनलाल जी का देहावसान ७५ वर्ष की आयु में लगभग ८० वर्ष पूर्व हुआ है। आपके भतीजे गिरधारी लाल जी तथा पुत्र बल्देव प्रसादजी दोनों ही सारंगी में निपुण थे उन्होंने सर्मत मोहन लाल जी द्वारा शिक्षा पाई थी। गिरधारी लालजी ने प्रयाग मिश्र बनारस वालों से गान विद्या की शिक्षा ली। प्रयाग मिश्र बनारस के रहने वाले थे तथा अपने समय के अच्छे संगीतकार माने जाते थे। वह रजवाडों में भी आया जाया करते थे। गिरधारी लाल जी भी अपने समय में गुरू की श्रेणी में पहुँच गए थे। आपके शिष्य रामगुलाम जिनका देहान्त हुए लगभग ३५ वर्ष हुए अच्छे संगीतवादक थे। गिरधारीलाल जी ने अपने पुत्र बाबूरामजी कत्थिक को भी उचित शिक्षा दी। बाबूरामजी नगर प्रसिद्ध गायक तथा नृत्यकार हैं। सारंगी में तो आपके पिता स्वयं दक्ष थे। अतः अन्य से शिक्षा दिलवाने की आवश्यकता ही नहीं थी, आपने स्वयं सारंगी में बाबूराम जी को निपुण किया। गान विद्या की शिक्षा के लिये आपने अपने ही गुरू प्रयाग मिश्र की सेवा में भेजा और कुरबान हुसेन रामपुर वाले से भी दिलवाई। नृत्य विद्या के लिए आप नटराज बिन्दादीन व कालिका प्रसाद लखनऊ वालों के शिष्य रहे। निपुण गुरुओं की शिष्यता में रहने के कारण बाबूराम जी ने संगीतकार के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त की। आप जल तरंग अच्छी बजा लेते हैं। आपका अधिक समय नगर से बाहर रजवाड़ों में ही बीता। आप संगीतकार के साथ साथ गीतकार भी हैं। आपने पद तथा ठुमरियों की रचना की है जो अधिकतर 'प्रयाग पिया' अर्थात गुरू के नाम से लिखी हैं। आप कथ्थक नृत्य में तो निपुण हैं ही गाने [illegible] पूर्ण भाव दर्शाने में दक्ष हैं आपकी आयु इस समय ७५ वर्ष है आपके रचे हुए पद तथा ठुमरी के उदाहरण निम्न

राम पीर हरो पीर मुझ गरीब जन की।
जगत सिन्धु बीच परो, भवरन में भ्रमति फिरे
हरि को नहि नाम भजो एसी दसा मन की।
मैं तो प्रथम दीन दयाल, तुम्ही नाथ प्रनतिपाल
क्षमा करहु चित से हाल, मेरे गुन औगुन की।
काया रुचि रुचि बनाय, सात नही नीरू पाय
वृथा वैस सब गमाय, त्रसना रही धन की।
चरन शरन आयो प्रयाग, विनती करे महाराज,
सीता पति राखो लाज मेरे वृद्धपन की॥

ठुमरी राग सोरठ
कान्ह तोरी बसुरिया मैंने सुनी।
सुध न रही जबसे कान धुन परी,
मैं तो कहा कहू सारंग के सुरन भरी।
इतनी अरज मेरी अब सुन लीजै,
एक मोहि दर्शन दीजै, दूजे मोहे वेग।
मिलो कुंजन में, तीजे यह प्रयाग करत बिनती॥ आदि।

बाबूराम जी के पुत्र का नाम लाडिले प्रसाद है। पिता ने आपको भी गान तथा नृत्य विद्या की शिक्षा दी।

जोरावर सिंह जी के शिष्य गोपाल जी के पुत्र ईश्वरी प्रसाद थे। आप तबला के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने आसपास के नगरों में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आपके शिष्य बाबूराम बरिभाला ग्राम में रहते थे तथा तबला बजाने में जिला में अपना एक स्थान रखते थे। दूसरे शिष्य पुत्तूलाल तबला का निर्माण कार्य करते हैं। तबला वादन का अच्छा ज्ञान है। आप के दो पुत्र हैं (१) पुत्तूलाल जी हैं जो केवल तबला का ही पूर्ण ज्ञान रखते हैं, (२) श्याम सुन्दर जी भिन्न भिन्न प्रकार के बाजों और गानों दोनों ही का ज्ञान रखते हैं। आप बेला आदि भी बजा लेते हैं। साथ आधुनिकचलचित्रों तथा शास्त्रीय ज्ञान के भी गाने गाते हैं इसके साथ नृत्यकार भी हैं। आप को कभी कभी आकाशवाणी से भी बुलावा आजाता है।

अन्य वाद्यकारों में सलारी साहब को तबला को वाले प्रसिद्ध रहे। मम्मन खा कन्नौज तथा छगनलाल

साध धर्म

फरुखाबाद नगर में एक मु० सपपाड़ा है। इसमें साध धर्म के माननेवाले एक वर्ग विशेष के व्यक्ति रहते है। यह लोग अत्यंत व्यापार कुशल है। रगाई छपाई के तो विशेषज्ञ ही है। इनके उद्गम और धर्म के विषय मे विशेष जानकारी नहीं है। वह आचरण और सामाजिक व्यवहारों में हिन्दुओ से नितात पृथक है। अपने धर्मग्रंथों को यह अन्यों को दिखाते भी नहीं है। ज्ञात होता है कि कबीर पथ आदि के प्रचलित होने के समय ही किसी साधु से इनकी परम्परा चली। 'साध' शब्द भी साधु का अपभ्रंश ही प्रतीत होता है। साध लोगो को श्वेत गोल पगडी (टोपी) और श्वेत वस्त्र विख्यात है। मिलने पर 'आनद' शब्द कह कर अभिवादन करते है वेदों पर विश्वास नहीं करते वयोवृद्ध एव साध धर्म के विज्ञ सज्जनों से ज्ञात हुआ है कि आदि में सर्व प्रथम अवगत गुरु ससार क कल्याण हेतु पधारे और उन्हीं के कबीरदास जो प्रथम शिष्य हुए। कबीरदास जी ने ही इस धर्म का प्रचार आरम्भ किया। किन्तु औरगजेब के राज्य काल में अधिकाश साध धर्मावलम्वी मृत्यु के घाट उतार दिए गए, और धमग्रन्थ नष्ट कर दिये गये

वि०१७१४ में नारनौल में वीरभान एव जोगदास नाम के दो साध हुये जिन्होंने इस धर्म का विशेष प्रचार किया इसके पश्चात १८७१ वि० के लगभग अमर दास साध नाम के एक सज्जन हुए जो पहले हनुमान जी के उपासक थे। वे साध धर्म से प्रभावित हो कर जीवन भर उसी के प्रचार में लगे रहे। उन्हों ने 'ध्यानबानी' नाम की एक पुस्तक का सृजन किया।

फरुखाबाद में लगभग २५० वर्ष पूर्व साध धर्म के अनुयायी आए। उसी समय से यह लोग कपड़े की छपाई का व्यवसाय कर रहे है जो कि दिन पर दिन उन्नति की ओर अग्रसर होता जा रहा है। चमड़े तम्बाकू मांस एव मादक द्रव्यो का व्यापार इनके धर्म के विरुद्ध है। भोजन में भी यह लोग तमोगुणी वस्तुओं का व्योहार नहीं करते।

प्रति मास की पूर्णिमा के दिन चौकी (मन्दिर) में एकत्रित होकर अपने गुरुकी बानी का पाठ करते है। इस समय सामने किसी पात्र में प्रसाद स्वरूप मिठाई रख लेते हैं और बानी पढ़ने के बाद वह प्रसाद बिना किसी भेद भाव के बांट दिया जाता है। यहां केवल धर्म चर्चा ही की जाती है। सभी का एकत्र होना अनिवार्य है। यह एक प्रकार की स्थानीय छोटी सभा है। बड़ी सभा का वर्ष में केवल एक बार आयोजन होता है; उसे 'भण्डारा' कहते हैं। उसमें शुद्धाचरण वाले सार्यो से ही द्रव्य लिया जाता है जिसके आचरण पर किंचित मात्र भी सन्देह होता है उससे नहीं लेते यह भण्डारा प्रतिवर्ष फाल्गुन सुदी १२ को ही होता है क्यों कि इसी दिन सतगुरु की शिक्षा मान करके मुक्ति मार्ग पर इन लोगों के अगुआ चले थे। यह समारोह चार दिन रहता है। इन दिनों सत नाम का जाप एव धर्म सम्बन्धी अन्य वार्तायें होती हं इनके धर्म पर एक पुस्तक अन्ग्रेज मिस्टर ऐलीसन ने भी लिखी है उसका नाम "दि साध" है।

इनकी प्रधान धर्म पुस्तक निर्वान ज्ञान है जिसमें ६ कड़ा २ पन्द्रगीत ८० के लगभग बानी ६ जथा १७ नौ निद्धो तथा एक निशानी है। इनके ही द्वारा इन लोगों के समस्त धार्मिक कृत्य सम्पन्न होते हं जन्म मे कोई उत्सव नहीं मनाते, विवाह बहुत साधारण रीत से होता है, केवल दो गद्दी बिछा दी जाती है जिन पर चार बारयून हर घेरे, बानी पढ़ कर डाल दिए जाते हं। इससे पूर्व लड़के को साध एव लड़की को बाई बनाते हं इसमें उनको धर्म के अनुसार चलना और भजन करना सिखाया जाता है अधिकांश यह लोग फरुखाबाद में ही रहते हं इसके अतिरिक्त बीजामऊ सहारनपुर लायलपुर हसन पुर मिर्जापुर रोहतक तथा दिल्ली के रास्ते के गाव एव मारवाड़ में भी कहीं कहीं पाए जाते हं।

हिन्दू धर्म के सभी महापुरुषो की वे बानी जो इनकी पुस्तक में हं उनका यह अनुकरण करते हं। और राम, कृष्ण आदि अवतारों को अवतार न मान कर महापुरुष मानकर श्रद्धा की दृष्टि से देखते हं ईश्वर के अवतार पर श्रद्धा नही रखते। यह अपने सतगुरु को पचतत्व और तीन गुन से परे मानते हं। इनके पन्थ के प्रधान नियम निम्न लिखित हैं—

सत्यनामी पन्थ के नियम

(१) आदि शब्द को परखना उसमें लगना और निर्वान ज्ञान पढ़ना सुनना और समझना अर्थ करना

नगर के विश्रान्ति घाट एवं मंदिर

पुण्य सलिला भगवती भागीरथी ने अपने स्पर्श से जिन नगरों को महानता प्रदान की है, उनमें जनपद के कम्पिल, कन्नौज और फरुखाबाद भी है। तटीय प्रांत भाग की भांति अपनी शोभा के दिग्दर्शन लाभ एवं परम सात्विक साधना के निर्जन स्थल में रम्य कुटीरों और उटजों की छटा इन विश्रान्ति गृहों के रूप में देखने के लिए किस का मन लुब्ध न होता होगा। निम्न पंक्तियों में उन्हीं की एक झलक दिखाना अभीष्ठ है।

गंगा तट पर अनेक नगर है और उन सबका ही अपने अपने क्षेत्र में महत्व है, लेकिन गंगा जी की जो महत्ता हरिद्वार से लेकर कन्नौज तक है वह अपरिमेय है। इसका कारण यह है कि यहां तक गंगा केवल गंगा जी है। उनमें कोई अन्य सहायक नदी आकर नहीं मिली है। कन्नौज के पास ही गंगा जी मे काली तथा राम गंगा मिलगई हैं।

गंगा तट के अद्वितीय घाट (विश्रान्ति) नगर की महत्ता में एक विशेषता जोड़ देते है। इन विश्रान्तों को (कल्याण) विशेषांक द्वारा भारत के अद्वितीय घाटो की संज्ञा दी गई है। फरुखाबाद नगर से ५ मील पूर्व तक एक विश्रान्तों का क्रम चला गया है। जो अवर्णनीय छटा नगर के लगभग २ मील पश्चिम से पूर्व तक फैले हुए घाटो की है वह अन्यत्र नही इन घाटों में अधिक प्राचीन घाटों का इतिहास केवल टूटी हुई सीढ़ियां या गंगा जी ही बतला सकती है। वर्तमान विश्रान्तो का निर्माणकाल लगभग १०० वर्ष पूर्व का है, जो भिन्न भिन्न समय पर भिन्न२ व्यक्तियों द्वारा बनवाई गई है। यह विश्रान्ते कहीं पर एक दूसरे से सटी हुई है और कहीं पर कुछ जगह छुटी हुई है। यह विश्रान्ते कही पर प्रारम्भ में ही गुम्बजाकार है और उन गुम्बजो के मध्य में फर्श तथा सीढ़ियां है। किन्ही मे प्रारम्भ मे केवल फर्श तथा सीढ़िया ही हैं और कुछ हट कर यात्रियों की सुख सुविधा के लिए कमरे आदि हैं। कोई इक मन्जिल हैं तो कोई दुमंजिल और कोई कोई तिमंजिला भी बनी हुई हैं। विश्रान्तों में सुन्दर सुन्दर भित्ति चित्र तथा मन मोहक बेल बूटें नाना प्रकार के रगों के बने हुए है जो यात्रियों का मन अपनी ओर अनायास ही आकर्षित कर लेते है। समस्त विश्रान्तों मे सुन्दर २ उद्यान बनाये गए थे। गंगा स्नानार्थी पूजनार्थ इनमें पुष्प चयन किया करते थे।

नगर की प्राचीर पार करते ही इन विश्रान्तों को जाने के दो मार्ग हो जाते हैं। एक सीधी तथा पक्की सड़क सबसे पश्चिम के घाट के लिए जाती है तथा दूसरी कच्ची सड़क सब से पूर्व की ओर के घाट के लिए है और इन के मध्य में समस्त विश्रान्ते है। पहिले इन दोनो सड़कों पर नगर के प्रसिद्ध रईसों के बाग तथा बगीचे थे। इनमें नाना प्रकार के फल फूलों के वृक्ष थे। यह लोग गंगा स्नान करने के उपरान्त यहां भजन आदि किया करते थे। आये हुए महात्माओं के प्रवचन भी सुना करते थे। आज इनमें से अधिकतर बाग बगीचे अपने उस स्वर्णिम युग को समाप्त कर चुके है

सब से पश्चिम में टोकाघाट है। शहर से सीधी सड़क यहां तक आती है। यहां पर सबसे पश्चिम का घाट सिद्धगोपाल की विश्रान्त के नाम से प्रसिद्ध है। सिद्धगोपाल नगर के प्रसिद्ध रईस थे। इस परिवार के लोगो के नाम के साथ 'रईस' शब्द जोड़ा जाता है। यह विश्रान्त लगभग ८० वर्ष पुरानी है। कहा जाता है कि यहां पर जो पहली विश्रान्त बनी थी उसके उद्घाटन मे वैश्या का नृत्य हुआ और गंगा जी के कुपित होने से वह विश्रान्त रात भर मे ही नष्ट हो गई। उसके स्थान पर इस नवीन विश्रान्त का निर्माण हुआ। प्राचीन विश्रान्त के चिन्ह अब भी है। यह विश्रान्त बड़ी सुन्दर बनी हुई है। इसमें पत्थर की कारीगरी के साथ साथ नाना रगों के बेल बूटे बड़े ही सुन्दर है। रंगों की विशेषता यह है कि इतने दिन हो जाने पर भी आज नवीन मालूम देते है। विश्रान्त मे स्त्रियों के नहाने का घाट बिलकुल ही अलग बनाया गया है। स्त्रियों वाले भाग मे एक पत्थर का जालीदार कमरा है जिसमे जाली द्वारा गंगा जी के जल आने की व्यवस्था है। एक नाली बनी हुई है जिससे जल सदैव स्वच्छ बना रहे। गंगा जी के किनारे केवल सीढ़ियां तथा फर्श है, परन्तु फर्श के बाद ही कमरे है जो कहीं कहीं पर दुमंजिला हैं। यह विश्रान्त बहुत ही महत्वपूर्ण मानी जाती है, क्योंकि यहां पर ही स्वामी दयानन्द जी सरस्वती अपनी धार्मिक यात्राओं में आकर ठहरा करते थे। यहां पर कुछ दिनों एक क्षय रोग का

अस्पताल भी रहा।

इसके पास ही गगा मन्दिर है जिसमें गगा जी की सुन्दर मूर्ति है। मन्दिर के सामने ही गोशाला है।

गोशालाके पास ही श्रीसदानन्द तिवारी की विश्रान्ति है। नगर तथा जिला के कई प्रमुख मन्दिर आप के बनवाए हुए है, जहां पर हर वर्ष वडे वडे मेले लगते है। आप बड़े ही दानी थे। इस विश्रान्ति के बाद कुछ दूरीपर पन्नूलाल मनोहरदास की विश्रान्त हैं। विश्रान्तो के बाग नष्ट हो गये है तथा इमारत का भी यथेष्ट भाग नष्टप्राय है। इस विश्रान्ति से आगे बढ़ने पर दूल्हाराव जी की तिमंजिला विश्रान्ति है। जिसकी गुम्बजाकार के स्थान पर सपाट छतें है लेकिन भीति चित्र आदि बड़े सुन्दर है। आगे बढ़ने पर भुन्नीलालजी की विश्रान्ति है। यहीं पर एक गुफा नाम का स्थान है जहां पर सत महात्मा रहते हैं। इस से मिली हुई विश्रान्ते साधारण हैं परन्तु यात्रियों के ठहरने का इनमे भी यथेष्ट प्रबन्ध है। एक विश्रान्त जवाहरमल की विश्रान्त के नाम से प्रसिद्ध है।

अन्तिम विश्रान्ति शाहजी की है, इसके दो भाग हैं। पश्चिम की पुरानी विश्रान्ति है जहा पर अब केवल सीढ़ियाँ ही शेष रह गई है, इसके बुर्ज मुण्डा है जिससे मुण्डा बुर्ज वाली विश्रान्ति कहलाती है। परन्तु इसके पीछे यथेष्ट इमारत बनी हुई है जिसमें, एक पाठशाला तथा श्री गगा जी का मन्दिर है। पूर्व वाली विश्रान्त और इसके बीच में रहुया लोगो की साधारण विश्रान्त तथा सकटूलाल जी पाडे द्वारा बनवायी हुई यज्ञशाला है। शाह जो विश्रान्ति का पूर्वी भाग बहुत ही सुन्दर है तथा अन्य सभी विश्रान्तो से इसकी बनावट भी भिन्न है। इस भाग में गगा जी के किनारे ४ गुम्बजाकार बुर्ज बने हुए है। उन गुम्बजो के मध्य में ऊंचे २ चौतरे हैं जिनके दोनो ओर से जाने आने की सीढ़ियां हैं। गुम्बज दुमंजिला है। नीचे की मंजिल पत्थर की है तथा ऊपर का भाग ईंट चूने ही से बनाया गया है। इन गुम्बजो में पौराणिक भीति चित्र बने हैं। इन गुम्बजो के पीछे भी यथेष्ठ भवन हैं।

इस विश्रान्त के आगे गढ़ नाम का स्थान है जहाँ पर हनुमान जी का मन्दिर है। वहां साधुओं के ठहरने के लिये भक्त जनों ने कुटियां बनवाई है। कुछ ही दूरी पर चम्पियाघाट नाम का स्थान है। यहां विश्रान्ते तो साधारण है परन्तु इस स्थान का आर्थिक महत्व बहुत है, क्योकि यहीं पर गगा जी पर नाव का पुल बाधा जाता है और स्थल मार्ग द्वारा बरेली शाहजहापुर तथा हरदोई आदि जिलो से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होजाते हैं।

वर्तमान समय में भारत की यह अमूल्य विश्रान्ते मूल्य हीन हो रही है। टोका घाट की विश्रान्तों का महत्व सन् १९२४ की बाढ़ ने बहुत कुछ समाप्त कर दिया था। गगा जी का दिन पर दिन उत्तर की ओर हटना अब अन्तिम शाहजी की विश्रान्त को भी महत्वहीन बना रहा है। जल के न रहने से विश्रान्ते निर्जन ही रहती हैं। हर साल लौटा जल के द्वारा लाया हुआ रेत भी उन विश्रान्तोको भरता जा रहा है। यहा गगा तट पर बहुत से त्यागी तथा तपस्वी सन्यासी आते रहे है और उन्होने अपने चतुर्मासा यहाँ पर बिताये। इस नगर में तथा आस पास कई प्रसिद्ध महात्मा हो गए है, जैसे स्वामी ब्रह्मानन्द स्वरूपानन्द, चित्रानन्द, शिवानन्द, कूकू बाबा आदि उड़िया बाबा की भी कृपा इस नगर पर यथेष्ट रही और स्वामी रामदेव जी, करपात्री जी, पीताम्बरदेव तथा रामतीर्थ जी के प्रवचन सुनने का सौभाग्य अब भी प्राप्त हो जाता है। इस समय प्रसिद्ध महात्माओ में त्यागी बाबा तथा मुरास वाले बाबा है। गृहस्थ महात्माओ में डा० चन्द्रिकाप्रसाद तथा देवीसहाय ककू का नाम उल्लेखनीय है।

गगा तट पर सबसे प्रसिद्ध शिव मन्दिर कालेश्वर बाबा का है। नगर की ओर आने पर नौबलपुर गांव में लक्ष्मणगढ़ नाम का स्थान है जहां पर लक्ष्मण जी की मूर्ति है। इससे कुछ ही दूरी पर लाला शालिगराम जी द्वारा बनवाया हुआ पत्थर का शिव मन्दिर है। यह मन्दिर नगर में कला की दृष्टि से सबसे सुन्दर है। इसमे दक्षिण भारत के मन्दिरों के गोपुरो के समान मन्दिर की समस्त बाहरी दीवारो पर हर स्थान में पौराणिक चित्र उत्कीर्ण किए गये हैं। इस मन्दिर से सम्बन्धित एक दूसरा छोटा मन्दिर है जिसमें नन्दी जी की एक विशाल मूर्ति है। यहीं नगर से आकर दधिकाँदों का मेला लगता है। इसके पास ही वह स्थान है जहां पर आज से लगभग ४५ वर्ष पहिले एक सस्कृत पाठशाला थी वह अब वृन्दावन में है।
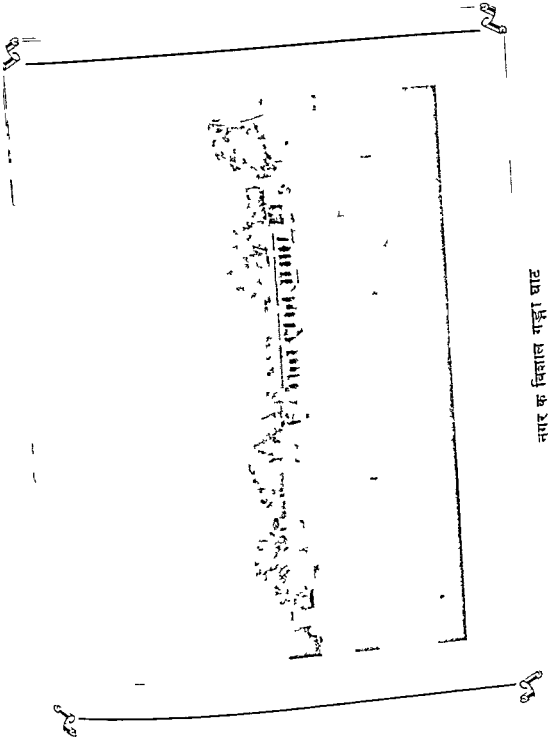
नगर क विशाल गङ्गा घाट

जनपदीय मेले

भारत वर्ष में मेलो की परम्परा प्राचीन है राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय दोनों प्रकार के मेले समय समय पर होते है। मेले अधिकतर धार्मिक पर्वो पर हुआ करते है कोई कोई मेला किसी विशेष अवसर पर किसी विशेष व्यक्ति द्वारा आरम्भ करने से लगता चला आरहा है।

फरूखाबाद जिला में कई प्रसिद्ध तथा साधारण मेले लगते है। गंगा तट पर होने के कारण कुछ स्थानों पर गंगा के पर्वों पर बड़े २ मेले लगते हैं। दूसरे स्थानो पर प्रसिद्ध मन्दिरों के पूजन पर पूजनार्थी लोगों के द्वारा मेला लग जाता है। एक आध स्थान पर सदार साहब की दरगाह है अत यहां पर भी मेले लगते हैं।

गंगा के पर्वों पर वैसे तो किनारे किनारे सभी जगह साधारण सा मेला लग जाता है। परन्तु ढाई घाट तथा श्रृंगीरामपुर के मेले बड़े होते हैं। इनमें जन समाज की आवश्यकताओं की प्रायः समस्त वस्तुओं का क्रय विक्रय होता है। ढाई घाट फरुखाबाद से उत्तर पश्चिम की ओर लगभग १३ मील पर है। गंगा तट पर होने के कारण जल मार्ग तो है ही परन्तु स्थल मार्ग द्वारा अधिकांश मनुष्य आते जाते है। फरूखाबाद नगर से स्थल मार्ग द्वारा जाने पर शम्शाबाद नाम का कस्बा पड़ता है यह कस्बा नवाबी समय में बना है परन्तु उसके पूर्व खोर सरदारो का प्रसिद्ध किला इस स्थानपर था, जो अल्तमश बादशाह ने खोर सरदारों पर आक्रमण करने कसमय ध्वस कर दिया था। अल्तमश द्वारा बनवाई हुई एक मस्जिद वर्तमान है। इस मेले में अधिकाश हरदोई, शाहजहापुर तथा पीलीभीत एटा, मैनपुरी के भी लोग आए होते है शाहजहांपुर से यहां तक एक पक्की सड़क बनाई है यहां गंगा दशहरा तथा कार्तिक पूर्णिमा के अतिरिक्त सम्पूर्ण माघ भर मेला रहता है। लेकिन माघ के मेले का धार्मिक महत्व के स्थान पर धार्मिक महत्व अधिक है। इस माह में यहां राम मण्डिया लगती है तथा दूर दूर से साधू सन्यासी आकर पूरे माह रहते हैं। साधू सन्यासियो के साथ साथ धर्मानुरागी गृहस्थ भी यथेष्ट सख्या में रहते हैं भजन पूजन तथा प्रवचनों का बाहुल्य रहता है।

श्रृंगीराम पुर फरूखाबाद से लगभग १६ मील पूर्व है। यहां भी गंगा तट पर होने के कारण, गंगा दशहरा तथा कार्तिक पूर्णिमा के विशाल मेले ढाई के ही समान लगते है। यहा पर श्रृंगी ऋषि का आश्रम तथा एक महन्त की गद्दी है। इस स्थान का धार्मिक महत्व विशेष है अतः दूर दूर से धर्मानुरागी व्यक्ति पर्वों पर स्नान कर जीवन को सफल बनाते है।

फरूखाबाद, कम्पिल, कन्नौज (राज घाट) आदि स्थानों पर भी भिन्न भिन्न पर्वों पर यथेष्ट भीड़ हो जाती है। नगर से दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग १४ मील की दूरी पर पुटरी नाम का गांव है। यहा सदानन्द जी तिवारी द्वारा बनवाया हुआ एक शिव मन्दिर है। चैत बदी तेरस को यहा पर एक बड़ा मेला लगता है। फरूखाबाद से लोग पैदल कावर द्वारा जल लाकर चढ़ाते है। यह मेला गोला गोकरन नाथ के ही समान होता है। उतना बड़ा तो नहीं होता है परन्तु विशेषतायें सब उसी प्रकार ही है। लकड़ी आदि की वस्तुयें भी बिकने के लिए आती है।

कायमगज क्षेत्र में भी कई मेले लगते हैं। कायमगज सातो का मेला प्रसिद्ध है यह क्वार कृष्ण पक्ष में होता है। कायमगज से लगभग ८ मील की दूरी पर कम्पिल नामक स्थान पर जैनियो का चैत में एक विशाल मेला लगता है। इसमें सिम्मलित होने के लिये दूर दूर नगरो के जैनी लोग आते हैं। यह अति प्राचीन स्थान है।

शम्शाबाद क्षेत्र में नखना, इमादपुर, रोशनाबाद स्थानो पर भी वर्ष के भिन्न समयों पर मेले लगते है। यह अधिकाश देवी के पूजन के मेले होते है अत. महिलाओं की सख्या अधिक रहती है। इस क्षेत्र के पास ताल का नगरा नाम का एक गांव है यहां एक प्रसिद्ध ताल है जिसका नाम चिन्तामणि ताल हैं। यहां पर भी मेला लगता है। कहा जाता है कि फरुखाबाद नगर के एक चिन्तामणि नाम के सरजन के कुष्ट रोग होगया था। वह उससे बहुत पीड़ित रहा करते थे। एक बार वह इतने दुखी हुये कि इसी तालाब में प्राणान्त करने का विचार किया। आपके शरीर का कुछ भाग जल में स्पर्श हो गया और उस स्थान का कुष्ट भी जाता रहा। आपने फिर इसमें भली भांति स्नान किया और कहीं भी कुष्ट नहीं रहा। आपने तालाब पक्का बनवा दिया और उसी समय से इस तालाब के साथ आप का नाम भी जोड़ा जाने लगा। यहां पर कुछ चिरौंजी के

कन्नौज अति प्राचीन स्थान है। यहा पर सात बहिनों के नाम से देवियो के प्राचीन मन्दिर है, इनके नाम यह है क्षेम करी, फूलमती, देवी सन्डोह, गोवर्धनी, शीतला, दुर्गा तथा भगवती भवानी या सिंह भवानी। इसमें से कुछ की मान्यता बहुत है और समय समय पर मेले लगते है। फूलमती देवी का मन्दिर नगर के पास ही है। यहा क्वार तथा चैत में अच्छा मेला लग जाता है। इसी स्थान से २ फर्लांग की दूरी पर सिहाह्ड़ सिंह भवानी का प्राचीन मन्दिर है। चैत से इस स्थान पर भी मेला लगता है। यहां पर पीपल का एक विशाल वृक्ष है। इसी से थोड़ी दूरी पर मकरन्द नगर में राम लक्ष्मण का प्राचीन मन्दिर है। मूतियों की प्राचीनता तथा भव्यता देखते हुए मन्दिर की दशा शोचनीय है। क्षमकरी देवी का मन्दिर जैचन्द्र के किले के पास है। यहीं पर गौरीशंकर महादेव का प्रसिद्ध तथा प्राचीन मन्दिर है। इससे मिले हुए लाला मनऊ लाल राम नारायण के बाग में खुदाई द्वारा प्राप्त गनेश जी तथा विष्णु भगवान की प्राचीन तथा कलापूर्ण मूर्तिया है इस क्षेत्र में खुदाई द्वारा प्राप्त सुन्दर मूर्तियों का सग्रह गांव २ में है जिनका ग्राम देवता के समान हर स्थान पर पूजन होता है।

नगर के मध्य राजा अजय पाल का मन्दिर है। यह काफी ऊँचे पर बना हुआ है अत. सम्पूर्ण कन्नौज यहां से दृष्टि गोचर होता है। पटकाना क्षेत्र में जैनियो के प्रसिद्ध मन्दिर है। यहा से थोड़ी दूर बनखण्डी महादेव की प्राचीन मूर्ति और इससे आगे चिन्तामणि नाम का स्थान है यह स्थान बहुत ही निर्जन है किसी समय यहा पर एक नदी बहती थी जिसके घाट बने हुए है यहां पर हर इतवार को मेला लगता है तथा केवल चरण चिन्हो का पूजन होता है। कन्नौज नगर से ६ मील पश्चिम में गोवर्धनी देवी का मन्दिर है। कन्नौज क्षेत्र में इसकी मान्यता बहुत है यहां वैसे तो हर मगल को मेला लगता है परन्तु मगलाचौथ चैत का मेला बहुत विशाल होता है।

कन्नौज का दधिकाधो का मेला आस पास के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। यह जन्माष्टमी के बाद तीन दिन निकलता है। पहिले दो रोज वेश्या नृत्य की प्रधानता होती है जो भगवान के सिहासन के आगे २ सड़को पर नृत्य करती हुई निकलती है। चौधरिया पुर महादेव तथा कालेश्वर के प्राचीन शिव मन्दिर भी इस ओर प्रसिद्ध है।

तिर्वा क्षेत्र का अन्नपूर्णा का मन्दिर तथा मेला बहुत प्रसिद्ध है। अन्नपूर्णा का मन्दिर नवीन है, मूर्ति बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर के पास ही एक तलाव है जिसके मध्य में शिव मन्दिर बना हुआ है। यहां पर अक्षय तृतिया को मेला लगता है। मेला तिर्वा के राजा द्वारा प्रारम्भ किया गया है। मेले में जानवरो के अतिरिक्त दूर दूर से तरह तरह की दूकानें आती है। मेला बहुत बडा होता है और लगभग १५ दिन रहता है।

और प्रेरणावान है। अतएव इसके प्राचीनतम स्थानों को वर्तमान से तुलना कर विशुद्ध खोज करना चाहिये फिर प्राचीन और अर्वाचीन तथ्यों के आधार पर एक प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत होना चाहिए। अस्तु नीचे नगरो आदि का अतिरिक्त वर्णन दिया जा रहा है।

पञ्चाल

पञ्चाल की सीमा दिल्ली के उत्तर पश्चिम हिमालय की तराई से चम्बल (चर्मण्वती) थी। गगा जी द्वारा इसके उत्तर और दक्षिण भाग हुये थे। दक्षिण की राजधानी काम्पील और माकन्दी थीं किसी २ ने दोनो *को एक ही माना है। बुद्धकाल में पञ्चाल की राजधानी* कन्नौज भी थी। पुराणों में भर्म्याश्व राजा के मुद्गल यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और सजय नामक पाच पुत्र थे। चूंकि यह पांचो राजपुत्र इस राज्य के सरक्षण में अल, अर्थात समर्थ थे, अत इसका नामकरण पञ्चाल हुआ। पचाल से पूर्व नाम क्रिवि था। दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी कहीं कहीं काम्पिल्य और आसदी (कन्नौज) मानी गई है। अहिच्छत्रा का वर्तमान नाम काशीपुर कहा जाता है। उत्तर पचाल का नाम अहिच्छत्र विषय भी था। ऋगवेद में पञ्चाल शब्द नहीं आया है। शतपथ ब्राह्मण में क्रैव्य पांचाल राजा के अश्वमेध का परिवक्रा नगर में वर्णन है। *यह नगर उन्नाव जिले में परियर नाम से गगा* तट पर स्थित है। ग्राम रूप में ब्रह्मावर्त्त विठूर के ठीक सामने दूसरी ओर है। अश्वमेध करने वाले राजा का नाम सात्रासह शोण था। उस अश्व का रक्षण ६०३३ कवच-धारी तीक्ष्ण क्षत्रिय करते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐन्द्र महाभिषेक की प्रशसा में पाचाल दुर्मुख के अभिषक का वृह दुक्ष नामक ऋषि द्वारा वर्णन है। मनु ने पचाल राज प्रवाहण जैवलि को ब्रह्मर्षिदेश का होना कह कर सम्मानित किया है। इस देश में पैदा हुए ब्राह्मणो से ससार को चरित्र सीखना चाहिए ऐसा उनका उपदेश है।

पञ्चाल के तीन नगरो काम्पिल, कौशाम्बी परिचक्रा का नाम आया है। महीधर के अनुसार काम्पील का अर्थ नगर होना है। इसी से काम्पिल्य बनता है। कौशाम्बी वास्तव में वत्स देश की राजधानी थी। वेबर ने एक चक्रा को काम्पिल के निकट माना है। किन्तु अब परियर के नाम से बोध हुआ है।

× × ×

'वेद धरातल'

पाञ्चाल के पाच स्थानो का यकुब्ज, काम्पिल, सकिसा आलविका तथा आलभिका का वर्णन छठीशती के *बौद्ध ग्रन्थों में आता है। पीछे के दो नामों की स्थिति का* अब पता नहीं है। आलविका का यक्ष पचाल चड के नाम से विख्यात था। एक बार उसने अपने क्रोध का शिकार तथागत को बनाना चाहा किन्तु उसे परास्त होना पड़ा।

× × ×

छठी शती के मध्य में अहिच्छत्र मे एक राजा था किन्तु वह कान्यकुब्ज प्रदेश के अधीन था। नगर मे पहले जैसा वैभव नहीं था। पाशुपत और बौद्ध दोनों धर्मो के मानने वाले थे। शकक्षत्रप फर्गुल का बनवाया एक बिहार वर्तमान था। इसका निर्माण लाल पत्थर से हुआ था। इस की पुष्टि रामनगर मे प्राप्त एक यक्षमूर्ति से होती है जिस पर ब्राह्मीमिश्रित सस्कृत भाषा मे निम्न अभिलेख है।

भिक्षुस्य धर्मघोषस्य फरगुल बिहार अहिच्छत्राय अर्थात फरगुल विहार से धर्म घोस भिक्षुका दान। उक्त यक्ष मूर्ति लखनऊ सग्रहालय में रक्षित है।

× × ×

फर्रुखाबाद:— १७१४ में मुहम्मद खां बगश द्वारा बसाया गया था। मुहम्मदखा मऊ रशीदाबाद का निवासी था। मऊ रशीदाबाद औरगजेब के समय में शम्शाबाद के नवाब रशीदखां द्वारा बसाया गया था। मुहम्मदखां को पीढ़ी में अन्तिम नबें नवाब तफज्जुलहुसेनखां हुए जो १९५८ में अग्रेजों द्वारा मक्के भेज दिए गए थे। इस प्रकार लगभग १४५ वर्ष नवाब शासन रहा।

जहां वत्तमान टाउनहाल है वहां राजा द्रुपद के समय का एक गढ़ था और उन्ही के वश के किसी मौर्य वमटेले ठाकुर के आधिपत्य में था। निकटवर्ती ग्राम भीष्मपुर तथा देवस्थान थे। सभव है यह दोनों ग्राम भी किसी महान नगर के नामावशेष हो। यह तो निश्चित ही है कि द्रुपद के समय में यह स्थल उत्तर की चरम सीमा

नाथ महादेव की स्थापना कीगई थी। पाण्डववाला याग अब भी प्रसिद्ध है। यहीं पर शकर जी का मन्दिर है। जिनका विशेष महत्व माना जाता है। इन सबके अध्ययन के पश्चात सहज हीं इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है कि यह नगर किन्हीं प्राचीन ध्वसावशेषो पर स्थित है। लोह गदा खण्ड के खुदाई में प्राप्त होने से यह निश्चित है कि यहा पुरानी नगरी के अवशेष हैं और किसी काल में भीष्मपुर ही समृद्ध नगर रहा होगा।

कम्पिलः- फरुखाबाद से २५—२६ मील पश्चिम मे है। इसका प्राचीनकालीन विस्तार रुदायन और फरुखाबाद नगर तक माना जाता है। रुदायन समीप ही एक ग्राम है। यह स्थान बड़ा पुण्य क्षेत्र माना जाता है। जिस स्थान पर स्वयवर हुआ था वह सर दीपक तालाब कहलाता है। रुदायन मे आश्वनि मास की सोम्वती को पिण्डदान करने से द्वितीय गया का फल प्राप्त होता है। पास ही एक अन्य ग्राम जिजोटा है जिसका शुद्ध नाम यज्ञ-हाट रहा होगा। यज्ञ की वेदिका के चिन्ह ईटों से ज्ञात होते हैं। खोदने पर यज्ञ भस्म प्राप्त होती है। मानिकपुर ग्राम के समीप एक चक्रा नगरी का अस्तित्व माना जाता है जहा एक कुम्हार के घर पाडव अज्ञात वास के समय रहे थे। यहां के कुम्हार अपनी वंशोत्पत्ति द्वापर से मानते है ध्योपुरा ग्राम को धौम्य पुरोहित का निवास बताया जाता है। कपिल ऋषि ? महमूद गजनवी के आक्रमण के समय विद्यमान थे। उसी समय वह समाधिस्थ होगये। नवीन इतिहास में कम्पिल का वर्णन तेरहवी शती से मिलता है। उस समय इसकी दशा अत्यन्त गिर गई थी। 'चोरों का अड्डा' सज्ञा इसे दीगई थी। गयासुद्दीन बलबन ने इनको दबाया था। १४१४ मे राठौरो राज्य का पुनरोदय हुआ। फिर चौहानों ने अपने अधिकार में कर लिया। कान्यकुब्ज के राजा भी इसके अधिकारी रहे थे। १८ वी शती में फरुखाबाद नबाबो मे आया फिर अंग्रेजों के अधिकार में।

सकिसा — मोटा स्टेशन से लगभग तीन मील काली नदी के किनारे बसा है। रामायण काल में सांकाश्यपुरी नाम से विख्यात था। बाल्मीकि रामायण के अनुसार सुधन्वा यहाँ का राजा था। सीता प्राप्ति के लिए आक्रमण करने पर राजा जनक ने युद्ध कर इसे मारडाला और यहाँ का राज्य अपने भाई कुशध्वज को दिया था। क्रमानुसार यह भूमि शाक्यवशी क्षत्रियों के अधिकार में आई। भिक्षुणी उत्पला इसी वश की सम्राज्ञी थी। इस स्थान पर बुद्ध का आगमन इस तथ्य की पुष्टि करता है। राणा हम्मीर सिंह के पूर्वज भी इसके स्वामी रहे थे। पूर्वजो ने यह भूमि ब्राह्मणों को दान कर दी थीं। इस लिए यहां ब्राह्मणो का निवास सहस्त्रों की सख्या में हो गया। राणा हम्मीर देखने के लिए यहां आये थे। उन्होंने सकिसा का जलपान न करके एक अन्य ग्राम बसाया था।

कहाजाता है कि हमीरखेडा उसी स्मृति का सरक्षक है मुसलमानी आक्रमण के समय हजारों क्षत्री यह स्थान छोडकर राजपूताना आदि में चले गए। तब से यह उजाड हो गया। एक दूसरी जनश्रुति के अनुसार यह नगर १८०० वर्ष पूर्व उजाड़ हो गया था। छठी शती में यह एक कायस्थ द्वारा ब्राह्मणो को दान कर दिया गया था। यह निश्चित है कि स्थान किसी समय उजाड हुआ और दान कर दिया गया। किसी महामारी आदि के कारण भी ऐसा हो सकता है। नदी की ओर कुंआ खोदने पर लकड़ी का तख्ता निकलता है। काटने पर ही पानी प्राप्त होता है। इसका कारण सम्भवत यह होगा कि किसी समय नदी के कारण दल दल हो गया होगा। जल तक माग बनाने के लिए तख्ते बिछाए गए हो।

सकिसा का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ है। २-३ शती ईसापूर्व में भी यह खूब समृद्ध था। मथुरा के क्षत्रप राजाओं के इन्हीं शतियो के सिक्के सकिसा में मिले हैं। इससे यह भी अनुमान किया जाता है कि यह प्रदेश उनके अधिकार में भी चला गया हो। वीरसेन नाम के एक राजा के सिक्के जनखत आदि में पाए गए हैं। इससे भी ऐसा ही निष्कर्ष निकाला जाता है। कन्नौज के पुनरोदय से पूर्व सकिसा अधिक महत्व पूर्ण था। सम्राट अशोक सकिसा में पधारे थे। उन्होंने उन सीढ़ियों को खुदवा कर देखा था जिन के द्वारा बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। खोदते खोदते पीत स्त्रोत (भूमि के

जो अब भी उलटा प्रवेश द्वार पर लगा हुआ है।

मकदूम जहानियाँ, शलापीर, हाजीशरीफ, तुराब अली के रौजे, ईदगाह मुसलमानी निर्माण हैं। अजयपाल की मूर्ति, नगर कोट, कालेश्वरनाथ, लक्ष्मीनारायण, राम लक्ष्मण, वनखण्डी नाथ, चौकुण्ठेश्वरनाथ, वाराह अवतार दर्शनीय प्राचीन चित्र हैं। बहुत सी मूर्तियाँ किले की खुदाई पर मिलती है। सरकारी खुदाई से अन्य विवरण प्राप्त हो सकते हैं। १८५७ में गदर के समय किले के खजांची निहाल चन्द्र भा थे। उन्होंने सारा कोष हटालेजाना चाहा किन्तु अंग्रेजो द्वारा घिरने पर गङ्गा में डुबा दिया। वह साधु वेश में पकडेजाकर बाद को छोड़ दिए गए थे। दुमेदान नामक सरदार ने बडी वीरता से युद्ध किया था।

शम्शाबाद—प्राचीन नाम खोर है जिसे राजा जयसिंह देव ने बसाया था। खेडा अब भी विद्यमान है। गगा जो यहां से सटकर बहती थी शम्शुद्दीन अल्तमश के समय राजा धरमसेन यहां के राजा थे। बडी कठिनता से अल्तमश ने अजीमुल्ला मक्की फकीर के कहे जाने पर पाँव आगे रख कर युद्ध जीता था। यह घटना तेरहवीं शती के पूवार्ध की है। इतिहासकारो में मतभेद है। एक मत से वह जौनपुर के बादशाह से पराजित हुआ था और दूसरे मत से नासिरुद्दीन मुहम्मद तुगलक के मन्त्री द्वारा खोर का राज्य विस्तार कन्नौज से आगरा तक का प्रदेश माना जाता है।

१२८८ के लगभग शमसुद्दीन ने जलमार्ग द्वारा आकर चढ़ाई की थी उसी ने शम्शाबाद बसाया था। जहा आज मस्जिद है उसी स्थान पर पुराना राज निवास होगा। कहा जाता है कि एक व्यक्ति को एक बार खोदने पर बहा चाँदी के बर्तन प्राप्त हुए थे। शम्शाबाद को खोर के पाण्डो का उद्गम स्थान माना जाता है। इन राजाओं का सम्बन्ध नेपाल के राजवंश से भी जोडा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यवन काल में इन प्रदेशों के शासक इधर उधर भाग कर नेपाल में जा पहुचे हों। परगना 'पहाडा' फरुखाबाद में किस प्रकार बना यह भी एक रहस्य है। हो सकता है पहाड और पहाड़ा में कोई साम्य हो। वर्तमान शम्शाबाद कस्बा १५८५ में मिर्जा ताहिर द्वारा बसाया गया था। खोर के अंतिम राजा करन के पौत्र उदयचन्द्र राव की पदवी पाकर मुहमदाबाद में बसे। वहीं कालीनदी के उत्तर के समस्त राठौरों के पूर्वज माने जाते हैं। उन्ही के पौत्र राव कृष्णराय ने लिमसेपुर में किला बनवाया और २६ ग्रामों में उनके 'जन' का विस्तार हुआ। फरुखाबाद की स्थापना के समय सिरोली में गौर राजा था जिसने अपने पुत्र अकबर शाह को बमटेलो के विरुद्ध मुहम्मद खां की सहायतार्थ भेजा था। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि सम्राट जयचन्द्र के पुत्र प्रहस्त खोर में बसे। बीसवीं पीढ़ी में राव उदयचन्द्र मौधा फिर लिमसेपुर में बसे वहाँ के राव पृथ्वीसिंह ने अंग्रेजो की सहायता के पुरस्कार में कई ग्राम प्राप्त किए थे।

छिबरामऊः—छिबरामऊ यात्री और व्यापारियो के विश्रामस्थल का कार्य बहुत पहले से कर रहा है। कहा जाता है उसे पृथ्वीराज के प्रपौत्रप्रतापगढ़ (एटा) के राजा सुमेर शाह ने चौदहवीं शती में बसाया था एक बकरी द्वारा शेर को हराते देख कर इसका नामकरण छिरियामऊ किया गया। कुछ का कथन है कि केवल छप्पर आदि की झोपडी होने के कारण इसका नाम छपरामऊ रखा गया था अकबर के समय से यह स्थान प्रसिद्ध रहा और व्यापारिक केन्द्र रहा।

तिर्वा—पूर्वनाम तेराघाटी था। शाह आलम द्वारा यहां क शासक को राजा की पदवी मिली। राजा जगतसिंह एक बड़े अच्छे शासक हो गए। अन्नपूर्णा देवी का मन्दिर यशवन्तसिंह जी का आरम्भ करवाया हुआ था। १८६१५ में उनका देहान्त हो गया था। यशवन्तसिंह जी एक उत्तम कवि भी थे।

शृंगीरामपुर—

इस स्थान का धार्मिक महत्व अधिक है। अगस्त ऋषि के पुत्र विभाण्डक और उनके पुत्र शृ गी ऋषि थे शृगी को तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी बनाने के उद्देश्य से विभाडक ने महिष के श्रंग शृ गी को धारण करवाए थे दशरथ यज्ञ इन्हीं शृ गी ऋषि ने करवाया था। जिसक फल स्वरूप रामजन्म हुआ था। शृ गीरामपुर वही स्थान है। जहा तपस्या पश्चात इन्होने अपने शृ गो का परित्याग किया था। तभी से यह स्थान प्रसिद्ध रहा है। कान्यकुब्ज कम्पिल, संकिसा, सौरिख व शृ गीरामपुर पाच स्थान जिले में तीर्थस्थल के महत्व के हैं।

जिले की जनसख्या का जीविका के आधार पर वर्गीकरण

कुल जनसख्या	१० लाख ६२ हजार ६ सौ ४१ में से
१ अपनी भूमि में कृषक और उनके आश्रित	६ लाख ६६ हजार १ सौ ३१
२ पराई	६४ हजार ५ सौ ५७
३ कृषक मजदूर	४४ हजार५ सौ ५७
४ कृषि के केवल लागान पर	२० हजार ६ सौ २७
५ कृषि के अतिरिक्त अन्य उत्पादन कर्त्ता और उनके आश्रित	८६ हजार ८ सौ ६६
६ वाणिज्य के आश्रित	५८ हजार ८ सौ ६०
७ परिवहन के आश्रित	१२ हजार ७ सौ ८४
८ अन्य सेवाओ और विविध साधनों के आश्रित	१ लाख ४ हजार ६ सौ २६

फरुखाबाद नगर पालिका और फतेहगढ़ छावनी की जीविकानुसार जनसख्या

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में १६ वाँ स्थान

कुल जनसख्या	८० हजार ३ सौ ३२
१ कृषक कृषक मजदूर और उनके आश्रित	४ हजार २ सौं २८
२ भूस्वामी और उनके आश्रित (जो कृषि नहीं करते)	१ हजार ८
३ अकृषीय उत्पादन कर्त्ता तथा उनके आश्रित	२४ हजार १ सौ १७
४ वाणिज्य कर्त्ता	१८ हजार २ सौ ११
५ परिवहन कर्त्ता	४ हजार ५ सो १८
६ अन्य सेवाओ और विविध साधनों के	२८ हजार २ सौं २०

जिले के प्रति मजरे के पीछे क्षेत्र फल और जन सख्या

१ गावो की सख्या	१ हजार ६ सौ ७
२ मजरों	४ हजार ४ सो ६७
३ प्रति मजरे से सलग्न क्षेत्रफल	३६ वर्गमील
४ की जनसख्या	२ सौ ४५
५ जिले की जनसख्या	१० लाख ६२ हजार ६ सौ ४१

जिले में कृषि विस्तार

१ कुल कृषि के योग्य भूमि	६ लाख ६० हजार ७ सौ ५१ एकड
२ सीचीं हुई भूमि (नहरों द्वारा)	१ लाख ६५ हजार ३ सौ ५१ एकड
३ अनेक बार सींची हुई भूमि	२७ हजार ५ सौ ५३ एकड
४ सम्पूर्ण क्षेत्रफल के आधार पर प्रति व्यक्ति भूमि	'६७१ एकड
५ कृषि के योग्य कुल भूमि में प्रति व्यक्ति के लिये	८१५ एकड
६ कृषि की जाने वाली भूमि प्रति व्यक्ति	६०५ एकड

जिले में धातु रसायनिक पदार्थों के कार्य में सलग्न स्वावलम्बी
प्रति १० हजार व्यक्तियों में से

१ धातुओं की वस्तुयें निर्माण में सलग्न व्यक्ति	७ हजार ४ सौ १६
२ लोहा और ईस्पात के	५ सौ ४०
३ अलौह धातु निर्माण	५५
४ परिवहन सज्जा	१ हजार ४ सौ ३०
५ बिजली की मशीन यन्त्रादिक, उपकरण और पूर्ति में सलग्न व्यक्ति	७४
६ (बिजली के अतिरिक्त) मशीन और इजीनियरिंग में सलग्न व्यक्ति	१ सौ ५७
७ मूल औद्योगिक रसायन पदार्थ खाद पावर अल्कोहल में	६७
८ औषधिक निर्माण में	५
९ अन्य रासायनिक पदार्थों के निर्माण में	२ सौ २६

जिले में वाणिज्य में सलग्न स्वावलम्बी
प्रति १० हजार व्यक्तियो में से

१ फुटकर व्यापारों में सलग्न	५ हजार ४ सौ २१
२ खाद्य पदार्थ और मादक द्रव्यो के व्यापार में सलग्न व्यक्ति	२ हजार १ सौ ७४
३ ईंधन पेट्रोल इत्यादि के	१ सौ ९८
४ कपड़े और चमड़े की वस्तुओ के फुटकर व्यापार में	१ हजार ५ सौ २५
५ खाद्य पदार्थों के थोक व्यापार में	५ सौ ७८
६ अन्य अन्य पदार्थों के थोक	१५
७ बीमा के काम	१
८ महाजनी और लेन देन के	३ सौ ८८

जिले में अन्य सेवा कार्यों में सलग्न स्वावलम्बी
प्रति १० हजार व्यक्तियो में से

१ फुटकर सेवाओं में सलग्न व्यक्ति	४ हजार २ सौ ४४
२ घरेलू सेवा में	१ हजार ६ सौ २३
३ नाई और शृंगार की दुकानों में	१ हजार ३ सौ ५३
४ धुलाई कार्य में	१ हजार ५ सौ १५
५ भोजनालयो और होटलो में	३१
६ मनोरजन सेवाओं में	६ सौ २०
७ विधि सबन्धी तथा व्यावसायिक सेवा में	२ सौ १९
८ धार्मिक, लोक कल्याणय सेवा में	३ सौ ५५

जिले में सामान्य पुरुष और स्त्रियों में से
प्रति १००० व्यक्तियों में से

१	अविवाहित	पुरुष	५ सौ २३
२	"	स्त्रियां	३ सौ ६३
३	१ वर्ष और १४ वर्ष के बीच विवाहित	पुरुष	१३
४	" " "	स्त्रियां	५२
५	१५ ३४ "	पुरुष	४ सौ ६०
६	" " "	स्त्रियां	६ सौ १६
७	३५ ५४ "	पुरुष	३ सौ ६२
८	" " "	स्त्रियां	३ सौ २
९	५५ तथा ऊपर के "	पुरुष	१ सौ ५
१०	" " "	स्त्रियां	३०

निवेदन

महिमामय भारत भूमि का कण कण जाने कितनी गौरव गाथाओं को अपने में समेटे है, जिन के विस्मरण से हम आत्म विस्मृत होते हुए एक दिन अपने अस्तित्व को भी खो बैठेंगे। आज उन सब का साक्षात्कार करने के लिए अतिकाल हो चुका है। अस्तु हमारे इस प्यास का लक्ष्य उसी भूमि के एक अंश, पञ्चाल-प्रदेश की गौरव गरिमा का एक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करना था, किन्तु अपने सीमित साधनों तथा समयाभाव के कारण उस तक हम निश्चय ही नहीं पहुंच सके। इस कार्य में अधिकतर कठिनाई तो इस दिशा में समाज की उदासीन वृत्ति के कारण ही हुई, फिर भी हम एक ऐसी वस्तु अवश्य पाठकों को अर्पित कर सकें हैं जिससे कि हमारा उपरोक्त लक्ष्य निकटतर एवं स्पष्टतर होगया है, इस कृति को आधार बनाकर हम आगे के प्रयास में अवश्य इसे प्राप्त करेंगे।

जिन बन्धुओं ने इस कार्य में तन मन अथवा धन से सहायता की है उनके प्रति आभार प्रदर्शन के साथ साथ हम सर्व श्री चन्द्रशेखर जी शुक्ला, लालमणि जी गुप्त, रामकृष्ण जी सारस्वत, केशवरामजी टण्डन, तेजनारायण जी, श्री प्रकाश जी गुप्त तथा नवाब अनवर बख्त के प्रति विशेष आभार प्रदर्शित करते हैं कारण कि यह कार्य उपरोक्त बन्धुओं के उत्साह पूर्ण सहयोग के बिना कदाचित इतनी सरलता से पूर्ण न हो पाता। उन सभी विद्वानों के भी हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने अमूल्य लेखों द्वारा ग्रंथ के कलेवर को सौष्ठव प्रदान किया है तथा उन विद्वानों से क्षमायाचना करते हैं जिनकी रचनाओं को स्थान देने में हम असमर्थ रहे श्री राधेश्याम जी सक्सेना उपनाम 'श्याम जी' सक्सेना कलाकार को आवरण पृष्ठ की सज्जा के लिए एवं श्री लालमणि प्रेस, के मालिकों तथा कर्मचारियों को मुद्रण कार्य में सहानुभूतिपूर्ण सहयोग के लिए भी हमारा धन्यवाद है।

मा है जिसमें अहिच्छत्रा के एक शासक वंश की चर्चा है। उसमें एक का नाम वगपाल दिया हुआ है। अनुमान किया जाता है, यह वगपाल वही है जिसके सिक्के अहिच्छत्रा से प्राप्त होते है, उस शिला लेख के अनुसार उसकी वंश परम्परा इस प्रकार है।

राजा सोनकायन
:
वगपाल
:
भागवत
:
असाढ़सेन

वगपाल की पत्नी के पितामह कौशाम्बी के शासक बृहस्पतिमित्र थे। इसके आधार पर अनुमान किया जाता है कि उसका समय लगभग १०० ई० पू० के होगा। साथ ही यह भी धारणा होती है कि वगपाल की अपेक्षा उसके पिता ने दमगुप्त को अपदस्थ किया होगा। इससे यह भी जान पड़ता है कि इस वंश में नामान्त की एक रुपता की कोई परम्परा नहीं थी, क्योंकि उपर्युक्त सूची में दो नाम पालान्त नहीं है। इनके अतिरिक्त वसुसेन भी सम्भवत इसी वंश का शासक रहा होगा। इस अनुमान का आधार उसका केवल सेन नामान्त है। इस प्रकार जान पड़ता है कि यह वंश और उसके पूर्व वर्ती गुप्त शासक सब मिला कर लगभग १५० वर्षों तक अहिच्छत्रा पर शासन करते रहे। ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में उन्हे मित्र नामक एक अन्य वंश ने अपदस्थ कर दिया।

मित्र वंश के शासक ५० ई०पू०से २५०ई०तक

इन शासको के बाद राज्य करने वाले १४ शासको का पता उनके सिक्को से लगता है ये सभी शासक मित्र वंशी थे। उनके नाम इस प्रकार है। सूर्य मित्र, विष्णु-मित्र,ध्रुव मित्र, इन्द्र मित्र, अग्नि मित्र भानुमित्र,भूमिमित्र जयमित्र, फाल्गुनिमित्र बृहस्पतिमित्र, अगुमित्र आयुमित्र, वरुण मित्र और प्रजापतिमित्र, य शासक किस क्रम से शासनारूढ़ हुए, इसकी जानकारी का हमारे पास अब तक कोई साधन नहीं है इनके अधिकांश सिक्के टीलो पर बिखरे हुए प्राप्त हुए है वैज्ञानिक ढ़ग से उत्खनित क्षेत्र के स्तरीकरण पद्धति से सिक्कों का अभी तक सामंजस्य नहीं किया जा सकता है किन्तु उनके शासन के अन्त के सम्बन्ध में बहुत कुछ निश्चित रूप से कहा जा सका है इन शासको में से प्रथम दस शासकों के सिक्कों की एक निधि रामनगर अहिच्छत्रा स्थित शिव मन्दिर का उत्खनन करते समय फयुरर को प्राप्त हुई थी इस मन्दिर का निर्माण कुशाणकालीन एक कुब्जपृष्ट मन्दिर के ध्वसा वशेष पर हुआ था और उसका प्रारम्भिक समय गुप्तकाल आंका जा सकता है इसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि सिक्को की निधि उक्त मन्दिर के निर्माण काल से बहुत दूर न होगी। सन् १६४०-४४ में पुरातत्व विभाग की ओर से वहां जो खुदाई हुई थी, उसमें अच्युत के सिक्के, जिसकी चर्चा आगे की जावेगी, तृतीय स्तर के प्रारम्भ में प्राप्त हुए थे उसका समय ३५० ई० अथवा उससे एक दशक पूर्व हो सकता है उसे गुप्त वंश के समुद्र गुप्त ने पराजित किया था यह प्रयाग स्थित स्तम्भ प्रशस्ति से ज्ञात होता है। अच्युत से पूर्व सम्भव है उसके वंश के एक आध शासक और हुए हों इन सबको ध्यान में रखते हुए मित्र शासकों का अन्त ३०० ई० के आस पास आंका जा सकता है।

इन मित्र शासकों के साथ २ भद्रघोष आदि एक आध शासको के सिक्के और मिलते हु। उनके वंश और समय के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। पर वे इन्हीं मित्र राजाओ के साथ ही आगे पीछे वहां शासन करते रहे होगें। जो हो इस काल में ये मित्र शासक स्वतन्त्र रूप से अहिच्छत्रा में शासन करते रहे। यद्यपि कुशानो ने मथुरा पर अधिकार कर रखा था पर इस बातकाकोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे कहा जासक कि अहिच्छत्रा क शासक उनके आधीन थे। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि वे स्वतन्त्र शासक के रूप में गुप्त साम्राज्य के उदय तक एक छत्र राज्य करते रहे। हो सकता है कि गुप्तो से पूर्व, इन्हें नागो द्वारा कुछ क्षति उठानी पड़ी हो, जिन्होंने कुशाणों को भागाकर मथुरा पर अधिकार कर लिया था उन्होंने इन्हें भी अपदस्थ कर दिया हो इस बात के सकेत उपलब्ध होते है।

मित्र शासको की इस सूची मे सूर्यमित्र,ध्रुवमित्र और

उत्तर भारत में प्रमुखता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने पंचाल पर कब अधिकार किया य कहा नहीं जासकता पर सम्भवत यह घटना चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में हुई होगी।

अच्युत से पूर्व कौन कौन शासक हुए ज्ञात नहीं है किन्तु उसके सिक्के क समान ही कुछ एसे सिक्के मिले है जिन पर प्रि अकित है। हो सकता है यह उसके निकट पूर्ववर्ती का सिक्का हो।

इस प्रकार लगभग ५ सौ वर्षों तक स्वतन्त्र राज्य का पद लाभ कर पुन कुछ काल के लिए वह एक बड़े साम्राज्य में विलीन होगया और अश साम्राज्य गुप्तों का।

काम्पिल्य

(पाञ्चाल प्रदेश की शिक्षा और सस्कृति का एक भग्नावशेष)

'कमलेश' मिश्र द्वारा सकलित

— ∞ —

उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जिले म कायमगज नगर के समीप गगा के तट पर एक विस्तृत टीला है। टीले पर एक गाव भी बसा हुआ है। इस गांव का नाम कम्बल है। आज बहुत थोड़े से ही व्यक्तियों को ज्ञात होगा कि यह छोटा सा गाव प्राचीन काल की काम्पिल्य नगरी है, जो अपने वैभव क युग में सम्भवत भारत के महानतम विश्वविद्यालय क नगर क नाम से विख्यात थी।

उत्तर प्रदेश क ननीताल जिले क दक्षिणी भाग और मुरादाबाद पीलीभीत ,बरेली, बदायू शाहजहापुर आदि का पूर्वीय भाग तथा इटावा, मैनपुरी, फरुखाबाद, एव एटा का दक्षिणी भाग प्राचीन काल में एक राज्य अथवा प्रदेश था। यह प्रदेश पाचाल-देश के नाम से विख्यात था और महाभारत के पूव तक महाराज द्रुपद, इसके सम्राट् थे। राजगुरु द्रोणाचार्य एव महाराज द्रुपद सहपाठी थे। द्रोणाचाय एक निर्धन ब्राह्मण के पुत्र थे। एक समय द्रुपद ने द्रोणाचाय से अहकारपूर्ण भाव से कहा कि तू गरीब ब्राह्मण का पुत्र होकर मुझ एसे राजकुमार से मित्रता के भाव रखने का प्रयास क्यो किया करता है। द्रोणाचाय को तीर लग गया और वे विक्षिप्त हो उठे। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात द्रोणाचाय, कुरु देश जाकर कौरवों एव पाण्डवों के गुरु हो गये। कौरव एव पाण्डवा को उस काल की शिक्षा के अनुसार द्रोणाचार्य ने युद्ध शास्त्रों म सवथा पारगत कर दिया। शिक्षा समाप्ति क पश्चात जब गुरु दक्षिणा का प्रश्न उपस्थित हुआ तो राजगुरु द्रोणाचाय न अपन शिष्यो से पांचाल नरेश द्रुपद को बन्दी बनाकर अपने समक्ष उपस्थित करने को कहा। यही उनकी गुरु दक्षिणा थी। उस युग के अनुसार गुरु दक्षिणा दना शिष्यों का परम कर्तव्य था। कौरवों और पाण्डवों ने अपने गुरु द्रोणाचाय की मनोवाञ्छित दक्षिणा देन के लिय प्रयास प्रारम्भ कर दिये।

यजुर्वेद, २३।१८ ।

'काम्पील वासनीम् काम्पील नगरे हि सुभगा —

सुरूपा विदग्धा स्त्रियो भवन्ति ।'

उव्वट ।

उक्त कथनो से प्रतीत होता है कि काम्पिल्य का विद्या-वैभव पराकाष्ठा की चरम सीमा पर था जब काम्पिल्य की नारियां भी विद्या अध्ययन करती थीं तो देश के अन्य भागो में भी नारी शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध रहा होगा ।

पौराणिक आख्यायिकाओं के अनुसार एक बार ावती पार्वती अपने पति प्रलयकर शंकर से रुष्ट होकर ्म्पिल्य नगरी में रहने लगी थी। इसी कारण उन्हें ाम्पिल्यवासिनी देवी भी कहा जाता है। यह आख्यायिका ाम्पिल्य नगरी की प्राचीनता की द्योतक है ।

काम्पिल्य के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में एक न्य आख्यायिका है। इस आख्यायिका के अनुसार प्राचीन ाल में एक राजा ऋभ्याश्वं हुए थे। उनके एक पुत्र था ो बहुत ही कम वयस में ही अपने पराक्रम एव शौर्य के ारण अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया। इसका नाम कम्पिल ा और कालान्तर में इसके नाम और पराक्रम को अमर खने के लिये काम्पिल्य नगर बसाया गया। सम्राट् हो ाने के पश्चात् कम्पिल के पांच पुत्र हुए। अपने पिता कम्पिल की भांति ये राजकुमार भी बल एव शौर्य में अद्वितीय थे। इन्होंने अपने पराक्रम से अनेक प्रदेशों को जीत कर अपन साम्राज्य की सीमा बढ़ायी। अनेक साम्राज्यो को अपने साम्राज्य में मिला कर इन्होंने एक शक्ति शाली विस्तृत साम्राज्य की रचना की। इन पांच राजकुमारों के संस्मरण में इस देश को "पांचाल देश" की सज्ञा दीगई। इस प्रदेश में पांच उल्लेखनीय सरितायें भी हैं सम्भवत इन पांचों नदियों का भी इस प्रदेश क नामकरण से कुछ सम्बन्ध हो। सिद्धान्त कौमुदी में पांचाल देश को अत्यन्त ही सम्पन्न देश लिखा गया है। वहां बहुत ही कम श्रम से प्रचुर मात्रा में अन्न पैदा कर लिया जाता था। क्योंकि जल की कमी न होने से सम्पूर्ण प्रदेश हरा भरा था। इन पांच नदियों के नाम क्रमश गंगा, कालिन्दी, (काली नदी, यमुना नदी), यमुना चर्मण्वती (चम्बल) और राम गंगा है।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार "पांचाल" नाम का सम्बन्ध "पंजाब" से है यह केवल भ्रम ही है। पंजाब शब्द की उत्पत्ति तो मुसलमानी राज्य काल में हुई। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास में पंजाब शब्द कहीं भी नहीं मिलता। उस समय आजकल का पंजाब दो भागो में विभक्त था। पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) बिलोचिस्तान, कन्धार तथा अफगानिस्तान मिल कर एक प्रदेश था जिसे ककय देश कहा जाता था। भरत की माता कैकयी इसी प्रदेश की राजकुमारी थीं। पूर्वी पंजाब (जिसका थोड़ा सा पश्चिमी भाग अब पाकिस्तान में है) एक प्रदेश था जिसे "मद्र देश" कहा जाता था। महाभारत के नकुल एव सहदेव की माता माद्री इसी प्रदेश की राजकुमारी थी। महाभारत में द्रौपदी को पांचाली लिखा गया है। वे इसी पांचाल प्रदेश की, जिसमें काम्पिल्य है, राजकुमारी थी। भारत के प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक कालीन इतिहास वेत्ता कनिंघम ने अपनी पुस्तक (*Ancient Geography of India*) के परिशिष्ट में लिखा है कि पांचाल एक संघ राज्य (*Union fo States*) था। क्रिवि, तुर्वस केसिन् आदि पांच राज्य वश यहां शासन करते थे। इसी कारण इसे पांचाल प्रदेश कहते हैं।

महाभारत में पांचाल प्रदेश के उस भाग को जिसमें काम्पिल्य नगरी थी 'माकन्दी प्रदेश लिखा गया है।

(महाभारत, आदि पर्व अ० १४१

काम्पिल्य का कुछ वर्णन जैन धर्मावलम्बियो की पुस्तको में भी मिलता है। उनके अनुसार जैनियो के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के जीवनकाल में स्वर्ग से इन्द्र ने मर्त्यलोक में आकर इस महानगरी की आधार शिला रखी थी। स्वय ऋषभदेव ने अपने धर्मोपदेश के लिए काम्पिल्य नगरी को चुना था। (महापुराण-इन्दौर संस्करण पृ० ५६८, ६८१)

विशावणानांचाजाते (पाणिनि-१/२/५२)।

पचाला रमणीया' (कौमुदी)।

पचाला जनपदा सुभिक्षा सम्पन्न पानिया' (तत्वबोधनी)

चलता है कि स्वयं सम्राट् जयबलि विश्वविद्यालय के एक आचार्य थे।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में यह एक क्रान्तिकारी प्रयोग था जब कि शिक्षा कार्य को उचित रूप से चलाने और राज्य एवं शिक्षा सम्बन्ध को कायम रखने के लिये सम्राट् भी विश्वविद्यालयों के आचार्य हुआ करते थे। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार सम्राट् जयबलि दर्शन विभाग के आध्यात्म-तत्व एवं ब्रह्म विद्या विषयों के प्रधान आचार्य थे।

अरुणि मुनि के पुत्र श्वेतकेतु एक समय अभिमान सहित पंचाल देश के विद्वानों से शास्त्रार्थ करने गये। उन्हें विश्वास था कि उनके पिता ने उन्हें सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान सिखा दिया था। वे काम्पिल्य पहुँचे और वहां उन्होंने सम्राट् जयबलि से शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव रखा।

सम्राट् जयबलि ने श्वेतकेतु से ५ प्रश्न पूछे परन्तु वे एक का भी उचित उत्तर न दे सके। लज्जित होकर श्वेतकेतु वापस आये और उन्होंने अपने पिता से उन्हीं प्रश्नों के उत्तर पूछे। पिता केवल प्रश्नों को सुनकर ही चकित रह गये और उनसे भी उत्तर देते नहीं बना। वे अपने पुत्र को लेकर जयबलि के पास अध्यात्मवाद सीखने आये। सम्राट् ने सम्मान सहित उन्हें अपना शिष्य स्वीकार किया और अध्यात्मवाद की शिक्षा देने लगे।

उक्त गाथा से प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में शिक्षा और अध्ययन के लिये लोगों में कितनी रुचि थी। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा कभी भी तृप्त नहीं होती थी और वयोवृद्ध जन भी शिक्षा से इतनी लगन रखते थे कि अपने से छोटी वयस के परन्तु विद्वान् व्यक्ति का शिष्य बनने को तत्पर रहते थे।

विश्वविद्यालय में औषधि विज्ञान की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध था। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ आत्रेय संहिता के अधिकांश भाग को जिसमें शल्य क्रिया (*Surgery*) भी है, इसी विश्वविद्यालय के औषधि विज्ञान विभाग के प्रधान आचार्य आत्रेय ने अग्निवेश आदि शिष्यों को उपदेश (*Lectures*) के रूप में दिया था। आत्रेय के इस ग्रंथ से प्रतीत होता है कि यूनान और अफगानिस्तान (वाल्हीक) तक से काकायन आदि प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता, इस विश्वविद्यालय के आचार्य के निर्देशन में शोध कार्य (*Research work*) करने आया करते थे।

"कांकायनोग्राम वाल्हीक भिषक," चरक सु० १२।६ अ० २५।

विश्वविद्यालय के विज्ञान विभाग के अन्तर्गत एक विशाल प्रयोगशाला (*Laboratory*) भी थी। इस प्रयोगशाला में वानस्पतिक (*Botanical*) खनिज (*Geological*) एवं प्राणिज औषधि-द्रव्यों (*Liquid-mixtures*) के रासायनिक परीक्षण (*Chemical examinations*) होते थे। प्रकाश, अन्धकार, सूर्य, चन्द्र, शीत, उष्ण आदि प्राकृतिक परिवर्तनों से औषधियों और द्रव्यों में उत्पन्न परिवर्तनों को जानने के लिए बड़े बड़े यंत्र थे। औषधि शास्त्र पढ़ने वाले विद्यार्थियों को ये सब रासायनिक प्रयोग करने पड़ते थे। इस विभाग के प्रधान आचार्य आत्रेय पुनर्वसु थे।

विश्वविद्यालय के औषधि विभाग के आचार्य अपने विषय में इतने पारंगत थे कि वे किसी भी संक्रामक अथवा सामूहिक रोग के होने की सम्भावनाओं को रोग फैलने के पहले ही जान जाते थे। एक समय काम्पिल्य में महामारी फैली। महामारी फैलने के पहले आत्रेय ने अपने शिष्यों से कहा कि ग्रह नक्षत्रों का विषम योग सिद्ध करता है कि जनपदसंचारी महामारी फैलने वाली है, अतः तुम लोग जाकर अपनी प्रयोगशाला में वनौषधियों को भर लो नहीं तो महामारी फैल जाने से वनौषधियों पर भी बड़ा विषम प्रभाव पड़ेगा। उनमें कोई स्वास्थ्यकारी गुण नहीं रह जायगा। शिष्यों ने गंगा की तराई से औषधियों को उखाड़कर प्रयोगशाला भर दी।

—चरक सं० विमान० अ० ३।४-५।

अपनी शिक्षा पद्धति और शिक्षोपयोगी साधनों के कारण काम्पिल्य सम्पूर्ण देश में प्रसिद्ध था। काम्पिल्य पंचाल देश की शिक्षा का केंद्र भी था। साहित्य और कलाओं की शिक्षा का भी यहां विज्ञान की शिक्षा के साथ

लवकुश द्वारा स्थापित मंदिर (कम्पिल)

द्रुपद कोट (कम्पिल)

द्रुपद कोट का एक अन्य दृश्य (काम्पिल्य)

द्रौपदी कुण्ड (कम्पिल)

लिया है तथा बुद्ध भगवान् की पुनीत मूर्ति भी बड़ी विचित्रता से स्थापित की है। लगभग सौ साधु सम्मतीय सम्प्रदायी इसमें निवास करते हैं। इसके धार्मिक पुरुषों का निवास है। सघाराम की बड़ी चहारदीवार के भीतर ३ बहुमूल्य सीढ़ियाँ पास पास उत्तर से दक्षिण को बनी हैं। जिनका उतार पूर्व मुख को है। तथागत भगवान् स्वर्ग से लौटते समय इसी स्थान पर आकर उतरे थे। प्राचीन समय में तथागत भगवान् 'जेतवन' से स्वर्ग में जाकर सद्धर्मभवन में ठहरे थे वहां उन्होंने अपनी माता को धर्मोपदेश किया था। तीन महीने तक वहां रहकर जब भगवान् की इच्छा लौटकर पृथ्वी पर आने की हुई तब देवराज इन्द्र ने अपने योगबल से ३ बहुमूल्य सीढ़ियों को तैयार किया। बीच की सोने की, बाईं ओर बिल्लौर की ओर दाहिनी ओर चाँदी की थी। तथागत भगवान् सद्धर्म भवन से चलकर देवमण्डली के साथ बीच वाली सीढ़ी पर से उतरे थे। दाहिनी ओर ब्रह्मराज (ब्रह्मा) चांदी की सीढ़ी से चवर लेकर और बाईं ओर इन्द्र बहुमूल्य छत्र लेकर बिल्लौर वाली सीढ़ी से उतरे थे। भूमि पर इन सबके पहुँचने तक देवता लोग स्तुति करते हुये फूलों की वर्षा कर रहे थे कई शताब्दियों के व्यतीत होने तक ये सीढ़ियां प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती थीं परन्तु अब भूमि में समाकर लोप हो गई हैं। निकटवर्ती राजाओं ने उनके अदृश्य होने के दुख से दुखित जिस प्रकार की वे सीढ़ियाँ थी वैसी ही सीढ़ियों को उसी स्थान पर ईंटों से बनवाकर रत्न-जटित पत्थरों से उनको विभूषित कर दिया है। ये लगभग ७० फुट ऊँची हैं। इनके ऊपरी भाग में एक विहार बना है, जिसमें बुद्ध भगवान् की मूर्ति और अगल बगल सीढ़ियों पर ब्रह्मा और इन्द्र की पत्थर की मूर्तियां उसी प्रकार की बनी हुई हैं जिस प्रकार वे लोग उतरते हुए दिखाई पड़े थे।

विहार के बाहरी ओर उसी से मिला हुआ एक पत्थर का स्तम्भ ७० फुट ऊँचा अशोक राजा का बनवाया हुआ है। इसका रंग बैंगनी चमकदार है तथा सब मसाला सुदृढ़ और उत्तम लगा है। इसके ऊपरी भाग में एक सिंह, जिस का मुख सीढ़ियों की तरफ है, अपने घुटनों के बल बैठा है। इसके स्तम्भ के चारों ओर सुन्दर-सुन्दर चित्र बड़ी विचित्रता से बने हुए हैं। इनकी विचित्रता यह है कि सज्जन पुरुष को तो वे दिखाई पड़ते हैं परन्तु दुर्जन की दृष्टि में नहीं आते। सीढ़ियों के पश्चिम में थोड़ी ही दूर पर गत चारों बुद्धों के बैठने-उठने के चिह्न बने हुए हैं इनके निकट ही दूसरा स्तूप है, जहां पर तथागत भगवान् ने स्नान किया था। इसके निकट ही एक विहार बना है, जहां पर तथागत भगवान् ने समाधि लगाई थी। इस विहार के निकट एक दीवार ५० पग लम्बी और ७ फुट ऊँची बनी है। इस स्थान पर बुद्ध भगवान टहले थे। जहां जहाँ पर वह टहले थे वहाँ-वहाँ उनके पैर पड़ने से कमल-पुष्प के चित्र बन गये हैं। इस दीवार के दाहिने बायें दो छोटे-छोटे स्तूप ब्रह्मा और इन्द्र के बनवाये हुए हैं। ब्रह्मा और इन्द्र के स्तूपों के सामने वह स्थान है जहां पर उत्पल-वर्णा भिक्षुणी ने बुद्ध भगवान् के दर्शन, जब वे स्वर्ग से लौटे आ रहे थे, सबसे पहले करना चाहा। इस पुण्य के फल से वह चक्रवर्तिनी हो गई थी।

इन पुनीत स्थलों की सीमा के भीतर बहुधा चमत्कारिक दृश्य दिखलाई दिया करते हैं बड़े स्तूप के दक्षिण पूर्व नागझील है यह नाग इन पुनीत स्थलों की रक्षा किया करता है, जिस कारण कोई भी इस स्थान को कुदृष्टि से नहीं देख सकता। काल चाहे वर्षों में इनको नष्ट कर पावे परन्तु मनुष्य में इनके ध्वस्त करने की सामर्थ्य नहीं"।

हुएनसांग के उपर्युक्त विवरण से तत्कालीन सांकाश्य के सम्बन्ध में कई बातों का पता चलता है उस समय वहां बौद्ध धर्म के साथ-साथ शैव मत का प्रचलन था। नगर में अनेक विशाल मठ तथा मन्दिर विद्यमान थे। लोग सांकाश्य को बहुत पवित्र स्थल मानते थे। मौर्य सम्राट अशोक तथा उसके बाद के राजाओं ने इस नगर को अनेक सुन्दर इमारतों और कलाकृतियों से विभूषित किया।

वर्तमान समय में प्राचीन स्मारकों के जो अवशेष सुरक्षित है उन्हें देख कर यह कहा जा सकता है कि अशोक के समय से लेकर प्रायः गुप्तकाल के अन्त तक सांकाश्य में स्थापत्य और मूर्ति कला का विकास होता रहा। चीनी

गया था। प्राचीन नगर के चारों ओर बनी दीवार का वर्तमान विस्तार लगभग चार मील है। इससे नगर की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

संकिसा हिन्दुओं का भी पुण्य क्षेत्र है। सक्सेना कायस्थ अपनी उत्पत्ति प्राचीन सांकस्य नगर से ही मानते हैं। इसी प्रकार हिन्दुओं की कई अन्य उपजातियां भी इस स्थान से अपना सम्बन्ध जोड़ती हैं। नेपाल तथा कुछ दूसरे पर्वतीय प्रदेशों में संकिसा के निवासियों के प्रति अब तक श्रद्धा का भाव विद्यमान है। संकिसा का बिसहरी देवी का मन्दिर सक्सेना कायस्थों तथा अन्य हिन्दुओं के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है। यहाँ श्रावण में एक बड़ा मेला लगता है और देवी की पूजा होती है। पहले इस मन्दिर में प्राचीन मूर्ति रही होगी परन्तु इस समय वहां संगमरमर की बनी हुई देवी की एक आधुनिक प्रतिमा है।

सांकाश्य के प्राचीन गौरव को देखते हुए इस स्थान के पुनरुद्धार की बड़ी आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख स्थानों में तो इसकी गणना है ही भारतीय संस्कृति और कला के विकास का भी यह एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। हमारे लोकप्रिय शासन तथा जनता का ध्यान इस उपेक्षित स्थल की ओर शीघ्र जाना चाहिये प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि संकिसा तक पहुँचने का मार्ग ठीक किया जाय, जिससे लोग आसानी से वहां तक पहुँच सकें। वर्तमान संकिसा ग्राम के निकट एक ऐसा आवास-स्थल भी होना चाहिये जहां बाहर से आने वाले पर्यटक सुविधा पूर्वक ठहर सकें। बर्मा, चीन, लंका आदि देशों से यहां जो दर्शनार्थी आते रहते हैं उनकी सुविधा का विशेष प्रबन्ध होना चाहिये। अच्छा हो, यदि केन्द्रीय तथा उत्तर प्रदेशीय सरकार पर्यटन के मुख्य केन्द्रों की सूची में संकिसा को भी सम्मिलित करलें और यातायात आदि की समुचित व्यवस्था कर दें। हमें इस बात की ओर सचेष्ट होना है कि यह महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र अधिक दिन तक उपेक्षित न रहे और इसके प्राचीन गौरव का उचित संरक्षण किया जा सके।

बालापीर कन्नौज
मुगलकालीन कला
का अप्रतिम उदाहरण

मख्दूम जहानिया के विशाल द्वार कन्नौज
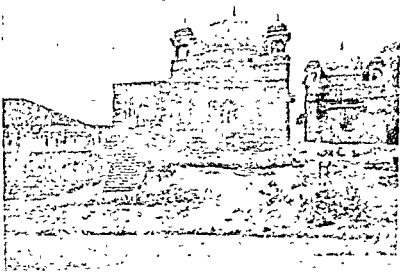
भीतर बुद्ध का दांत भी रखा हुआ था, जिसके दर्शन के लिए दर्शकों की भीड़ लगा करती थी। हुएनसांग ने अशोक के बनवाये हुए २०० फुट ऊंचे एक दूसरे स्तूप का भी दर्शन किया है, जो नगर के दक्षिणपूर्व में लगभग एक मी० की दूरी पर था। बुद्ध ने वहां ६ महीने तक ठहर कर विविध विषयों पर व्याख्यान दिये थे।

ई० पू० दूसरी शती में पतंजलि ने अपने महाभाष्य में कान्यकुब्ज का उल्लेख किया है। यूनानी ऐतिहासिकों ने भी अपने ग्रन्थों में इस नगर का वर्णन किया है। राजतरंगिणीसे पता चलता है कि मौर्य सम्राट अशोक के बाद उसके एक पुत्र जलौक ने कान्यकुब्ज प्रदेश से चारों वर्णों को ले जाकर उन्हें काश्मीर में बसाया। मौर्यों के बाद कन्नौज पर क्रमशः शुंग, पंचाल (मित्रवंश) तथा कुषाण वंशी शासकों का आधिपत्य रहा। ई० चौथी शती के मध्य से कन्नौज गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत गया। समुद्रगुप्त ने पंचाल के राजा अच्युत को जीतकर उसके राज्य को अपने अधिकारमें किया।

मौखरी वंश

अशोक के बाद से लेकर गुप्त-काल के अन्त तक कन्नौज की स्थिति प्राय नगण्य थी। तत्कालीन साहित्य एवं अभिलेखों में उसके बहुत कम उल्लेख मिलते हैं। ई० छठी शती के मध्य में मौखरीवंश की एक शक्तिशाली शाखा का आविर्भाव हुआ, जिसने कन्नौज को अपना केन्द्र बनाया। इस शाखा के पहले तीन शासक गुप्त सम्राटों के सामन्त थे। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद लगभग ५५४ ई० में मौखरी शासक ईशानवर्मा ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की ईशानवर्मा के समय में मौखरी राज्य की सीमाएं पूर्व में मगध तक, दक्षिण में मध्य प्रांत और आन्ध्र तक पश्चिम में मालवा तथा उत्तर पश्चिम में थानेश्वर राज्य तक थीं।

ईशानवर्मा के पश्चात् जिन शासकों का कन्नौज —— पर शासन रहा वे क्रमशः शर्ववर्मा, अवन्तिवर्मा तथा ग्रहवर्मा नामक मौखरी शासक थे इन शासकों की मुठभेड़ें परवर्ती गुप्त राजाओं के साथ काफी समय तक जारी रहीं बाणभट्ट के 'हर्ष चरित्र' से विदित होता है कि छठी शती के उत्तरार्द्ध में तथा सातवीं के प्रारम्भ में मौखरी लोग काफी शक्तिशाली रहे। ईशानवर्मा या उसके उत्तराधिकारी के शासन-काल में हूणों का आक्रमण भारत पर हुआ। इन्हें मौखरियों ने हराकर पश्चिम की ओर खदेड़ दिया। ६०६ ई० के लगभग ग्रहवर्मा का विवाह थानेश्वर के शासक प्रभाकर वर्धन की पुत्री राज्यश्री के साथ हुआ। इस वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा उत्तर भारत के दो प्रसिद्ध राजवंश वर्धन तथा मौखरी एक सूत्र में जुड़ गये। परन्तु प्रभाकरवर्धन के मरने के बाद मालवा के राजा देव गुप्त ने ग्रहवर्मा को मारडाला और राज्यश्री को कन्नौज में बंदी कर लिया राज्यश्री के बड़े भाई राज्यवर्धन ने मालवा पर चढ़ाई कर देव गुप्त को परास्त किया। परन्तु इस विजय के उपरान्त ही गौड के राजा शशांक ने राज्यवर्धन को विश्वासघात से मार डाला।

पुष्यभूति या वर्धन वंश

ई० छठी शती के प्रारम्भ में पुष्पभूति नामक राजा ने थानेश्वर और उसके आस पास एक नये राजवंश की नींव डाली। इस वंश का पांचवां राजा प्रभाकर वर्धन (लगभग ५८३-६०५ ई०) हुआ। उसकी उपाधि 'परम भट्टारक महाराजाधिराज थी' इससे प्रतीत होता है कि प्रभाकर वर्धन, ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी। बाणभट्ट रचित 'हर्ष चरित्र' से ज्ञात होता है कि इस राजा ने सिंध, गुजरात और मालवा पर अपनी धाक जमा ली थी। गांधार प्रदेश तक के शासक उससे भय खाते थे तथा उसने हूणों को भी परास्त किया था जिनके धावे फिर से आरम्भ हो गये थे 'हर्ष चरित्र' से विदित होता है कि प्रभाकर वर्धन ने अपने अन्तिम दिनों में अपने पुत्र राज्यवर्धन को उत्तर दिशा की ओर हूणों का दमन करने के लिए भेजा। सम्भवतः उस समय भारत पर हूणों का अधिकार उत्तरी पंजाब तथा काश्मीर के कुछ भाग पर था। प्रभाकर वर्धन का राज्य पश्चिम में व्यास नदी से लेकर पूर्व में यमुना तक फैला था। मथुरा प्रदेश

से कुछ कम थी। उस समय यह नगर उत्तर भारत में स्थापत्य तथा मूर्तिकला का प्रसिद्ध केन्द्र हो चुका था। हुएन-सांग ने कन्नौज में कई सौ बौद्ध सघारामों का उल्लेख किया है। इनमें महायान, हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी दस हजार भिक्षु रहते थे। नगर में दो सौ देव-मन्दिर थे चीनी यात्री ने लिखा है कि गंगा के तटों पर हर्ष ने कई हजार स्तूप सौ सौ फुट ऊंचे बनवाये। तत्कालीन हिन्दू मन्दिरों में हुएन-सांग ने एक सूर्य मन्दिर का उल्लेख किया है इस मन्दिर से थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर महेश्वर देव (शिव) का भी एक मन्दिर था। ये दोनो मन्दिर बहुमूल्य नीले पत्थर से बनाये गये थे और उनमें अनेक प्रकार की सुन्दर मूर्तियां थी। हुएन-सांग ने इन मन्दिरों की लम्बाई-चौड़ाई विशाल बौद्ध विहारों के बराबर बताई है। प्रत्येक मन्दिर में एक हजार मनुष्य सेवा पूजा के लिये नियत थे मन्दिरों में गाना बजाना तथा नगाड़ों का घोष रात दिन हुआ करता था।

यशोवर्मा (लगभग ७००-७४० ई०)

हर्ष की मृत्यु के बाद उत्तर भारत की राजनैतिक दशा बिगड़ गई। कन्नौज का विस्तृत साम्राज्य विशृंखलित हो गया। ई० आठवीं शती के प्रारम्भ में कन्नौज में यशोवर्मा नामक शासक का पता चलता है उसके राजकवि वाक्पति ने 'गौड़वहो' नामक प्राकृत का काव्य ग्रंथ लिखा है जिससे यशोवर्मा की अनेक विजय यात्राओं का पता चलता है। काश्मीर के तत्कालीन शासक ललितादित्य ने कन्नौज पर आक्रमण कर यशोवर्मा को पराजित किया। इस विजय से ललितादित्य का आधिपत्य कुछ समय के लिये कन्नौज पर स्थापित हो गया। यशोवर्मा विद्या और कला का बड़ा प्रेमी था। इसकी सभा में वाक्पति तथा भवभूति-जैसे महान् कवि और नाट्यकार विद्यमान थे।

कन्नौज के प्रतीहार शासक

ईस्वी नवीं शती के प्रारम्भ से कन्नौज पर प्रतीहार शासकों का आधिपत्य स्थापित हो गया। वत्सराज के पुत्र ने ८१० ई० के लगभग कन्नौज को जीता उस समय दक्षिण में राष्ट्रकूटों तथा पूर्व में पाल शासकों की शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी थी। कन्नौज पर अधिकार जमाने के लिये ये दोनों राजवंश प्रयत्नशील थे। पालवंश के शासक धर्मपाल (७८०-८१५ई०) ने बंगाल से लेकर पूर्वी पंजाब तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया था और आयुधवंशी राजा चक्रायुध को कन्नौज का शासक बनाया था। नागभट्ट ने धर्मपाल को परास्त कर चक्रायुध से कन्नौज का राज्य छीन लिया। अब सिंध प्रान्त से लेकर कलिंग तक के विस्तृत भू-भाग पर नागभट्ट का अधिकार स्थापित होगया। मथुरा प्रदेश भी इस समय से लेकर दसवीं शती के अंत तक गुर्जर प्रतीहार साम्राज्य के अन्तर्गत रहा।

नागभट्ट तथा मिहिर भोज—शीघ्र ही नागभट को एक अधिक शक्तिशाली शत्रु का सामना करना पड़ा। यह राष्ट्र कूट राजा गोविन्द तृतीय था। नागभट उसका सामना न कर सका और राज्य छोड़कर उसे भाग जाना पड़ा। गोविंद तृतीय की सेनाए उत्तर में हिमालय तक पहुंच गई, परन्तु महाराष्ट्र में गड़ बड़ फैल जाने से गोविंद को शीघ्र ही दक्षिण लौटना पड़ा। नागभट के बाद उसका पुत्र रामभद्र ८३३ ई० के लगभग कन्नौज साम्राज्य का अधिकारी हुआ। उसका पुत्र मिहिरभोज (८३६-८८५ई०) बड़ा प्रतापी शासक हुआ। उसके समय में भी पालो और राष्ट्रकूटों के साथ युद्ध जारी रहे। प्रारम्भ में तो भोज को कई असफलताओं का सामना करना पड़ा। परन्तु बाद में उसने तत्कालीन भारत की दोनों प्रमुख शक्तियों को पराजित किया। उसके साम्राज्य में पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मालवा सम्मिलित हो गये। इस बड़े साम्राज्य को व्यवस्थित करने का श्रेय मिहिर भोज को है।

महेन्द्रपाल (८८५—९१०)-मिहिरभोज का पुत्र महेन्द्रपाल अपने पिता के समान ही निकला। उसके समय में उत्तरी बंगाल भी प्रतीहार साम्राज्य में शामिल हो गया अब हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक तथा बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक प्रतीहार साम्राज्य का विस्तार हो गया। महेन्द्रपाल के समय के कई लेख काठियावाड़ से लेकर बंगाल तक के भूभाग से प्राप्त हुये हैं। इस शासक की अनेक उपाधियां उक्त लेखो में मिलती हैं। महेंद्रायुध, 'निर्भयराज' निर्भयनरेन्द्र आदि उपाधियों से

देखने से पता चलता है कि तत्कालीन कलाकार न केवल अंग प्रत्यंगों के सुचारू प्रदर्शन में सिद्धहस्त थे, अपितु पृष्ठभूमि-संयोजन, अलंकरण तथा भावाभिव्यक्ति के भी मर्मज्ञ थे।

उत्तर मध्य काल की कुछ तीर्थंकर प्रतिमाएँ भी कन्नौज और उसके आस पास मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि कन्नौज में इस काल में कई जैन मन्दिर स्थापित हो गये थे अधिकतर जैन प्रतिमायें कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए तीर्थंकरों की है। आश्चर्य है कि अब तक बौद्ध अवशेष कन्नौज और उनके आस पास के प्रदेश से नाम मात्र को ही मिले है। हर्षवर्धन के बाद कन्नौज में बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा था। वैदिक धर्म के पुनरुत्थान एवं व्यापक प्रभाव के कारण बौद्ध मूर्तियों का निर्माण कम हो गया। यदि कन्नौज के नदी तटवर्ती पुराने टीलों की खुदाई की जाय तो आशा है कि बौद्ध धर्म सम्बन्धी वे अवशेष थोड़े बहुत प्राप्त हो सके, जिनका ह्युएनसांग ने उल्लेख किया है।

कन्नौज की इस महान कलाराशि का अध्ययन आवश्यक है। इसके द्वारा उत्तर भारत की पूर्व मध्य कालीन धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर बहुत प्रकाश पड़ सकेगा। यद्यपि एक दीर्घ काल तक की बरबादी के कारण प्राचीन कन्नौज की कला बहुत नष्ट हो गई तो भी जो अवशेष बच गये हैं वे अनेक दृष्टि से महत्व के हैं। वास्तव में कन्नौज की कलाराशि में गुप्त कालीन कला तथा उत्तर मध्यकाल की पाल कालीन कला के बीच एक गौरव पूर्ण कड़ी उपलब्ध है। जिसका सम्यक ज्ञान तत्कालीन भारतीय इतिहास को समझने के लिये बहुत आवश्यक है। वर्तमान कन्नौज नगर, रजगीर, मीरासराय, देवकली, सलेमपुर तथा आस पास के अन्य कितने ही स्थानों में यह कला बिखरी पड़ी है। कितनी ही दुर्लभ कलाकृतियां बाहर चली गई हैं। अब जो शेष हैं उनके समुचित संरक्षण की नितांत आवश्यकता है। इसके लिए एक पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना शीघ्र होनी चाहिए, जिसमें यहां के कला वशेषों को ठीक प्रकार से प्रदर्शित किया जा सके। इस संग्रहालय में मध्यकालीन इतिहास और ललितकला के अध्ययन एवं अनुसंधान की व्यवस्था होनी चाहिए।

महमूद गजनवी द्वारा कन्नौज की प्रशंसा

पूर्व मध्यकाल में कन्नौज में कितनी ही विशाल इमारतें विद्यमान थी। इस काल के शासकों ने स्थापत्य की जो कला कृतियां निर्मित कराई उन्हें देखकर विदेशी लोग आश्चर्य चकित हो गये। ११ वीं शती के प्रारम्भ में जब महमूद गजनवी कन्नौज आया तब उसने देखा कि इस नगर की विशाल इमारतें आसमान से होड़ ले रहीं थीं। इन इमारतों की मजबूती और भव्यता असाधारण थी। महमूद ने गजनी के शासक को जो पत्र लिखा उससे कन्नौज की तत्कालीन दशा का अनुमान लगाया जा सकता है। वह लिखता है—"कन्नौज में १००० के लगभग इस प्रकार की मजबूत इमारतें हैं जैसा कि इसलाम मजहब मजबूत है। बहुतसी इमारतें संगमरमर की बनी है। मन्दिरों की संख्या बहुत बड़ी है। इन सबके निर्माण में लाखों दीनार लगे होंगे। यदि कोई इस प्रकार का दूसरा नगर बनवाना चाहे तो वह २०० वर्षों से कम में तैयार नहीं हो सकता।"

इस प्रकार के सुन्दर नगर का विनाश करने में महमूद को अधिक समय नहीं लगा। उसने प्रायः सभी भव्य इमारतों को धराशायी कर दिया। नगर का विनाश इतने बड़े पैमाने पर हुआ कि उसका पुनर्निर्माण भविष्य में सम्भव न हो सका।

गाहड़वाल वंश

११ वीं शताब्दी का अन्त होते होते उत्तर भारत में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जो गाहड़वाल वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश का प्रारम्भ महाराजा चन्द्र देव से हुआ। इसने अपने शासन का विस्तार कन्नौज से लेकर बनारस तक कर लिया। पन्जाब के तुरुष्क लोगों का भी इसने मुकाबला किया।

गोविन्द चन्द्र (लगभग १११२-११५५ ई०) चन्द्रदेव के बाद उसका पुत्र मदन चन्द्र कुछ समय तक शासन का अधिकारी रहा। इसके पश्चात् उसका यशस्वी पुत्र गोविन्द चन्द्र शासक हुआ। इसके समय के

गये। इसकी सेना बहुत बड़ी थी, जिसका लोहा सभी मानते थे। गोविन्द चन्द्र की तरह जयचन्द्र भी विद्वानों का आश्रयदाता था। प्रसिद्ध नैषध महाकाव्य के रचयिता श्री हर्ष जयचन्द्र की राजसभा में रहते थे। उन्होंने कान्यकुब्ज सम्राट् के द्वारा सम्मान प्राप्ति का उल्लेख अपने महाकाव्य के अन्त में किया है। जयचन्द्र के द्वारा राजसूय यज्ञ करने का भी विवरण कुछ परवर्ती ग्रन्थों में मिलता है

पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ में लिखा है कि उक्त राजसूय यज्ञ के अवसर पर जयचन्द्र ने अपनी पुत्री संयोगिता का स्वयंवर रचा। इस स्वयंवर में बहुत से राजाओं को बुलाया गया पर पृथ्वीराज को निमन्त्रित नहीं किया गया उसे अपमानित करने को उसकी एक स्वर्ण प्रतिमा बनाकर द्वारपाल के स्थान पर रखदी गई। पृथ्वीराज ने इस अपमान का बदला लिया और स्वयंवर में पहुँच कर संयोगिता का अपहरण किया। इस पर जयचन्द्र और पृथ्वीराज की सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई जिसमें दोनों ओर की हानि हुई।

स्वयंवर तथा संयोगिता-हरण आदि बातें कपोल-कल्पित प्रतीत होती है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र के समय के कितने ही ऐतिहासिक लेख प्राप्त हुए है, पर किसी में जयचन्द्र के राजसूय यज्ञ का या उसकी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का उल्लेख नही मिलता। तत्कालीन साहित्यिक ग्रंथ पृथ्वीराज विजय, हम्मीर महाकाव्य, रम्भा मंजरी नाटिका, प्रबन्ध कोष, आदि में भी राजसूय यज्ञ और स्वयंवर की चर्चा नही मिलती।

अत पृथ्वीराज रासो जैसे कुछ ग्रन्थों के आधार पर टाड आदि इतिहासकारों द्वारा संयोगिता हरण तथा जयचन्द्र और पृथ्वीराज के बीच भीषण संग्राम होने की जो अनेक बातें लिखी है वे प्रामाणित नही मानी जा सकतीं।

मुसलमानो का अधिकार

परन्तु भारत के दुर्भाग्य से तत्कालीन प्रमुख हिन्दू शक्तियों में एकता न थी। गाहड़वाल, चाहमान, चन्देल, चालुक्य तथा सेन शासक एक दूसरे के शत्रु थे जयचन्द्र ने सेन वंश के साथ लम्बी लड़ाई कर अपनी शक्ति को कमजोर कर लिया। तत्कालीन चाहमान शासक पृथ्वीराज से उसकी घोर शत्रुता थी। इधर चंदेलों और चाहमानों के बीच अनबन थी। ११९० ई० में जब मुहम्मद गोरी भारत की विजय की आकांक्षा से पन्जाब में बढ़ता चला आरहा था, पृथ्वीराज ने चंदेल शासक परमर्दिदेव पर चढ़ाई कर उसके राज्य को तहस नहस कर डाला। इसके बाद उसने चालुक्य राज भीम से भी युद्ध ठान लिया।

उत्तर भारत के प्रधान शासकों की आपसी फूट का मुसलमानों ने पूरा लाभ उठाया। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी पंजाब से बढ़कर गुजरात की ओर गया। फिर उसने पृथ्वीराज के राज्य पर भी आक्रमण किया। ११९१ ई० में थानेश्वर के पास तराइन के मैदान में पृथ्वीराज और गोरी की सेनाओं में मुठभेड़ हुई। गोरी युद्ध में घायल हुआ और पराजित होकर भागा। उसकी सेना बुरी तरह हारी। दूसरे वर्ष वह पुन बड़ी तैयारी के साथ बढ़ दौड़ा इस बार तराइन पर फिर घमासान युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज की पराजय हुई और वह मारा गया। अब अजमेर और दिल्ली पर मुसलमानों का अधिकार स्थापित हो गया। कुतुबुद्दीन ऐबक भारत का प्रशासक बनाया गया।

११९४ ई० में कुतुबुद्दीन के नेतृत्व में मुसलमानों ने कन्नौज राज्य पर चढ़ाई की। चंदावर (जि० इटावा) के युद्ध में जयचन्द्र ने बड़ी बहादुरी से मुसलमानों का सामना किया। मुसलमान लेखको के विवरणों से पता चलता है कि चन्दावर का युद्ध भयंकर हुआ। कुतुबुद्दीन की फौज में पचास हजार सवार थे जयचन्द्र ने अपनी सेना का संचालन स्वयं किया, परन्तु अन्त में वह पराजित हुआ और मारा गया। अब कन्नौज से लेकर बनारस तक मुसलमानों का अधिकार हो गया। कन्नौज असनी तथा बनारस में बड़ी लूटमार हुई।

इस प्रकार ११९४ ई० में कन्नौज के हिन्दू साम्राज्य का अन्त हुआ और यह प्रदेश मुसलमानों के अधिकार में चला गया। कुछ वर्ष बाद ही पूर्व और मध्य भारत में भी मुसलमानों का शासन स्थापित हो गया।

जनपदीय साहित्यिक विभूतियाँ

काव्य द्वारा जीवन की सतत अभिव्यक्ति होती रहती है। कोई भी काल व कोई भी क्षेत्र इस बात का अपवाद नहीं है। जिसकी अनुभूतियाँ विशेष विचित्र भावों और कल्पनाओं के साथ तत्कालिक व तत्क्षेत्रीय प्रतिभाओं द्वारा मुखरित न होती रही हों। इन धाराओं द्वारा एक आल्हाद और गरिमा का भाव व्यक्ति में प्रस्फुटित होता है और वह सृजनकर्ताओं के प्रति स्नेह और श्रद्धा की अंजलियाँ भरे उनके पुण्यस्मरण में प्रवृत्त होने को लालायित हो उठता है। लेखनी के बिन्दुओं पर वह संस्मरण मानों सहस्त्र मुक्ताकणों के सदृश जगमग करते हमारे अन्तर को भी आलोकित कर देते हैं। इस क्षेत्र की परम पावन विभूतियों की काव्यसरिता का अवगाहन व उनके भावों और विचारों का दोहन परम प्रेरणावान सिद्ध हो सके; अतः यह हमारा गुल्म प्रयास की कड़ियों से जोड़ा गया है।

साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से, अतीतकाल से यह क्षेत्र अत्यधिक धनी रहा है। सांस्कृतिक स्वरूप का दिग्दर्शन आगे के खण्ड में कराया जावेगा। यहां साहित्यिक स्वरूप का आभास देना अभीष्ट है। पूर्व वैदिक काल से लेकर यह क्षेत्र बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों, दार्शनिकों और कवियों का केन्द्रस्थल रहा है। वैदिक साहित्य में कम्पिल के विद्वानों और पंडितों का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि अवश्य ही यहां एक विश्वविद्यालय रहा होगा जिसकी अपनी एक पद्धति और पाठन प्रणाली होगी। परम विश्रुत कर्दम ऋषि का आश्रम पतित पावनी के तट पर इसी क्षेत्र में था और महर्षि कपिल का जन्म भी इसी स्थान पर हुआ था। (यह ऋषि सांख्यकार कपिल से भिन्न हैं) इनके अतिरिक्त न जाने कितने वैदिक ऋषियों और तत्वचिंतकों की क्रीडास्थली यह भूमि रही होगी, जिनके वृतांत अज्ञान के गर्भ में छिपे हैं। पञ्चाल जनपद के साहित्य और विद्या के केन्द्र होने के प्रमाण हमें प्राचीन वाङ्मय में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। हमें यह तो विदित ही है कि षट दर्शनों में से एक सांख्य के प्रवर्तक कपिल दार्शनिक काम्पिल में ही हुए थे। दर्शन में सबसे प्राचीन सांख्य गिना जाता है। इस दृष्टि से कपिल हमारे लिए और महत्व के हो जाते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इन्हीं कपिल के प्रधान शिष्य आचार्य आसुरि के आश्रम का होना यहीं गंगा तट पर सिद्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ की रचना इसी प्रदेश में हुई थी। यही नहीं, राजा दुष्यन्त और शकुंतला के कथानक इसी प्रदेश के लोक साहित्य की सम्पत्ति हैं और शतपथ ब्राह्मण में ज्यों के त्यों मिलते हैं। कालीदास के लेखनी से प्रदत्त परिधान द्वारा यही कथानक अलंकृत होकर विश्वविदित हुआ।

महान दार्शनिक 'जनक' के भाई कुशध्वज का भी कुछ सम्बन्ध इस प्रदेश से पाया जाता है। प्रमुख दार्शनिक पंचाल राज जैवलि ब्राह्मण ग्रंथों के रचनाकारों में प्रधान गिने जाते हैं। इन्होंने श्वेत केतु को ज्ञान कराया था। अधिकांश पूर्व वाङ्मय की रचना का श्रेय इसी स्थान के विद्वानों को प्राप्त है। सूत्रग्रंथों धर्म-गृह्य-इत्यादि की रचना कान्यकुब्ज प्रदेश में ही हुई थी।

कम्पिल जैनियों का भी तीर्थस्थल है। उनके एक तीर्थंकर भी यहीं के थे। जैनियों के साहित्य की बहुत सी रूप रेखा इस स्थान से प्राप्त होती है। बौद्ध-काल में कान्यकुब्ज और सांकास्य दो साहित्यिक केन्द्र रहे हैं। फाहियान ने भी अपनी यात्रा में इसका उल्लेख किया है सांकास्य में तो एक विश्वविद्यालय के रूप में दीक्षा दी जाती रही है। वहां की विद्वान भिक्षुणी उत्पला का उल्लेख मिलता है।

अपनी इस विहंगम दृष्टि को समेटते हुए जब हम कान्यकुब्ज के ऊपर केन्द्रित करते हैं तो हमें अनन्त भण्डार के दर्शन होते हैं। हर्ष काल संस्कृत साहित्य का एक स्वर्णयुग रहा है। सम्पूर्ण सातवीं शताब्दी ने बड़े-बड़े ग्रंथों की भेंट दी है। श्री हर्ष, बाणभट्ट, भवभूति भट्ट, विशाखदत्त (८वीं शती) त्रिविक्रम भट्ट (६वीं शती) आर्य क्षेमेश्वर आदि कभी भी हमारी दृष्टि से

भी बनवाए, जो अब तक उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। फर्रुखाबाद कचहरी के पास का बंगला भी उन्हीं का बनवाया हुआ है जिसको बाद में प० मिजाजीलाल मिश्र के पिता पं० शिवप्रसाद मिश्र वकील ने मोल ले लिया था

पं० कुन्दनलाल मथुरा के रहने वाले थे। ये ब्रज भाषा बोलते और जहाँ जाते, हिन्दी-प्रचार की धूम मचा देते थे। अपने अभिभावक कलक्टर ग्राउस साहब के आश्रय और संकेत से सरकारी नौकरी करते हुए पंडित जी ने हिन्दी की जो सेवा की वह मुक्तकंठ से सराहनीय है 'कवि-व-चित्रकार' लीथो में छप कर निकलता था। उसका वार्षिक मूल्य १) रुपया मात्र था। पत्र में चित्रकला और कविता सम्बन्धी स्वतन्त्र लेख भी रहते थे और समस्या पूर्तियां भी प्रकाशित की जाती थीं। उस समय 'कवि-व-चित्रकार, ही ऐसा पत्र था, जिसमें तत्कालीन बड़े २ साहित्य महारथी लिखते थे। उसके कुछ लेखकों के नाम नीचे दिए जाते हैं—

प० अम्बिकादत्त व्यास, श्री गोपालराम गहमरी, प० नकछेदी तिवारी, जानी विहारीलाल, प० महावीरप्रसाद द्विवेदी प० नाथूरामशंकर शर्मा, प० रुद्रदत्तजी, गोस्वामी किशोरी लाल जी, प० गोपीनाथजी (जयपुर), (भारत-मार्तण्ड) प० गट्टूलालजी, प० ज्वालाप्रसाद मिश्र (विद्यावारिधि) प० श्रीधर पाठक, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोस्वामी सूर्यलालजी, श्रीमती सुभद्रादेवी (मुरादाबाद) इत्यादि इत्यादि।

संस्कृत के विद्वान हिन्दी और संस्कृत दोनों में अपनी अपनी रचनाएँ प्रकाशित कराते थे। उपर्युक्त विद्वानों में से कितने ही तो सारे देश में विख्यात थे। प० गट्टूलाल जी प० अम्बिकादत्त व्यास, प० गोपीनाथजी आदि संस्कृत साहित्य के अक्षय भण्डार समझे जाते थे। प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की साहित्य सेवा का वह प्रारम्भ-काल था वे इस पत्र में गद्य और पद्य दोनों लिखते थे। समस्याओं की पूर्तियां भी करते थे। उस समय द्विवेदी जी झांसी में थे

नीचे आपके तीन पद्य दिए जाते हैं:—

सुपटा शुचि अभ्रघटा प्रति सौम्य
घटा चढ़ि बाल विलोचन शाली
बरषा बिच कानन कुण्डल पंकज
मालन धारि सबै निज आली
इनके अवलोकन को सब ओर
प्रमोद के हेतु पयोद प्रनाली
बिरची बुधिवन्त प्रनन्त गुणागर
शिल्प उजागर ने अग जाली

× × ×

कमनीय कठोर कुच स्यलिनी
नलिनी दल लोचनि सुभ्र सुचाली;
रज की सुख हर्म्य चढ़े सजनी
बजनी पग नूपुर एक न घाली।
लखि प्रीतम एन कहूँ निज संन ते
मैन भरी करि दीठि निराली;
यह युक्ति निकारन कारन है
सिरजी जगमाहिं हजारन जाली।

× × ×

मलयागिरि पै गिरि मारुत मारुत
मण्डल त्याग कला इक घाली;
रसलीन अनेक कलीनन को
बिरली बिरली करिकै प्रतिपाली।
उठि गात में होत प्रभात सबै
पिरयक अपकानिल फूलनवाली
उपजाय घटामें घटान सोहै
यहि कारन जोवनके हित जाली

उपर्युक्त पद्यों में द्विवेदीजी ने 'जाली' समस्या की पूर्ति की है। पूर्ति करने में व्रजभाषा का आश्रय लिया है। इन तीनो सवैयों में शृंगार-रसकी झलक दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि उस समय द्विवेदी जी की कविता प्रवृत्ति किस ओर थी और वे ब्रजभाषा में कैसी कविता करते थे। उस समय अधिकतर शृंगार-रस की ही कविताएँ की जाती थीं; परन्तु 'कवि-व-चित्रकार' ऐसी कविताओं के विरुद्ध बराबर चेतावनी देता रहता था। एक बार उसने अपने सम्पादकीय स्तम्भ में लिखा था—'कविता प्रायः शृंगार-रसमें सनी होने से देशोपकारक होने के

उनको घर से बंस ग्राम बितिया जाता है,
गाड़ीपर कुछ माल रेलसे से प्राता है,
रोकर बोला कृषक हाय! हरि हाय- हाय! हम!
क्या खाएं क्या वस्तु सिखाने कहां जायें हम!

देख-देख दुख हाय प्राज छाती फटती है,
मुन्के पेठने हेतु क्यों न धरती फटती है।
अरे विधाता! क्या हम तेरा काम बिगाड़ा,
भूतल भरका जो मुन्क पर डाला दुख सारा।
इसी भांति प्यारे को भी वह कुछ समझाता,
पर उस प्राफतसे काहे को छुट्टी पाता।
देर हुई जब बात - चीत के कुछ बतलाते,
डंडे खाकर जोड़ हाथ स्टेशन जाते।
घरके बाकी लोग नील में परे बिगारी,
गारी खा – खाकर भी घरकी चीज बिगारी।
भूख लगे तो खाने को डंडे खाते हैं,
प्यास लगे तो मुख से गाली पी जाते हैं।
कहीं किसी को साग मिला तो बड़े भाग से,
नोन नहीं है, नोन मिला तो प्रलग साग से!
अहो हजारों जन ऐसे भारतमें दुखिया—
जिन पर कृपा नहीं करते अपने जो सुखिया।

कविवर चन्द्रशेखर किसानों की दुर्दशा पर आंसू बहा कर ही नहीं रह जाते, प्रागे चल कर वे इस सकट-सागर से पार होने का उपाय भी सोचते हैं और सरकार से कहते हैं:—

क्यों न हमारी दयाशील सरकार सोचती,
इन दुखियों की दशा हाय क्यों नहीं मोचती।
हैं हजार ऐसे उपाय जिनसे दरिद्र नर,
हो सकते कुछ सुखी कृपा सरकार करे पर।
बक कृषी के खोल सूद का कष्ट मिटावे,
पूंजी भरती भारतवासी क्यों दुख पावें।
खेतीकी विद्या बहुधा सबको सिखलावे,
शिल्प चमत्कारी से भी इनको चमकावे।
विद्या दे स्वाधीन जीविका यत्न बतावे,
काम और ही देय दासता फन्द छुड़ावे
देश सूखते हैं जो,' उनमें नहर करावे,
बहते उनके पास पासमें बांध बंधावे।

जिन लोगों का यह ख्याल है कि पुराने कवि नायि[illegible] वर्णन के अतिरिक्त और कुछ जानते ही न थे, [illegible] चन्द्रशेखर मिश्र की उपर्युक्त पंक्तियां पढ़कर अप[illegible] सम्मति बदलनी चाहिये। आजकल अपने को 'प्रगतिशील' कहने वाले कवि भी तो यही बात कहते हैं, जो अबसे ५[illegible] वर्ष पूर्व कही जा चुकी है।

'कवि-व-चित्रकार' देखने से यह भी पता च[illegible] है कि उस समय उसमें जो समस्या-पूर्तियां छपती थीं, उन को प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि नम्बर भी दिये जाते थे। वे पुरस्कृत भी की जाती थीं, और इन पुरस्कारों तथा नम्बरों का बड़ा महत्व होता था। अगर कभी किसी के साथ अन्याय या पक्षपात हो जाता था, तो एक बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा होता था। कभी कभी तो स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंहजी को भी निर्णायक बनना पड़ता था। अभिप्राय यह कि 'कवि-व-चित्रकार' अपने समय का श्रेष्ठ तथा प्रगतिशील पत्र था, और उसमें लिखना तत्कालीन विद्वमण्डली अपना कर्तव्य सा समझती थी।

'कवि-व-चित्रकार' को प्रकाशित हुए बहुत दिन न हुए थे कि इतने ही में ग्राउस साहब और प० कुन्दनलालजी का क्रमशः ५२ और ३६ वर्ष की अवस्थामें देहान्त हो गया जिससे विवश होकर उसे बन्द कर देना पड़ा और अब उसकी केवल स्मृति शेष रह गई है। कहीं-कहीं पत्र [illegible] पुरानी फाइलें भी पाई जाती हैं। आश्चर्य तो यह है [illegible] हिन्दी के किसी इतिहास में ऐसे महत्वपूर्ण पत्र का ना[illegible] तक नहीं दिया गया। अगर भूलसे कहीं नाम आ भी गया है, तो उसके सम्बन्ध में और कुछ लिखना मुनासिब नहीं समझा गया। इस उपेक्षा का भी कुछ ठिकाना है!
('कवि-व-चित्रकार' से—श्रीयुत हरिशंकर शर्मा, सोहामणी, आगरा के सौजन्य से प्राप्त, स०।)

उपर्युक्त मासिक पत्र के अनन्तर श्री प० गणेशप्रसाद शर्मा सारस्वत द्वारा संपादित साप्ताहिक 'सद्धर्म प्रचारक' ही संभवतः दूसरा पत्र था जो फर्रुखाबाद से मुद्रित और प्रकाशित होता था। तदनन्तर 'कान्यकुब्ज' मासिक का यहां से प्रकाशन होता रहा, इसके अनन्तर

वकील श्री लालमणि भट्टाचार्य के स्थान पर होती रही और वार्षिक अधिवेशन पटेल पार्क (पलरा) पर होते रहे। दुर्भाग्यवश सघ में इधर कुछ २ आपसी फूट के अकुर जमने प्रारम्भ हुये जिसने अंत में सघ को ही समाप्त कर दिया किसी सस्था में जहां पद लोलुपता का बीजअकुरित हुआ कि फिर उस सस्था का पतन अवश्यम्भावी हो जाता है। सघ के पुराने कर्णधार शिथिल होकर उदासीन रहने लगे और नई पीढी ने अपने दायित्व को सभालने की भरपूर चेष्टा नहीं की, परिणामतः सघ समाप्त ही होगया। इधर कई वर्षों के सन्नाटे के अनन्तर विगत वर्ष कतिपय उत्साही नवयुवक साहित्यकों ने फिर करवट ली और उन्होंने 'पाचाल साहित्य परिषद' के नाम से एक सस्था को जन्म दिया जो इस क्षेत्र में साहित्यिक जागृति का कार्य करते हुये एतत्क्षेत्रीय उन साहित्यिक एव सास्कृतिक निधियों को प्रकाश में लाकर जन जीवन को एक प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान कर रही है, जो समय के प्रभाव से लुप्त प्राय होती जारही है।

इन सस्थाओं के अतिरिक्त अब से लगभग दो वर्ष पूर्व कला परिषद नाम की संस्था की स्थापना भी नगर में हुई है। इस सस्था के द्वारा दो सगीत सम्मेलनों का आयोजन बड़े समारोह के साथ सम्पन्न किया गया अभी तक इस सस्था ने कला के सगीत पक्ष को ही प्रधानता दी है किन्तु उसके विधान के अनुसार उसका क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है उसके द्वारा भी हमें ठोस साहित्यिक एव सास्कृतिक कर्त्तव्यों की आशा है।

संस्कृत कवि

(अब इस स्थान पर प्राचीन काल के उन सस्कृत के साहित्यकारोका एक सक्षिप्त परिचय दिया जारहा है जो इस क्षेत्र की साहित्यिक परम्परा को अग्रसर करते हुये सतत् चेतना के स्रोत के रूप में हमें स्फूर्ति प्रदान करते रहते हैं।)

हर्षवर्धन (छठी शताब्दी)

ये महाराज प्रभाकरवर्धन के द्वितीय पुत्र थे। ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन के पश्चात् शासन सूत्र इनके हाथ में आया इनके राज दरबार में वाणभट्ट,मयूरभट्ट, दिवाकर आदि कविजन आश्रय प्राप्त करते थे। वाण का हर्षचरित्र इन्ही के जीवन का वृत्त है। इन्हीं के समय में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत भ्रमण करने आया था। जिसने इनकी विद्वत्ता, दान शीलता आदि की भूरि भूरि प्रशसा की है। इनके तीन रूपक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। रत्नावली प्रियदर्शिका तथा नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका इन नाटिकाओं में अवन्ति देश वासी महाराज उदयन तथा वासवदत्ता की प्रेम कथा वर्णित है। नागानन्द में कवि ने नागा की रक्षा जीमूत वाहन द्वारा कराई है। जिसमें जीमूत वाहन के आत्मसमर्पण की कथा विर्णित है।

वाणभट्ट (छठी शताब्दी)

वाणभट्ट सोणनद के किनारे प्रीतकूट नामक नगर में निवास करते थे। ये द्विजश्रेष्ठ वात्स्यायन वश में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह का नाम अर्थपति और पिता का चित्रभानु था। पिता के बाल्यावस्था में ही दिवगत हो जाने के कारण महाकवि वाण भट्ट ने पर्यटन करना प्रारम्भ किया। पर्यटन करने से ये लौकिक कार्यों में बड़े पटु हुए। ये महराज हर्षवर्धन के राज सभा के प्रधान पण्डित के पद पर प्रतिष्ठित थे।

वाणभट्ट सरस्वती के वरद पुत्र थे। यह लोक में प्रवाद है कि सरस्वती का कृपापात्र लक्ष्मी की कृपा से वञ्चित रहता है पर वाणभट्ट इसके अपवाद थे। इनके ऊपर दोनों की कृपा समान रूप से स्वभावतः थी। वाणभट्ट ने गद्य काव्यों की रचना कर साहित्य के एक बहुत बड़े अङ्ग की पूर्ति की। इनके बनाए हुए कई ग्रन्थ हैं। १— 'चण्डीशतक':—इसमें सौ स्रगधरा छन्द हैं भगवती दुर्गा की स्तुति सुन्दर, मधुर, ओजस्विनी और बोधगम्य भाषा में की गई है। २—पार्वती परिणय— यह एक नाटक है

भट्ट त्रिविक्रम (८ वीं शताब्दी)

शाण्डिल्य गोत्रीय देवादित्य के पुत्र संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम चम्पूकाव्य रचयिता भट्ट त्रिविक्रम राष्ट्रकूट वंशीय जगततुङ्ग के पुत्र इन्द्र राज के सभापण्डित थे। इनका समय दसवीं शताब्दी का प्रारम्भ है।
ग्रन्थ —नलचम्पू।

राजशेखर (६ वीं शताब्दी)

कविराज राजशेखर यायावार वंश में उत्पन्न हुये थे ये। महाराष्ट्र कविदर प्रकाल जलद के प्रपौत्र थे। इनके पिता का नाम दुर्दुक और माता का नाम शील वती था। इनकी स्त्री का नाम अवन्तिसुन्दरी था जो परम विदुषी थी। इनके आश्रय दाता कान्यकुब्जेश्वर महेन्द्रपाल थे जो कन्नौज के प्रतिहार वंशी राजाओं में विशेष गौरवशाली माना जाता है। ये राजा महेन्द्रपाल के गुरु एवं शिक्षक भी थे। ये अपने को बालमीकि भर्तृमेन्ठ और भवभूति का अवतार मानते थ।

बभूव वाल्मीकि भव कवि पुरा,
तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम।
स्थित पुनर्यो भव भूति रेखया,
स वतते सम्प्रति राजशेखर ॥

य भूगोल के बड़े भारी ज्ञाता थे। इन्होंने इस विषय पर 'भुवन कोष नामक ग्रन्थ भी बनाया जो अनुपलब्ध है। इसके अतिरिक्त इनके बनाये हुये छ ग्रंथ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इन षट प्रबन्धों में, 'बाल रामायण' 'बाल भारत''कर्पूर मञ्जरी'और 'विद्धशाल भंजिका' ये चार रूपक और पांचवा प्रबन्ध 'काव्य मीमाँसा' है, जिसका सम्बन्ध अलंकार शास्त्र से है। 'हर विलास' नामक षष्ठ प्रबन्ध का उल्लेख परवर्ती विद्वानों ने अपनी रचनाओं में किया है, किन्तु वह उपलब्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त 'सूक्ति मुक्तावली' और 'हारावली' में राज शेखर के नाम से समुधृत अनेक विशिष्ट प्रशस्तियां प्राप्त होती है,जिनसे अनेकों कवि एवं कवियित्रियों का परिचय मिलता है। इन्हें कान्यकुब्ज प्रदेश अत्यन्त प्रिय था जो कि इनकी रचनाओं से प्रकट है।

क्षेमेश्वर (६ वीं शती)

इनके जन्म स्थान, जनक और जननी के विषय में इतिवृत्त मौन है। पर यह कन्नौज नरेश महाराज महो॰ के राज दरबार में सभा पण्डित के पद पर आसीन थे कर्पूर मञ्जरीकार महाकवि राजशेखर के समका॰ थे। इन्होंने दो नाटकों का प्रणयन किया है—१ चण्डकौशि॰ २—नैषधानन्द। इन दोनों नाटकों में चण्डकौशिक प्रसिद्ध विद्वत समाज में अधिक है। इसमें सत्य हरिश्च॰ का जीवन चरित्र नाटक की भाषा में वर्णित है। इस॰ पांच अङ्क हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र विरचित सत्यहरिश्च॰ नामक प्रख्यात नाटक इसी के आधार पर लिखा गया है।

मधुरशील

मधुरशील बाणभट्ट के समकालीन थे आपकी प्रतिष्ठा महाराज श्री हर्ष के दरबार में थी। कुष्टरोग निवारणार्थ 'सूर्य शतक' नामक स्तोत्र काव्य इन्होंने रचा जो नितान्त प्रौढ़ एवं स्रगधरा वृत में ही लिखा गया है।

वाक्पतिराज

वाक्पति राज ने कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा की सभा को अलंकृत किया था। इनकी गणना सभा के उत्कृष्ट रत्नों में थी। अभी तक इनके जन्म, जनक जननी के विषय में कुछ पता नहीं है। इतिहास भी इ॰ ओर से मौन है।

इनकी दो रचनायें हैं जिनमें 'मधुमथ वि॰ अनुपलब्ध है। दूसरा 'गउड़वहो' है जिसमें १२०८ गा॰ हैं। कविता की दृष्टि से यह प्राकृत साहित्य बड़ा अनुप॰ तथा सस्कृत साहित्य का एक देदीप्यमान हीरक है। बड़े ही मनोरम ढङ्ग से लिखा गया है। जिसका आज भी सहृदयों के हृदय को आपादशिरसि स्निग्ध बना॰ है।

प्रकृति के क्रोड में पल्लवित और पुष्पित हो॰ वाले कवि का मन स्वभावत. प्राकृतिक दृश्यों से प्र॰ करता है। यही कारण है कि इनके काव्यग्रन्थ प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन बड़ा ही सुन्दर सजीव तथा यथार्थता से परिपूर्ण है। इस काव्य में काव्यगत भावाभि॰ व्यक्तियों का साङ्गोपाङ्ग समावेश है। देखिये चन्द्राय बृम॰ मणि देवाधिदेव महादेव शङ्कर के मस्तक पर विराजमान

श्लोक हैं। इसमें नल और दमयन्ती के परस्परानुराग के साथ दोनों के परस्पर विवाह का वर्णन है। राजा नल बड़े सुन्दर थे दमयन्ती भी बड़ी सुन्दरी थी दोनो एक दूसरे के सौन्दर्य पर आकृष्ट थे। राजा नल हंस को दमयन्ती के पास भेजते हैं। हंस एकान्त में नल के सौन्दर्य का वर्णन करता है। राजा भीम दमयन्ती के स्वयम्बर का विधान करते हैं। सभामें नलवेषधारी इन्द्र, वरुण, कुबेर और यम का आगमन होता है। दमयन्ती सदेह में पड़ती है। नल विषयक दमयन्ती का अटल अनुराग जान देवता लोग अपना विशिष्ट चिह्न प्रदर्शित करते हैं। नल और दमयंती का शुभ विवाह होता है। दोनों के प्रथम मिलन रात्रि का वर्णन है।

मधुकर

कविवर मधुकर ने भी अपनी रचनाओं से इसी प्रदेश को गौरवान्वित किया था।

सूर्य वादीव सिंह (१० वीं शती)

आप कन्नौज निवासी थे। आपकी 'गद्य चिन्तामणि, पुस्तक साहित्य की एक अनूठी कृति है।

शंखधर (१२वीं शती)

आप भी कन्नौज के निवासी थे आप का 'लटक मेलक, एक प्रसिद्ध रचना है।

भट्ट केदार (१२२४–१२४३)

आपका जयचन्द प्रकाश महाकाव्य अप्राप्त है रासो में इसका उल्लेख मिलता है।

कविवर मदनगोपाल (१२ वी शताब्दी)

आपका बनाया हुआ निघन्टु अत्यन्त प्रसिद्ध है।

महा महोपाध्याय रामशास्त्री भागवताचार्य

आपके जन्म सम्वत का ठीक पता न लग सका निधन सम्वत् १६७० वि० है। आपने कन्नौज के निकट कदाचित ठठिया ग्राम में कश्यप गोत्रीय ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। आपके पिता का नाम बालकृष्णाचार्य था। आपकी शिक्षा दीक्षा राजकीय संस्कृत महाविद्यालय काशी में हुई। कुछ दिनो आपने पिता के साथ रीवां नरेश रघुराज सिंह के यहां भी निवास किया। इन्होंने 'खण्डन' खड खाद्य, अपने मित्र मोहनराम उदासी का जीवन चरित्र तथा समस्या समज्जा नामक ग्रन्थ की रचना की।

हिन्दी—कवि

इसी परिच्छेद के अन्तरगत हिन्दी के प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों का तथा उनकी कृतियों का एक संक्षिप्त परिचय जो उपलब्ध हो सका है, देने का अल्प प्रयास किया जा रहा है।

परमानन्द जी (१६०६—अज्ञात)

प्रसिद्ध वल्लभ सम्प्रदाय प्रवर्तक वल्लाभाचार्य जी की अष्ट छाप के आप एक सदस्य थे। सूरदास के साथ ही अष्टयाम आरती में भाग लिया करते थे। आपका निवास स्थान कन्नौज था। इसी आधार पर आपको कान्यकुब्ज ब्राह्मण अनुमान किया गया है। आपकी कवितायें इतनी सरस और हृदयस्पर्शी हुआ करती थीं कि स्वयं वल्लभाचार्य जी उन्हें सुनकर कई दिन तक भावविभोर रहते थे। 'परमानन्द सागर'में ८३५ पद संग्रहीत है। स्फुट रूप से भी यदाकदा भक्तों द्वारा सुने जाते हैं। आपके किन्हीं वंशजों का परिचय अब कन्नौज में नहीं प्राप्त होता है। यह हमारा दुर्भाग्य रहा है कि अपने श्रद्धा केन्द्रों और प्रेरक शक्तियों को यथाविधि स्मृत भी नहीं रख पाए हैं आपकी रचना का उदाहरण निम्न प्रकार है।

कहा करौं वैकुण्ठहि जाय।
जह नहि नन्द जहां न यशोदा, नहिं जह गोपी,ग्वाल न गाय
जह नहि जल यमुना को निर्मल और नही कुन्दवन की छाय
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय

महाकवि 'घाघ' (१७५३—अज्ञात)

घाघ की कथोक्तियों और उनके नाम से सामान्य पढ़े बेपढ़े सभी भली भांति परिचित हैं। गौरव का विषय है कि कान्यकुब्ज ही उनकी जन्मदायिनी भूमि है घाघ प्रयावली में उनकी समस्त रचनाओं का संकलन है। नीति, कृषि इत्यादि सम्बन्धी कथोक्तियां जन साधारण के मुंह से सुनी जा सकती है। आपके वंशजों का कन्नौज में अब कोई पता नहीं चलता है। घाघ की सराय के नाम से एक सराय अब भी विद्यमान है जो वर्तमान 'चौधरी' सराय के नाम से विख्यात है।

(३) राजनीति, (४) धारमशिक्षा, (५) दुर्गा पचासिका (६) नायिका भेद, (अपूर्ण) और (७) रत्नशतक। वैसे इनके लिखे लगभग २० ग्रंथ बताए जाते हैं। पाण्डित्य एवं काव्यानुराग इनके वंश की प्राचीन सम्पत्ति थी। ये बहुधा मिश्र भी कहे जाते थे। इस विषय में उन्हीं की उक्ति है "शुक्ल वंश ते मिश्र भो सो यह कुल अवदात" और इनके पिता का नाम ईश्वर मिश्र बतलाया जाता है। यह किम्वदन्ती कम्पिल के ही साहित्य गुणोज्वलकारी सुखदेव मिश्र की इन पंक्तियों पर आधारित है।

तिनमें परम प्रसिद्ध अति ईश्वर मिश्र प्रवीन,
गुन मंडित पंडित सबै जिनसों नय अधीन।
प्रगट प्रबोधा को कियो टीका सरस बनाय,
उक्ति युक्ति रत्नावली त्रिपुरा चरन मनाय।
रूपतरंगिनि जिनकरी जग में परम प्रसिद्ध;
साहित को टीका कियो करि विवेक गुण रिद्ध।
भारत पर टिप्पण करयो मधु जातक पर और,
बुद्धिवल्लभा प्रसिध है जहां तहां सब ठौर।
चौदह विद्या जिन पढ़ी तिन पर टीका कीन,
ईश्वर ईश्वर सों भेद न कहत प्रवीन।

परन्तु कम्पिल के सन्निकट सिकन्दरपुर खास के निवासी श्री महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी इन को शुक्ल बतलाते हैं। निस्सन्देह गुरुवर द्रोणाचार्य की सन्तानों में दो कुल शुक्ल और पाण्डेय के ही नाम से विख्यात है और कम्पिल में इन्हीं दोनों का बाहुल्य था। मिश्रों का तो एकाध प्राचीन घर भलेही हो। कहते हैं तोषनिधि के बाद केवल दो ही पीढ़ी तक उनका वंश चला और तब तक इस वंश में विद्याव्यसन बराबर बना रहा। तोषनिधि बड़े उग्र प्रकृति के थे। इनके समय में कम्पिला में कायस्थों की तूती बोल रही थी और उन्हींका आधिपत्य उस नगर पर था, तत्कालीन कायस्थ जिन के हाथ में नगर की बागडोर थी, उनका नाम भइयालाल था। उनके भानक सूर्य के सामने आंख उठाना दुस्साहस था, किन्तु तोषनिधि बिल्कुल निडर थे। एक तो कान्यकुब्ज ब्राह्मण, दूसरे कवि! कहा जाता है, एक दिन कविराज जी हजामत बनवारहे थे और उसी समय मु० भइयालाल को भी नाई की आवश्यकता हुई। मुन्शी जी के कर्मचारी ने उसी नाई से चलने कहा, उसने कहा कविराज की हजामत बनाकर चला किन्तु यह कर्मचारी तोषनिधि से किसी कारण अप्रसन्न था; इस लिये उसने भइयालाल से ऐसे वचन कहे जिस मुन्शी जी को कविराज की उद्दण्डता मर्मभेदी जची ऐसी दशा में भइयालाल ने नाई को बलात् ले आने की आज्ञा दी और कुछ ऐसे वचन भी कहे जिनसे कविराज की मान हानि सम्भव हो सकती थी। परिणाम यह हुआ कि नाई चला गया और तोषनिधि की अधमुड़ी दाढ़ी छूट गई। इस पर तोषनिधि अत्यन्त क्रुद्ध हुये पर सिवा कोसने के और गरीब ब्राह्मण के हाथ में था ही क्या जो उस मानहानि का प्रत्युत्तर देते। निदान कविराज जी अपनी आराध्य भवानी के मन्दिर में सकल्प कर बैठ गए। उस इष्ट की प्राप्ति के लिये उन्होंने २५ छन्द कहे हैं, जो भय्यालाल पच्चीसी के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कविराज की मनोकामना फलीभूत हुई और भय्यालाल का काम तमाम हुआ। उन कायस्थों के कुछ वंशज अबभी पुरानी बहरी पर है, जो तोषनिधि के स्थान के समीप ही है। यहां पर इनके दो छंद पाठकों के विनोदार्थ नीचे दिये जाते हैं।

(१)

राम जानै महिष निशुम्भ शुम्भ कौने हन्यो,
नाम तुम पायो सोई सुनिकै सिहातो हौं।
जो न यह जानै निर्बुद्धि जन सेवै तेई,
मैं तो तुम्हें जानि लीन्हों कहा पछितातो हौं॥
बुरो मति मानो सांची कहत पुकारे नित,
सीतल सदर अरि देखि दुरि जातो हौ
कौं हों काज कौन कोह कहा हुइहै मया,
यह 'भंयालाल' कायथं बिगारत डरातो हौ

(२)

कैसो दृष्ट पुष्ट सुख सपति सतुष्ट दुष्ट,
क्यों न जगदम्बे याहि करत खराब री
मेटु याको सपति समेटु सरबस बेग,
गात को गजक करि पीउ तू सराब री॥
काटि कै करेजो चाटि चाटिकै उदर फाटि,
जारि बारि डार याको सब सुख राबरो।
कालिका भवानी सलग्यानी कीति रावरी है,
तेरे दास हू सो नीच करत बराबरी॥

कविवर सदाशिवलाल शर्मा
सम्वत् १८००—१८६५

श्री सदाशिव लाल शर्मा सस्कृत तथा भाषा दोनो के पडित थे। यह महाशय फरुखाबाद नगर के निवासी थे पर मुहल्ला आदि का ठीक ठीक पता नहीं चलता है। इनका एक ग्रथ सम्वत १८४० विक्रमी सन् १७८३ ई० का लिखा युक्ति समूह नामक है जिसे स्वर्गीय प० गोविन्द प्रसाद महाभारती ने सवत् १६५७ विक्रमी में मोर्स कम्पनी प्रेस फरुखाबाद में 'शृङ्गारसौरभ' के साथ छपवाया था इस सग्रह का सशोधन किन्ही महाशय शिवप्रसाद ने सम्वत् १८८६ में किया जैसा निम्नाङ्कित दोहों से ज्ञात होता है।

भाषा युक्ति समूह को कीन्हो शिवपरसाद,
ऊधो अरु गोपीन को बरन्यो है सवाद।
जाको सुनि रस रत्न को होइ बनाइ प्रकास,
गोविन्द गोपी जन सहित करें हृदय में वास।
अष्टादश वसु षट् गिने सवत् करो विचार,
माधव शुल्का पचमी अदिति नषत गुरुवार।

आइए अब कवि की कविता कामिनी का रग देखिए। इन्होने अधिकांश कुण्डलियां दोहा, तथा सोरठा छन्द में लिखा है यत्र तत्र अन्य छन्द भी दृष्टिगोचर होते है। श्रीकृष्ण भगवान द्वारा प्रेषित ऊधव जी गोपियों को समझाने जाते हैं।

ऊधव को आयो सुनो बौरी देखन नारि,
भूखा ज्यों बगालिया भात भात पुकारि।
दुग्ध छम को बूझ के लै आई फिरि धाम,
ऊधव सों वे बूझहीं कहा कहो है श्याम।
हम तो शिक्षा देन को आए गोकुल ग्राम,
मिलिबे को यह जतन है योग बतायो श्याम

गोपी प्रत्युत्तर में कहती हैं।
उद्धव हीरा प्रेम तजि लेहि गरे में कांच,
जोई काछनि काछिये सोई नचिये नाच।
ऊधव लेहि योग कौ प्रेम देहि विसराय
घर को नाग न पूजिए बांबी पूजन जाय।

बूझो उद्धव जू सकल हमरे तुम्हरो ग्यान
अचलन के उपदेश को लाए ब्रज में ज्ञान।
लाए ब्रज में ज्ञान हिए की नाही जानै
मूर्ख बूझै नाहि गुलेल को विसनू सो ठानै।
कहै सदाशिव लाल रावरो बहुत समूझे
रहो मौन ह्वै सदा बात इनसों नहि बूझो।
ऊधौजू गोपाल की नही प्रीति में साच
चारदिना की चांदनी बहुरि अन्धेरो पाख।
बहुरि अधेरो पाख रास तन हमरे कीन्हों
जाको फल यह भयो योग गोपिन कह दीन्हों।
कहै सदाशिवलाल उन्हे हम जानत सूधो
रीति करतके प्रतीति भाषिए आपुन ऊधो।

चौपाइयों की रचना देखिए:—

जिनने प्रेम सुधा रस चाखो। ऊधो मन न कछू अभिलाखो
नीच प्रसग श्याम की भूल। समुझी कुतिया मखमल भूल
देखो उस करता क खेल। मोप छछूंदर परो फुलेल
नीकी अपनो नाहि कमाई। कैसे दोष देइरी माई
लहनो ना हमरो उन साथ, भरे समदर घोघा हाथ
रो न मानियों ऊधो व्रज को, लका छोटो बावन गजको॥

ईश्वरी कवि, सं० अज्ञात

आप मकरद नगर निवासी हैं कुछ कविताओं के अतिरिक्त अन्य वृत्त का पता नही चलता है। प्राप्त छन्दो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आप बड़े विनोदी स्वभाव के थे आपने जिस नायिका को लक्ष्य करके कहा है उसे पढ़कर आप स्वय ही पहचान ले—

सूनो घर पायो बौरि आई सहकान लगीं
पायो लै भाजि गई फेरि न दिखाती हो।
सोतो घर फारि तुम डराती हो नेक नाहीं
खावो फैलावो भडफोरू करि जाती हो।
कहत कवि गोपी बिन छेड़े न छेड़ो कोई
लहुतें खीसें काढ़ि बहुत ही खिसियाती हो।
ऐसा घर ध्यान कवि कहत रायइश्वरी
एक दांय काटि चुको पिरिकें गुर्राती हो।

वसरट्टा फर्रुखाबाद की प्रार्थिक सहायता में छपाकर प्रकाशित किया। सरस्वती के वरद पुत्र सदैव धनाभाव में प्रताड़ित रहते आये हैं। अतः राम जू भट्ट इसके अपवाद कैसे हो सकते थ। अतएव अर्थाभाव से त्राण पाने के लिए आप जयपुर नरेश श्री महाराज सवाई माधव सिंह जू के दरबार म पधारे और वहां राज पंडितों के साथ ठहराय गये। आपवहा तीन मास तक पड़े रहे पर आपकी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। एक दिन आपने महाराज से बिदा चाही; परन्तु महाराज ने आप को तीन मास के लिए और रोक रखा; तथा इसी अन्तर में एक दिन पण्डितों की सभा बुलवाई और भट्ट जी की विद्वता पर मुग्ध होकर महाराज ने उनको "सर्व शिरोमणि" की उपधि से विभूषित किया तथा दक्षिणा में एक बहुमूल्य दुशाला और ५०० स्वर्ण मुद्रायें (पाच सौ अशर्फियां) भेंट स्वरूप उपहार में दिया। जयपुरेश महाराजा सवाई माधव सिंह जू की हार्दिक इच्छा थी कि वह महाकवि राम जू को महाराष्ट्र चूणामणि बाजीराव पेशवा को भेंटस्वरूप प्रदान करजैसा कि उन दिनों रजवाड़ों में प्रचलन था। परन्तु आत्माभिमानी रामजू भट्ट इस बात को सहन न कर सके और रुष्ट होकर महाराज को उत्तर दिया कि क्या कवि भी किसी के बन्धन में रहते हैं जो वह भेंट स्वरूप किसी को उपहार म दिये जावें। महाराज सवाई माधव सिंह केवल यह कह कर 'महा पण्डित,विद्या के समान आपका भाग्य अच्छा नहीं है' मौन हो गये। जयपुर नरेश की पण्डित सभा द्वारा दिये गये ताम्र प्रमाण पत्र पर निम्नलिखित श्लोक अंकित था।

प्रालोकिता जयपुर द्विजवृन्द मुहत्ते, रामाख्य भट्टकविता सविता विभाति। श्री माधवेन्द्रगुरुणा हरिवत्सकेन, मुद्रांकिता नृपति वीर वराज्ञ ज्ञेयम्।

परन्तु काल चक्र के प्रभाव से आज इस सरस्वती के वरद पुजारी का कोई स्मारक अवशेष नहीं रहा। आज उनकी जन्म भूमि में उनके गृह द्वार का भी कोई चिन्ह अवशिष्ट नहीं रह गया है क्या यह हिन्दी भाषा भाषियोंके लिये परिताप तथा लज्जा का विषय नहीं है मुहल्ला। बजरिया अपने सुपुत्र के अस्तित्व को विलीन कर मौन विलाप कर रहा है। उसके आंसू पोछने वाला कोई माई का लाल दृष्टिगोचर नहीं होता है महाकवि रामजू भट्ट ने भी आचार्यत्व प्रदान के लिये ही 'श्रृंगार सौरभ' की रचना की थी। इसमें लक्षण दोहा तथा उदाहरण घनाक्षरी छन्द में दिया गया है। आइये, अब कवि की रसोद्रेक करने वाली मर्मस्पर्शी वाणी का रसास्वादन कीजिये। कवि शारदा की स्तुति में कहता है।

वृद्धा राजरानी आदि शक्ति ठकुरानी तहां
तेज को प्रकाश मन मोहत मुनीश को।
वासी हैं रमा सी औ उमासी हैं सवासी खासी
पावत न जात जहा मनहूँ शचीश को।
वांए कर बीन अरु दाहिने नवीन वर
कोटि मार्त्तण्ड कौ प्रकाश नखबीस को।
वारौं वारिजात नवपात पारिजात पद
जात जित ईश को के शीश जगदीश को॥
(श्रृंगार सौरभ से भी कुछ उदाहरण देखिए)

१

आवत इतै हो छिनु नाहक बितैहो कहा वाहि
दुचितैहो जहां बहु सुख पाए हो।
कुलहि तजो है किधौं सोवत तजो है वाहि जगत न जो
जिन बहुत रिझाए हो।
राम जो सुकवि आजु निपरक बात कहौ
जाते हम पूछें कौन विधि सुचिताये हो।
गहर लगैते वाहि सहर उजार लागै कहरि कै आए
वाहि जहर वै आए हो।
(मध्याप्रधीरा उदाहरण)

२

तेरे रग राचे याते बाचे और नारिनु ते
काचो नाचु नाचे अलि काहे तनु छीजैरी।
राम जो सुकवि भौंहें काहे को चढ़ाई बाल
तेरो सौंह खाति याते कैसिहू पतीजै री।
छुए वारि जात तैसे उसहू के गात छुए
तेरो मृदुता की समुता को कौन दीजै री।
होति हो अयानी हे सयानी तू हिरानी
कहां हारि उनमानी मानि मानमत कीजैरी।
(मध्यमान लक्षण)

तै तुम कुठार भार कोपहू अपार धरे,
गर्व सों गुमान है परशुराम नाम के ॥
मारो हूँ है कातर न शूर समुहानो कोई
डरत न क्षत्री है अयोध्यापुर धाम के।
देहु आशिषा को लक्षमण को प्रणाम लेहु,
विप्र महाराज आप रण के न काम के ॥

महाराज दशरथ महारानी कैकेई से कहते हैं—

"दश को सागर वारि प्रवाह में पार उतारन राम हैं बेरे।
ताहि तिया मति जानदे अन्त निहोरत तेरे सबै नर घेरे॥
केकय वश न होय कलक वितान यों तानिए जा जस केरे।
राम के राज के साज के काज ही रानीजू प्राण निवाजिए मेरे॥

आप बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। एक बार ग्रामवासियो के स्वभाव से विरक्त होकर आपने यह कहा था—

बालक खिलावे नोन तेल नित्य लावे,
पहुनाइवे को धावे नक मन में न मान है।
गठरी उठावे करें पिछ पिछ काम काम,
अति सुख पावे गहे गहन को दान है॥
धोती रहै निर्मल मलसों लपेटे हिय,
चुगली बरामद में आमद प्रमान है।
तुलसी निवाह सांचे लोगन को ना हियां,
कम्पिला में ऐसिन को होत गुजरान है॥

इनकी राम कथा सिकन्दरपुर खास जिला फर्रुखाबाद के प० महेन्द्रनाथ चतुर्वेदी के पास है।

इतनी अल्पायु में इतनी प्रतिभा असाधारण ही कहीजानी चाहिए। तुलसीराम जी इस क्षेत्र के निस्सन्देह एक गौरव रत्न थे।

('रसिक' वर्ष १ सं०२३)

मिश्र सुकवि

मिश्र सुकवि के नाम से एक रचना 'मेम विनोद' उपलब्ध है। कवि ने अपना निवास कम्पिल विषय और नाम सुकवि मिश्र बताया है। 'मेम विनोद' एक शृंगारिक रचना है जिसमें गगानहर के बन्दोबस्त के लिए आए हुए केप्टन बार्टोन की पत्नी श्रीमती मेम को लक्ष्य करके कवित्त और सवैए लिखे गए है। कहीं कहीं अति शृंगारिक होने पर भी रचना सुन्दर है। उदाहरणार्थ नि पद देखिए—

सेब सो ठोडी रू दाड़िम दांत सुविद्रुम ओठनु कोनु बखा
कज से नैन कपोल गुलाब से कीर सी नासिका भौंह कमानें
सीपि से श्रौन रू भाल मनोहर श्याम सचिक्कन केश पिछा
नागिनी वेनी सुभाति सी मांग धौ मिश्रजी देम ही की जगु जा

इनके सम्बन्ध का और कोई वृत्त नहीं प्राप्त होता है।

गोविंद प्रसाद 'महाभारती'

(जन्म सम्वत् १८६३-मृत्यु सम्वत् १९६३)

पं० गोविन्द प्रसाद महा भारती जन्म सवत १८६३ आपके पिता श्री भवानी प्रसाद चतुर्वेदी सुकवि रामजू भट्ट के शिष्य थे-इन्होंने रामजू भट्ट की पुस्तक 'शृंगार सौरभ' को शोध कर सम्वत् १९५७ में छपवाया था। आप संस्कृत और भाषा काव्य के मर्मज्ञ थ और मुहल्ला साहबगंज तरफ हरचन्द में रहते थे। इन्होंने 'भीष्म जीवन चरित्र' छन्दो में लिखा। आपकी दूसरी पुस्तक जगद्विलास है जिसमें शरद ऋतु का वर्णन भी सम्मिलित है, पर यह ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।'भीष्म चरित' से कतिपय छन्द उद्धृत किए जाते हैं—

१

बात सुनो हम से सिगरी,
इस दास ने जो हम से वर मांगो।
सेवा करै नहि जो हित सों,
अपने पितु की वह पुत्र अभागो॥
गोविन्द काज बनें सिगरो,
बिगरें न कुछु अस मो मन लागो।
आजु से जीवन जौलौं रहे,
हम तात के हेतु नृपासन त्यागो॥

२

आप के पुत्र अभी नहिं हैं,
जब होंहि तो देखि जरें पै जरें।
हम जेठिनु को दुत सतति हैं,
यह जानि के जग करें पै करें॥

विद्यासु दक्षा सुगुणाः सुयोग्या,
दिक्षु प्रजाता. पठिताः सुशिष्या.॥
शिक्षायता वै हरिशंकरेण,
महर्षिणा तेन विपश्चितेन्।
मृषा न वाणी कथिता कदापि,
सत्य सुवाक्य कथित सदैव॥
त्रिपाठिना वै परमेककन,
छान्दोज्ञ विप्रेण नतेन तेन।
तस्यैव पौत्रेण मयैवमित्य,
प्रालेखि देवी चरणेन वृत्तम्॥
अथैकदा ह्यत्र समागतो वै,
मुनिमहात्मा च विनय विज्ञ।
श्रीमद्दयानन्द इति प्रसिद्ध;
सुयावदूको विदुषां वरेण्य (सुविचारयुक्त)॥
तेनैव साकं हरिशंकरेण,
ह्यभूद्विवादः सुविचार युक्त।
गप्पेति शब्दे विफलप्रयास,
दिनत्रयेणैव समाज मध्ये॥
श्रीमद्दयानन्द कृते चरित्रे,
स्वजीवनस्यैव विचार युक्ते।
प्रालेखित वै ह्यमुनैव वृत्त,
विद्वत्वपूर्ण हरिशंकरस्य।
श्रीमद्दयानन्द मतानुयायिभि,
तैरेव गुप्त हि समस्त वृत्तम्।
अहो महाश्चर्यमिद हि विश्वे,
सर्वजना स्वार्थ परा भवन्ति॥
अथैकदा भूत्समितिर्नराणां,
सनातनस्यास्य मतस्य मध्ये।
तदा अहो वै सुकृतो महान्हि
निहालचन्द्रेण सुशिष्यकेन॥

शिव भक्त श्री देवीसहाय जी वाजपेई

(सं० १८९०-१९६५)

श्री देवीसहाय जी वाजपेई सरायमीरा कन्नौज जिला फरुखाबाद के निवासी थे। आप शंकर जी के अनन्य भक्त और अनन्य साधक थे। आपने भगवान भूतिभावन काशी विश्वनाथ के गुणानुवाद गायन में अपना सारा जीवन लगा दिया। प्रौढ़ावस्था में आप बन में जा बसे थे और शंकर को अपनी भक्ति से पदों को सुनाकर अपनी आंखों को खोई हुई ज्योति पुन प्राप्त कर लिया था। इनके गीत 'शैव मनोरञ्जनी' कई भागों में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन्होंने कवित्त लिखे हैं। आज भी यत्र तत्र सर्वत्र के भक्त गण आप रचित भजनों द्वारा भगवान शंकर की आराधना करते हुए शैव मन्दिरों में देखने में मिलेंगे। आपकी कुछ रचना नीचे दी जाती है।

(१)

गिरिजा पति चरण मनाये। टेक
तेकरि दूरि त्रिविध ताप भय सुलभ परम पद पाए
सुयश छाय तिहुँ लोक में अति आनन्द भूरि बढ़ाए
अतिहि शोक के पुंज जगत के सब निज हाथ नसाए
मगन ध्यानरत रहत सदा मन नेक विकार नहि आए
दारुण दाह दूरि करि भरि मुद हँसि हरलोक सिधाए
यही जानि हित मानि नित हरषि रोम तनु छाए
'देवीसहाय' शरण चाहत मन करो काज मम भाए॥१॥

(२)

भज दीनबन्धु दयालु शंकर जानि जन अपनाइयो।
भवधार पार उतार मोकों निज समीप बुलाइयो।
जाने अजाने पाप मेरे तिन्हें आप नसाइयो।
कर जोरि जोरि निहोरि मांगों वेगि दरश दिखाइयो।
'देवीसहाय' सुनाइ शिवजी को प्रेम सहित जो गावहीं।
जग जोनि से छुटि जाहि वे नर सर्वदा सुख पावहीं॥

गणेशदत्त शास्त्री कन्नौज

(सं० १९३७ के लगभग)

म० म० गणेशदत्त शास्त्री, विद्यानिधि व्याख्यान वाचस्पति के नाम से सब लोग भली भांति परिचित हैं। आप कन्नौज के मु० सिपाही ठाकुर के निवासी थे। बहुत वर्षों तक विद्याजन और भ्रमण करके ग्वालियर में रहे थे। आपने १४ संस्थाओं को जन्म दिया। आप व्याख्यान दाता होने के साथ साथ कवि भी थे। 'शिवपुरी सुषमा' नामक ग्रंथ लिखा है जिसकी एक कविता का उदाहरण निम्न है।
निरखि शिवपुरी छटा, अमल अलका भूकि झाकति।
सखि सपति अलकेश, नृपति माधव मुख ताकति॥

धन्य ध्यान जाके परि पाके मुनि बृन्द,
श्री ग्रनन्द मद छाके जाके पति गिरजा के हैं।
पूरण कला के कमला के कन्त हैं 'रमेश'
तारन शिलाके ये कुमार कौशिला के हैं।

(३)

केतिक कराल कलिकाल की कठोर कला,
काम क्रोध कपट कुकर्म कुटिलाई है।
कहै कहा कोऊ कछु करनी कुलीनन की,
करत कुकर्म कहूं कर्म ही कराई है।
कोविद रमेश कहूं किंचित कुशल कैसो
कामनी कनक कोटि कामना कराई है।
काटिए कलेश कारुणीक कमला के कंत,
करोगे कृपा तो कहो कौन कठिनाई है।

(आपने तात्कालिक देश की दुर्दशा पर भी अपने उद्गार प्रकट किए थे।)

(४)

आलस त्यागि करो पुरुषारथ, ताते यथारथ काज फुरंगे।
उद्यम श्रौर उपाय करों तब ग्रापुहि देश के दुःख टरंगे
ग्राकरी चाकरी में न चलं, इमि दास बनें नहिं पेट भरंगे।
भारत भूमि के भाग जगेंगे, 'रमेश'जू वे दिन फेर फिरंगे।

(५)

ग्रारत भारत गारत ह्वै रह्यो, जानें कहा दिन खोंटे करेंगे।
कालके गाल के ग्रास भये, बहु देखें ग्रकाल में केते मरेंगे।
कौलों 'रमेश' कलेश सें देश के, बासी ग्रदेश के पाले परेंगे।
ह्वै है कहा ग्रब हे मेरे राम कहो कब ये दिन फेरि फिरेंगे।

(ग्रापकी गंगा लहरी से भाषा की उत्कृष्टता के उदाहरण निम्न हैं।)

राजें ईश शीश पे फणीश कुण्डली के बीच,
तहां रजनीश शीश धाय परसत है।
पान किए नेकहू ग्रनेक रोग मेटत,
ग्रमन्द इन्दु मुखते पियूष बरसत हं।
पाए जन्म भरि के कमाए पाप एकै बार,
न्हाए ते गमाये ऐसो सुख सरसत है।
करसत मुदित मन, हरसत हैं 'रमेश'
गंगा जल विन्दु में गुविन्द बरसतहै।

कवि ने शिखरिणी छंदों का हिन्दी में प्रयोग गंगा लहरी में किया है, जिसका उदाहरण निम्न है।

ग्रमेटं हू मेटं, तट निकट जल पियें।
लहेटं श्रो बेटं, भरहि निज पेट, थिर जिए॥
सुखं भेटं नीके, बहुविधि समेटं, मुद नरं।
कहे गंगा, गंगा, निरखहि तरंगा, नव तरं॥

ऊपर कहा जा चुका है कि उर्दू कविताओं में व श्रृंगारिक कविताओं में आप दिलेलेले उपनाम का प्रयोग करते थे। आप कुत्तों को बहुत प्रेम करते थे और मजबूरों को मेंट थे। कुत्तों को मिठाइयां खिलाते थे। वे स्वयं कुछ ऐसी भाषा में रोते थे कि कुत्तेभी साथ साथ रोने लगते थे। आपका मुख कुरूप था और गलमुच्छे रखते थे। पूर्ण कवि होने में कोई सदेह नहीं था। आपकी मृत्यु लगभग १९९२ सम्वत में हुई थी। आप हास्य प्रेमी थे। 'दिलेलेले' उपनाम से एक होली निम्न है।

ग्राली फाग की उमग,ग्रग,ग्रग, रागरंग,हांसी की तरग पै तरंग उठै वेरि वेरि, ऊधम मचावें, ग्रठिलावें,इतरावें गावें, इत उत धावें, लावें एक २ घेरि २, कूदि किलकारी देत, गारी देत, तारी देत, भरि पिचकारी देत, गेरि कीच में लपेंटे।
तामें ग्रलबेले दिलेलेले जी ग्रकेले,
रेले-पेले ठेले,घुसे जात हहरि-हरसि हेरि।

सुकवि श्री लालमणि पाण्डे (प्रमोद)
(जन्म सम्वत् १९११ मृत्यु सम्वत१९६०)

श्री प्रमोद कवि के पिता का नाम श्री रामसेवक पाण्ड्ेय था। ग्राप मुहल्ला रंटगंज फर्रुखाबाद शहर के रहने वाले थे। ग्रापने सुकवि रामजू भट्ट द्वारा सस्थापित एकादशी कविसम्मेलन का पुनरुद्धार किया था ग्रापने ग्रपने समय में नगर में कविता का ग्रच्छा प्रचार कररखा था श्रौर ग्रच्छी खासी शिष्य मडली जमा कर रखी थी। ग्रनूप, ध्यान, श्रीवर,प्रकाश, प्रेमी ग्रादि ग्रापके मुख्य शिष्य थे। प्रत्यक एकादशी को कवियों का जमघट कसेरट बाजार में होता था श्रौर सुकवि लोग ग्रपनी कविता द्वारा माता सरस्वती का ग्रभिनन्दन श्रौर जनता का मनोरञ्जन किया करते थे। ग्रापकी स्फुट कविताओं का कोई सग्रह नहीं मिलता। यत्रतत्र लोगों से ग्रापके छंद सुनने को मिलजाते

श्री लाला मथुराप्रसाद 'अनूप'
(जन्म सं० लगभग १९२२ मृत्यु सं० २००६)

श्री लाला मथुराप्रसाद 'अनूप' का जन्म संवत् लगभग १९२२ मुहल्ला खनराना फर्रुखाबाद में हुआ आपका लालन पालन आपके बाबा श्री युगल किशोर ने किया था। आप महाजन वंश्य थे। आपकी पाठशालीय शिक्षा नहीं के बराबर थी। पर आप सतसंगी और बहुश्रुत अनुभवी और जन्मजात कुशल कवि थे। आपने ब्रजभाषा में ही कविता की है। देखिए.—

(१)

परताप से राना से वीर भए, तिनके ढिग नेक न बाने रहे।
हरिचन्द्र से दानी नरेश महा, तेउ डोम के हाथ बिकाने रहे।
बलवान 'अनूप' गतीविधि की, भ्रमजाल में राम भुलाने रहे।
कितहूँ कबहूँ कछु देखे सुने, कहो एक से काके जमाने रहे॥

(२)

साजे बाजि स्यन्दन मतंग मतवारे कारे,
धूम धारे धौसन धुकार धमकत है।
रेशम के ललित निशान फहरात नीके,
पैदल सिपाहु की जमात जमकत है॥
राम और रावण को समर सुदेव देखे,
करत 'अनूप' वार रोष तमकत है।
मारु मारु मारु को उचार मुख बीरन के,
चारों ओर युद्ध में कृपाण चमकत है॥

(३)

द्रोण, दुरयोधन, दुशासन, करण आदि,
कोटिक कटक साजि जोरी अतिभारी भीर।
चारों ओर घोर शोर समर करन काज,
सिंधुराज गाजे दरवाजे रोके रणधीर॥
भीम सहदेव और नकुल धरमराज,
रहें हैं पिछारी कोऊ पहु चो न ताके तीर।
पोदव में प्रबल प्रतापी पूत पारथ को,
भटन सकेलो पैठो व्यूह में अकेलो वीर॥

(४)

मंजु मोर मुकट की झलक 'अनूप' राजे,
केशर तिलक रेख छवि की विचारिले।
पीत पट मुरली लकुट बनमाल उर,
चचल चितौनि चित चातुरी संभारिले
कीरति किशोरी वेगि कीजिए उताल गौन,
साजि अगराग हुलस मन को निकारिले
सघन कदंब कुंज तरणि तनूजा तीर,
श्याम की अनोखी छबि नैनन निहारिले।

उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखिए और कवि सूझ बूझ की सराहना कीजिए:—

(५)

कैधों है मयंक अंक लसत पियूष बूंद,
कैधों कंज उरदै माल मोतिन पसारी है।
कैधों रूप सागर में भाग दरसात,
कैधों मेन रंगरेज बाँधि चूनरी सवारी है।
कैधों हेम भूमि में जड़े हैं पुष्प राग भाग,
कैधों कामदेव की 'अनूप' फुलवारी
कैधों प्यारी आनन में शीतला के दाग,
कैधों, कारीगर विधि की विचित्र चित्रकारी

श्री लल्लू लाल 'सुरसरि कवि'

आप वैश्य थे। शहर फर्रुखाबाद मुहल्ला सं के निवासी तथा 'प्रमोद' कवि के शिष्यों में आपका अधिक वृत्त ज्ञात नहीं है। आप की कविता का छन्द जो प्राप्त हो सका नीचे दिया जाता है।

घन घहराय घोर धौसा की धमक जोर,
चातक चकोर मोर सोर सुनि धाए हैं
बकन की पांति नभ भांति भांति के जमाति,
जोगिनी जमाति जोरि जामिनी जगाए हैं
दास 'सुरसरि' कवि कौंधा की कौंधनि कौंधि-
कौंधि कै कौंधति कृपाण चमराए हैं।
ग्रीषम गरूर गढ़ गेरिवे के काज आज,
पावस नरेश सैन साजि सजि धाए हैं।

स्वर्गीय श्री भगवतीप्रसाद शुक्ल 'श्रीवर' भी एक नवयुवक सुकवि होगए हैं। आप मु० कटरा नुनहाई में रहते थे। आप का ३० वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्गवास होगया आप भी कविवर प्रमोद के शिष्य थे। आपका एक छन्द ही मिलसका है जो नीचे दिया जाता है।

कवि सम्राट पं० बाबूराम जी शुक्ल
(सं० १९२२–सं० १९९४ वि०)

पदार्थ वाचस्पति कवि सम्राट का जन्म नगर फर्रुखाबाद मुहल्ला कटरा नुनहाई में हुआ था आपके पिता पंडित पंचानन श्री वृन्दावन जी शुक्ल, सजुहा जिला फतेहपुर से आकर यहाँ बसे थे यह घराना अपनी संस्कृत विद्या के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था पंडित प्रवर श्री बाबूराम जी संस्कृत तथा हिन्दी के उद्भट विद्वान, भाष्यकार और कवि थे। आपने जिला प्रतापगढ़ ग्राम विद्याधर निवासी श्री माधवाचार्य जी से शिक्षा प्राप्त की थी, जो यहा के प्रसिद्ध टोकाघाट पर सन् १८६८ से निवास करते थे। कहते हैं कि इन्होंने शास्त्रार्थ में एक भूत को पराजित कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। वह भूत एक सेठ के लड़के के माध्यम द्वारा शास्त्रार्थ किया करता था और नगर के तत्कालीन सब पंडितों को शास्त्रार्थ में हरा चुका था। आप बड़े गुरु-भक्त थे। जीवन पर्यन्त आप अपने गुरुदेव का तर्पण और श्राद्धादि कर्म करते रहे। उनकी सुस्मृति में 'गुरु नक्षत्र माला' नामक एक छोटा सा संस्कृत काव्य लिखा। उदाहरण स्वरूप नीचे दो श्लोक दिये जाते हैं। जिनके अनेकार्थ भी किए ह

> शंख चक्र लसत्काय, रामानुज मतास्पदम्।
> सदेवत श्रियोपेत, माधव राममाश्रए॥ १॥
> रटन्त नाम वदार, मदार चात्मनिदिनाम।
> स्वान्ते वासिवु मन्दार, मन्दार माधव भजे॥ २॥

आप बड़े ही संयमी तपोनिष्ठ तथा साधुप्रकृति के साथ ही वृद्धव्रती कट्टर तथा स्वयंपाकी ब्राह्मण थे। आप को बेल, गूलर तथा गंगा जी की रेणुका बड़ी ही रुचिकर थी। यही इनका मुख्य भोजन और पेय गंगाजल था। नित्य प्रति एकान्त में गंगा स्नान करना आपका नियम था। आप एक कुशल तैराक भी थे और २०,२५ मील तैरते चले जाना आप के लिए खेल था इसी गुण के सहारे आप ने सन् १९२४ की गंगा बाढ़ के समय अनेकों प्राणियों की जीवन रक्षा कर सुयश अर्जन किया। विद्या-व्यसनी होने के नाते सनातनधर्मावलम्बी होते हुए भी आप आर्यसमाजी ईसाई तथा इस्लामी धर्मों की सभाओं में भी भाग लेने और उनके पंडितों मुल्लाओं तथा पादरियों में शास्त्रार्थ कर विजयश्री लाभ करते थे। आप शालिग राम सनातन धर्म संस्कृत विद्यालय फर्रुखाबाद तथा डी० जे हाई स्कूल कन्नौज में संस्कृत के अध्यापक रहे तथा अपनी अनोखी शिक्षापद्धति के लिए प्रसिद्ध थे। घर पर गुरुकुल के ढंग की शिक्षा देते थे। शिष्यों को प्राणों से अधिक प्यार करते थे, पर अनुशासन में बड़े कठोर थे; आपको किसी प्रकार की उदारता तथा पठन पाठन में प्रमाद असह्य था। इनका रहन सहन सादा था। आप सच्चे देश भक्त थे। राजनीति में भी भाग लेते थे, और असहयोग आन्दोलन के समय में डी०जे० हाई स्कूल से असहयोग कर घर बैठ रहे। यद्यपि आप के अन्य साथी अध्यापक फिर स्कूल में कार्य करने लगे किन्तु आपने बुलाने पर भी पुन पैर नहीं रखा और फर्रुखाबाद स्थित हरनन्दराय की पाठशाला में मुख्याध्यापक होकर प्राचीन पद्धति से अध्यापन का कार्य करने लगे। आप की विद्वत्ता की धाक नगर की तत्कालीन सातों पाठशालाओं के विद्यार्थियों पर थी और वे पण्डित जी का गुरुवत समादर करते थे। आप सफल सुकवि, ग्रन्थकार, सम्पादक, तन्त्रमन्त्र कर्मकाण्डाचार्य तथा सुबलिष्ठ पहलवान भी थे। कान्यकुब्ज महती सभा का प्रमुख पत्र 'कान्यकुब्ज' फर्रुखाबाद से ही सन् १९०५ में प्रकाशित हुआ था। आप इसके प्रकाशन, सम्पादन तथा प्रचार में मुख्यरूप से सहायक थे आप अंग्रेजी, फारसी तथा उर्दू के भी ज्ञाता थे। आप के रचित ग्रंथों की सूची तथा उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१—'लल्लू लुगत'–यह एक कोष–ग्रन्थ है। यह बालकों के लिए हिन्दी अंग्रेजी के मिश्रित रूप में लिखा गया है। देखिए —

> हे 'कैरोल' गानमंगल रा, 'बून' अशीष बताई।
> 'काग्रेचूलेशन' के माने जयजयकार बधाई॥
> ईश्वर 'गाड' खुदा भी कहिए 'नेचर' 'मौला' खुदाई।
> 'अर्थ' जमीन सूर्य 'सन' चन्दा 'मून' गगन 'स्काई'॥
> लल्लू कैसी लुगत बनाई।

२—'म्लेच्छोचित सुधाकर'–यह उर्दू तथा फारसी वर्णों में न्यूनता तथा उच्चारण दोषों पर व्यंगोक्ति के रूप में है।

११–श्री राम नाम सुधाकर' में आपने राम नाम की महिमा दिखलाई है और सिद्ध किया है कि राम से शून्य कोई वस्तु नहीं है। १२–'गुरु नक्षत्र माला' में आपने अपने गुरुदेव का स्तवन किया है इसका ऊपर वर्णन और उदाहरण दिया जाचुका है।

इसके अतिरिक्त आपने अनेकों गोरख धन्धो यन्त्र मन्त्र और तन्त्रों को जन्म दिया। आपने 'महाशय जी नमस्ते समीक्षा' एक और ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रंथ में आपने सोलह प्रकार के अर्थ किये हैं और सिद्ध किया है कि यह शब्द केवल ईश्वर के लिये प्रयुक्त किया जाना चाहिये। इसका अन्य पुरुष के लिए प्रयोगवर्जित है और अभिशाप स्वरूप सिद्ध होता है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त आप की अन्य छोटी छोटी कृतियां भी हैं जोकि उनकी साधना और विचक्षणता की परिचायक है। उनके ग्रंथों को साधारणतया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं यथा— भाष्य ग्रंथ एवं काव्य ग्रंथ। ये संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही में लिखे गए हैं। श्री बाबूराम जी शुक्ल को शारदापीठ के श्री १००८ शंकराचार्य महाराजा ने उनके अगाध पाण्डित्य पर 'कवि साम्राट' सम्मान सूचक पद प्रदान किया और सस्तुति पत्र भी दिया तथा महाराज गिद्धौरे ने आपकी विद्वता पर मुग्ध होकर आपको 'पद्यवाचस्पति' की पदवी देकर सुसम्मानित किया।

आपकी रचनाओं के ऊपर सम्मतियों का एक संग्रह है जिसमें देश के प्रकाण्ड विद्वानों की प्रशस्तियां संचित हैं।

वास्तव में पंडित जी हमारे नगर के एक गौरव थे। आपने जिस धैर्य और तत्परता से अपनी मेधा का परिचय दिया है वह अतुलनीय है। ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति के लिए सिद्धि ही स्वयं सिद्ध होती है। आपके एक मात्र पुत्र श्री राजेन्द्रप्रसाद जी शुक्ल बड़े ही सज्जन, व्यापार कुशल व्यक्ति है आप कविताप्रेमी तथा स्वयं भी कवि हैं।

श्री गिरवरसहाय जी पाण्डेय

जन्म सं० १९२९ मृत्यु सं० १९७९

ग्राम० अकबरपुर जिला फरुखाबाद निवासी श्री गिरवरसहाय जी 'श्री गिरीश' का जन्म सम्वत् १९२९ में हुआ तथा आपकी मृत्यु ५० वर्ष की अल्पायु में ही होगई। आपको बचपन से ही कविता में रुचि थी। आपने अनेकों पुस्तकों का ब्रजी तथा हिंदी में प्रणयन भी किया था। आपकी रचित 'श्री गिरीश पिंगल' अपने विषय की एक बड़ी ही अनूठी पुस्तक है। आप अच्छे काव्य मर्मज्ञ भी थे। नीचे आप की कविता के कुछ उद्धरण दिये जाते हैं। सरस्वती की वन्दना में पाठक देखेंगे कि शब्द विन्यास और अनुप्रास की कैसी मनोहर छटा दरशाई गई है.—

मुद मंगल मोदक भूरि मजा, मुकुती महि में महि के मुसकानी,
महती महिमा महराय महो, मदमोह मलीन मनै मुरझानो।
मुनि मानस मञ्जु मरालन में, मरकोय मकार महत्व महानो,
मृदु मत्त मराग मुखाम्बुज में, मति मोय महा ममता मन मानो।
मुख मंजुल मोतिन माल मनो मुरकी मुदरी मुकती महिमानो,
मुसकानि महातम मो मति में मदमटि मयक मयूषनि मानो।
महजी मद मंत मिटावन में मन मेरो मनाय महत्व महानो,
मुद मोंदहि मानस मार महा महमाई महा महरानि मृडानो।

श्री मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के बालस्वरूप की अनुपम झांकी का दर्शन कीजिये।

मृदु मूरति बाल बसी मन में मुनि शंकर के सुस्वरूपहि प्यावों
जेहि के शिशु कौतुक मातु पितापुर भूरिदए यश को नित गावों
द्युति दाड़िम दामिनिजादतियां कुदरू अधरामृत को हितपावों
शशि हास असह्य प्रभाकर भा रघुराज सदा पद पद्म मनावों

श्री गिरीश जी ने गीत गोविन्द के अनुकरण पर 'विरहिणी विलास' नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी थी जिसको पढ़ कर विदग्ध पंडितगण आत्मविभोर हो जाते हैं। उसके कतिपय छन्द प्रस्तुत हैं। मधुमास का कैसा मनोरम वर्णन है, विरहिणी की व्यथा का कैसा संवेदना पूर्ण वर्णन आंखों के समक्ष उपस्थित होजाता है—

नभ अगार लसै युगल कलाधर, अमित मदन छवि छाय।
हास विलास लेत मन मोहन, षोडस कर दरसाय॥
आजु कछु औरै छवि सरसाय॥टेक॥
निज छवि नाशिनि भवन विलासिनि, मद मन उमग बढ़ाय।
चकित चित्त चितवत चहुँ ओरो जन जिय लेति चुराय॥

जगत भुलावे सोऊ भूले सुधि सारी,
जब छीन लीनो छैल को छबीली आज बाँसुरी।

(६)

बिकल बिहाल बाल आज अवलोकी ग
कहा कहौं हाल वाको चलत उसाँसुरी।
पलक न लावें पलपल बिलखा
बात करे अनखावें औ ढारें नैन आँसुरी।
पीरी परजोयँ क्यों सीरी हवे जो
'मनु' मदन विशिख की है करकत पाँसुरी।
धीर नहिं धारें नैन सैंन न निहा
हाय जब से सुनीहै वाकी विषभरी बाँसुरी।

(२)

अकरम लीन सब बिधि मुकरम हीन
अगुन प्रवीन रच गुनना गसो रहै।
रैन दिन कुटिल कुचालिन सन काल जाय
कलह करे कोनित कमर कसो रहै।
आय अब हेरी तेरी कृपा केरि कोर राधे
कवि 'मनु' उर अभिलाष यों धसो रहै।
नित नव नेहन सों राधे पद पंकज में
मेरी मति मञ्जुल मलिन्द सी बसी रहै।

(३)

लजात जात,

आज अनुराग मई बाग में बिलोकी बाल
अंग अग में अनग रग बरसात जात।
नैन भू कमान कज इन्दु कपोल गोल
अधर निहार बिंब बिद्रुम बिलात जात।
हीरकनी हार जात दाडिम दरार खात
दामिन से दूनी दुति वत दरसात जात।
यौवन उमगात जात गात पुलकात जात
मन्द मुसकात जात मन में लजात जात।

(४)

लोभ, मोह, मद, मतसर में समात जात,
हाय हाय करत ही तेरे दिन रात जात।
दारागार पुत्र पौत्र प्रेम पुलकात जात,
'मनु' अनखात जात नित अन खात जात।
कैसो जमुहात जात नैन अलसात जात
छिन पल घरी घरी मुख पियरात जात।
खाली पछतात जात भजन भुलात जात
काहे मन मूढ़ फेर मन में लजात जात।

(५)

बाँसुरी,

भूल गये गौअन चरायबो सखान सग
भूल गये माखन चुरायबो उसासुरी।
भूल गये भाँति भाँति खेल खेलबोहू
'मनु' भूल गये वन को बिहार हार खासुरी।
भूल गए बन्सीवट पनघट तट अहो
भूल गये कालिन्दी कछार कूल पासुरी।

श्री शिवदत्त त्रिवेदी 'हरिजू'

जन्म सं० १९४४ विक्रमी:—

श्री हरिजू का जन्म श्रावण शुक्ल २ संवत् १९४४ को प० रामचन्द्र त्रिवेदी वैधराज मुहल्ला कटरानुनहा फर्रुखाबाद के यहाँ हुआ। आप पहिले जिला बोर्ड फर्रुखाबाद में अध्यापन का कार्य करते थे; पर बाद में पैतृकव्यवसाय अपनालिया। आप बड़े कुशल और अनुभवी वैद्य हैं तथा अपने नाडीविज्ञान के लिए दूर दूर तक प्रख्यात हैं। साहित्यिक अभिरुचि भी आपकी जन्म जात है। आप उच्चकोटि के सफल कवि हैं। आप विशेषतया ब्रजभाषा में ही कविता करते हैं। आपकी कविता में अलकारों की छटा दर्शनीय होती है तथा भाषा में प्रवाह है हरदुआगज अलीगढ़ के सुप्रसिद्ध कविवर नाथूराम शंकर शर्मा आपके कविता गुरू थे। श्री हरीशकर शर्मा सपादकाचार्य आप के गुरुभाई हैं। आप दगलाचार्य भी हैं तथा आपके पैतृक अखाड़े में नवयुवकों को मल्लविद्या की शिक्षा भी दी जाती है। आपने कई काव्य पुस्तकें लिखी हैं; किन्तु अभी सभी अप्रकाशित है। इधर आप बहुत शिथिल हो गए हैं नेत्र रोग तथा पक्षाघात के भी आप शिकार हो चुके हैं। इतना सब कुछ होने पर भी आप प्रत्येक साहित्यिक समारोहों में सोत्साह भाग लेते रहते हैं आप स्वभाव के सरल, स्नेही साथ ही खरे और अतिशयोक्ति प्रेमी हैं। वचनेश जी और आप नगर में समान लोक प्रिय हैं। दोनों ने इस नगर के साहित्यिक जीवन को अमर चेतना दी हैं। 'हरिजू' की कविता अत्यन्त

देखिए कवि की प्रयोग शाला का एक प्रयोग

(नारी प्रयोग)

मूसा को वरस में वियोगिनी बुलालो एक
आंसुओं से उस के ही खेत सिंच जाएगा।
शीतकाल में उसी को एवरिस्ट भेज दो
तो पाला तप्त स्वासों से ज्वाला बन जाएगा।
घोर अन्धकार में मयङ्क मुखी सामने हो
आनन उजास सों प्रकाश बढ़ जाएगा।
वायु को जरूरत जुलाव की जो हो तो, बस,
बीबी जरा डाट देगी जगल हो जाएगा।

श्री रामभरोसे वाजपेई 'प्रेमनिधि'

जन्म संवत १६५३ वैसाख शुक्ल तृतीया अकबरपुर तहसील छिबरामऊ। आपके पिता पंडित सुखदेवलाल जी वाजपेयी पोस्टमास्टर थे। शैशवावस्था में ही मातृ–पितृ विहीन होजानेपर लालन–पालन ताऊ प० ज्वालाप्रसाद जी वाजपेयी (हकीम) ने किया। बृजभाषा के माधुर्य से आकृष्ट होकर तथा अपनी पाठ्य पुस्तकों में कविवर बिहारी जी के दोहों से प्रभावित होकर दोहे लिखने लगे।

आप अत्यन्त सरल प्रकृति और मधुर स्वभाव के व्यक्ति है। भाषा सजीव है। कविता रीति कालीन पथ पर ही अग्रसर होती रही है। दोहा,कु-डलियाँ लिखने में विशेष सिद्ध है। कवियों के प्रति श्रद्धा भक्ति के विषय में आपकी स्वयं की ही उक्ति है।

कवि-गान-मन रञ्जन सदा मानिन सों अति दूर।
सज्जन-पद-रज सिररों कूरन को अति कूर ॥१॥
मिलों तो पय सम ह्वं मिलों नाम-वर्ण कह एक।
तिल-तंदुल सम प्रेमनिधि मिलन न भावे नेक ॥२॥

प्रभात (दिनराज स्वागत)

नाचि नाचि कलिका बजाय करतारी हँसि
त्रिविधि बयारि मन्द बिजन डुलावती।
द्विजन-निनाद, जयकार को मनोखो धुनि
आगे ह्वं मलिंद-भौरि गुन-गन गावती।
प्रेमनिधि कोक कोकनद ह्वै उठे हैं फूलि,
भाजि भौर-तमीचर बदन दुरावतीं
प्रवल प्रचंड तम-तोम खंडि खंडि करि
देखो मारतन्ड की सवारी चलीं आवती ॥१॥

मित्र वियोग (सूर्यास्त)

दुखित सकल द्विज गावत फिरत गुन,
पकज सनेही क वियोग सकुचावते।
पावन सखानी नहरानी भौर भौरन की,
कोकी बिललानी लखि प्यारो बिलगावते॥
ओस मिस अश्रु बिन्दु लागे हैं भरन चहुँ,
प्रेमनिधि बिकल वियोगी बिलखावते।
जगत महारो हितकारो अविकारी मित्र,
मन्द मुसकाय दमकाय दुति जावते।

दोहावली से

लोभ-रजनि तामस-तमस निसचर निकर अनङ्ग।
दुरत तुरत हिय प्रेमनिधि प्रगटत प्रेम-पतङ्ग ॥८॥
जो जहँ होवें लीन, सोई तट ताकहु रुचिर।
नतु अगाध तटहीन,प्रे म-पयोनिधि प्रेमनिधि॥६॥
सुनें हायन प्रेमनिधि, कस भटियें गुपाल।
वरुनी-कर मह एकतो, होय मोतियन माल ॥३॥
नैन द्वार मुतियन जड़ी, वरुनी बन्दनवार।
अगवानी सखि पूतरी, उमिल हृदय किवार ॥४॥

श्री बचनेश जी के प्रति

काव्य-कलाप-कुमोद-वन उदित चन्द बचनेश।
उजियारी-कीरति विमल छिटकी रहै हमेश ॥१॥
काव्य-कुञ्ज-प्रफुलित सरसि चञ्चरीक बचनेश।
गुनि-गन मानस प्रेमनिधि गुञ्जित करैं हमेश ॥२॥
कविता रतनाकर अगम मुक्ताहल बचनेश।
कवि मराल निशि दिन चुगैं तऊ न पावें शेष ॥३॥
श्री बचनेश, अबोध, हरि, श्री रमश कविराय।
कवि-कुल-कुसमोद्यान की सुरभि रही चहु छाय ॥१॥
सुरभि रही चहु छाय प्रेमनिधि-मधुप लुभानो।
कविता-रस करि पान छकित ह्वं चकित भुलानो ॥२॥
वीणा वादिनि बीन हिय बाजत रहो हमेश।
तासु सुकीति समोद नित गाई श्री बचनेश॥

भाई भउप्पन लोजं किती
भउजाई से को सो सिपारस कोजं ॥

अन्त में अभिसार के दर्शन कीजिए:—

अभिसार

ढकि आननी लाडिली की छवि
मन मंन उतंग भयो मचला।
मति मोरी किसोरी दुरं मुकरं
हरिपांव परं पकरं अंचला ॥
छिति माचो दुहून की केलिकला
नभनाचो विभावरी चन्द्र कला ।
किए लाख हहा हू न मानं लली
नहि लाख नहीं किए मानं लला ॥

कविवर लक्ष्मीनारायण जी गौड़ 'विनोद'

जन्म सं० १९५४

स्वर्गीय कविवर श्री लक्ष्मीनारायण जी गौड़ विशारद 'विनोद' पं० कमूलाल जी गौड के आत्मज थे आप का जन्म सं० १९५४ विक्रमी श्रावण मास में कटरा नुनिहाई फर्रुखाबाद में हुआ था। विनोद जी को बाल्य काल से काव्य से प्रेम था। हास्य की रचनायें लिखकर बचपन में भी गाया करते थे।

विनोद जी के जीवन का स्वर्णकाल महाराज अवधेश सिंह जू कालाकाँकर नरेश के यहां बीता प्रारम्भ में आप श्री हरि के उपनाम में कविता लिखते थे किन्तु इनकी विनोद प्रियता से प्रसन्न होकर महाराज साहब ने इन्हें विनोद उपनाम से विभूषित किया यहां आपने श्री वचनेश जी के साथ दरिद्र नारायण नाम के मासिक पत्र का सम्पादन भी किया।

सं० १९९१ में आपने श्री वचनेश जी के साथ मिलकर फर्रुखाबाद से भी रसिक नाम का मासिक पत्र निकाला जो कुछ समय तक सफलता के साथ निकलता रहा।

श्री महाराज अवधेश सिंह के स्वर्गवास के पश्चात् आप पुनः फर्रुखाबाद आगए और कवि कोविद सघ नाम की संस्था का सफलता पूर्वक संचालन किया इस संस्थाने नगर में जो साहित्यिक वातावरण उत्पन्न वह आज भी स्मरणीय है इनके जीवन के अन्तिम में ही इनकी प्रिय संस्था समाप्त हो गई जिसका बहुत दुख रहा।

आपकी कविता अधिकांश फुटकर छन्दों के में ही प्राप्य है शान्तनु नाम से एक खण्ड काव्य लि का प्रयास किया जो अपूर्ण मिलता है फिर भी जितना वह अत्यन्त सरस भावपूर्ण एवं प्रसाद गुण सम्पन्न है।

हमारे जिले में उत्पन्न होने वाले साहित्यिकों इनका प्रमुख स्थान है।

शान्तनु

(१)

पल्लवित पादप प्रसून परि पूरित थे,
बिखरी विपिन मे बसन्त श्री दिखाती थी
विविध विहङ्ग कल कूजित कलित ध्वनि
मन में नवीन ही उमङ्ग उपजाती थी
शान्तनु 'विनोद' वश विचर रहे थे वहां,
यमुना सुरम्य तीर पर लहराती ?
मधुर-मधुर मन मोहक समीप ही से
सुखद सुगन्ध मन्द मन्द चली आती थी।

(२)

सौगुनी जलज मलयज से सहस्त्र गुनी,
पाटल प्रसून से अपूर्व मदमाती थी
मृग मद मात करती थी अष्ट गन्ध को भी
पारिजात पुष्प के सुवास को लजाती थी,
मधुर-मधुर भीनी मुग्ध करती थी वह
मन में विनोद मनसिज उपजाती थी
आती दिव्य गन्ध जिस ओर से थी उसी ओर
मत्र-मुग्ध शान्तनु को खींचे लिए जाती थी

(३)

चाव भरे चले जारहे थे चिन्तना में देखा
तीर पं तरणि एक तरुणी चलाती है
यमुना तरङ्ग हो सी अंग में उमङ्ग भरी
कोटि-काम कान्ति कमनीयता लजाती है
मन्द मुसकान मञ्जु मोहक मयंकमुखी
मृदुल मनोहर मनोज मदमाती है

आदि से घनिष्टता थी। लेखों और समीक्षाओं द्वारा आपका विशेष मान हुआ है। हैदरअली जीवनी आपका प्रमुख कार्य है जिसपर केन्द्रीय शासन द्वारा १०००) का पुरस्कार प्रदान किया गया है। खेद है कि उनकी मृत्यु फर्रुखाबाद लौटने के कुछ ही काल पश्चात होगई और यह क्षेत्र उस गौरवशील व्यक्तित्व की सेवाओं से वन्चित हो गया। आपका परिवार सिकन्दरपुर में निवास करता है

स्वर्गीय रघुराज सिंह जी उपनाम प्रोफेसर रंजन जन्म सं० १९७१ मृत्यु २०११ विक्रमी

प्रोफेसर रंजन का जन्म रंसेपुर ग्राम जिला फर्रुखाबाद में हुआ था। आप इस जिले के प्रसिद्ध साहित्यिक हो गए हैं। खेद है कि आप की मृत्यु केवल ४० वर्ष की अल्पायु में ही हो गई। तीन वर्ष तक प्रताप हाई स्कूल प्रेम नगर कानपुर में प्रधानाध्यापक रहे और इसी अवस्था में साहित्यरत्न की परीक्षा पास की। सन १९३८ में एम० ए० (इतिहास) परीक्षा पास की १९३९ में कानपुर छोड़ कर वनस्थली विद्यापीठ में चले गए। सन १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में रजन जी की सक्रियता सराहनीय थी। मुकद्दमा चलाया गया पर अभियोग सिद्ध न किया जा सका। मुक्त कर दिए गए पर सरकार की आंखों में खटकते थे, अतः सुरक्षा कानून के अन्तरगत् अजमेर बन्दीगृह में डाल दिए गए जहां से पलायन कर ओरछा नरेश के यहां पहुंचे और वहां से भूमिगत हो गए। साल डेढ़ साल तक देश का पर्यटन करते रहे और फिर वर्धा को अपनी कर्म भूमि बना कर रजन नाम से फिर उभरे सन १९४५ में नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० पास किया। पुलिस उनकी तलाश में अब भी थी। नागपुर विश्वविद्यालय से ५) की अपनी अमानत मागते समय उन्होंने अपना पता दिया था रघुवीर सिंह द्वारा प्रो० रंजन राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वरधा। पुलिस को सन्देह हुआ कि रघुवीर सिंह और रंजन वस्तुतः एक ही व्यक्ति है। वह गिरफ्तार कर लिए गए और साल भर को कैद की सजा दी गई। प्रान्तों में कांग्रेसी शासन स्थापित होने पर छोड़ दिए गए। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के कार्यों में जुट गए

सन १९४९ में हैदराबाद दक्षिण में जाकर र[illegible] लगे और वहां से उदय पत्र का सम्पादन सम्हाला [illegible] रंगीन और सचित्र बना कर देश भर में लोकप्रिय ब[illegible] दिया। 'कल्पना' नाम के मासिक का भी सम्पादन किया हैदराबाद से ऊबकर घर वापस आए और खेती बाड़ी [illegible] सम्हाला पर शीघ्र हृदय रोग आक्रान्त हो गए। उपच[illegible] के लिए पुनः नागपुर गए। आप की यह विशेषता रही कि आप किसी एक स्थान पर तीन वर्ष से अधिक नहीं रहे राजनीति में आप समाजवादी विचार धारा के पोषक थे।

सन १९५४ की जनवरी में आप का ४० वर्ष की आयु में देहान्त हो गया आपने इस अल्प जीवन में हिंदी साहित्य की बड़ी सेवा की है आपकी प्रणीत पुस्तकें निम्नलिखित हैं (१) पूंजीवाद की पोल (२) नागरिक शासन और भारतीय सविधान (३) हमारालक्ष्य (४) समाजवाद की रूपरेखा (५) हमारा पड़ोसी देश। फर्रुखाबाद के साहित्यिकों के लिए रजन जी सदा प्रेरणा प्रदान करते रहेंगे और एक आदर्श साहित्यकार के रूप में रजन का सदा स्मरण किया जायगा।

सुश्री महादेवी वर्मा

आपका जन्म नगर फर्रुखाबाद के मुहल्ला साहब[illegible] में हुआ था। आप देश की नारी कवयित्रियों में सर्व श्रे[illegible] हैं। आपके अनेकों काव्य ग्रंथ साहित्यिक ससार को अप[illegible] दिव्य आभा से आलोकित कर रहे हैं। आजकल आ[illegible] प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या हैं। 'साहित्यकार ससद' के द्वारा साहित्य साधकों को भरपूर सहायता प्रदा[illegible] कर प्रोत्साहित कर रही हैं। आपकी नीहार, सध्या, रश्मि दीपशिखा, आदि रचनाएं देश विश्रुत हैं। आपके और आपके काव्य पर विशेष कथन व्यर्थ होगा। हमारे लिए यही गौरव का विषय है कि आपने इसी नगर में जन्म ग्रहण किया है।

रश्मि से उद्धृत

किन उपकरणों का दीपक
किसका जलता है तेल ?
किसकी वर्ति, कौन करता,
इसका ज्वाला से मेल ?

(५)

समभ्र सकी वह नहीं गगन में अपना और विराना।
रही सदा अज्ञातवास में नहीं किसीने जाना।

(६)

पृथ्वी की गोदी में पाया कब चिर सत्य ठिकाना।
उजड़ा हृदय समय रहते क्यों नहीं हाय पहिचाना।

जीवन लाभ

(१)

लसत अनोखी पाग पेच पचि रचि राखे
गुंजन गुथन माल उर यों बिचारि ले।
वेणु वर अधर त्रिभग अग कीन्हे छैल,
एक पग ठाढ़े गुन प्रेम उपचारि ले।
गाज तेरी लाजनि पै वज्र कुल कानि परं,
प्रेमो बलि जाय तनि घूंघट उघारि ले।
जीवन को लाहु जेतो लभ्यो चाहो मेरी सुन,
नटवर श्याम नेकु नैनन निहारि ले।

आपकी अन्योक्तियां बड़ी मार्मिक होती है। कुछ उदाहरण देखिए:—

कली,

(२)

कली झूमती ही रही, हिए भरे अभिलाख।
हुइ है गंध पराग युत, विकसित बीते पाख।।
विकसित बीते पाख, मस्त अलि अक भरेंगो।
गूंजि गूंजि गुन गाय, चूमि रसपान करेंगो।।
'श्री हरीश' हाहन्त! नियति हेसिहिय में बिचली।
तोरयो वुरद तुरन्त मास मृग तृष्ण निकली।।

मधुकर,

(३)

सोचत पकज कोष में बन्धो मधुकर बात।
बीते निशि तम तोम हटि हुइहै सुखद प्रभात।।
हुइहे सुखद प्रभात, सूर्य अलोक करेंगो।
प्रमुदित पद्म खिलाय, हृदय सताप हरेंगो।।
'श्री हरीश' करि किम्रो पास, मृदुनालविनोचत।
मोदक मनके खात भरयो मधुकर मन सोचत।।

अन्त में आप के कुछ शृंगारिक दोहे प्रस्तुत है जो कविवर बिहारी के दोहों से अनूठी समता होड़ कर रहे है।

'पतग की लूट'

कामिनि कर डोरी गहै, उरझो चग सुढार।
दै दै ठुसकी झुकि परत पीन पयोधर भार।।१।।
कामिनि कर युग गुण गहे, गुड़ी छुड़ावन हेत।
अध उघरे कुच-कचुकी, मो मन मोहे लेत।।२।।
कर डोरी बाके नयन, दिए चग पै दीठि।
भृकुटि बक विहसनि अधर, लागत मोकों ईठि।।३।।
नाभि सरोवर त्रिवलि तट, गिरि उतग कुच पीन।
विहरत-वदन विलोकि विधु, विकलवासना मीन।।४।।
पाय पाय मोतन चितै, विहँसि लियो मुख मोरि।
अनखोजेहू झिझकसो, दियो गुड़ी गुण तोरि।।५।।

कवि श्री राजेन्द्रप्रकाश शुक्ल, जन्म सं० १९५५

प राजेन्द्र प्रकाश जी शुक्ल उपनाम राजकुमार का जन्म फर्रुखाबाद के अन्तरगत ऊगरपुर ग्राम सं० १९५५ मे कातिक सुदी ७ दिन रविवार को हुआ है। आप मुख्यतया कटरा ब्रुनिहाई के रहने वाले है आज कल सरस्वती नगर मे रहते है। आपके पिता कविसम्राट बाबूराम जी शुक्ल सस्कृत के महान विद्वान थे। आपकी शिक्षा का अधिकाश भाग पिता द्वारा ही पूर्ण किया गया है। व्यापारिक रुचि होने के कारण अधिक शिक्षा प्राप्त न कर सके हिन्दी के साथ साथ सस्कृत का भी साधारण ज्ञान है तथा काव्य में भी रुचि रखते हे। यदाकदा लिखते रहते हैं।

शरदागमन

आई रितु शरद सुहाई नर नारियो को।
निर्मल प्रकाश मे प्रगस्त दिखलाने है।।१।।
सब सरिताओं ने मलिन वस्त्र त्याग किए।
सुन्दर सरोवरों मे कमल खिलाने है।।२।।
हर्षित चकोर हे मलीन मुख चक्रवाक।
राज हस खञ्जन प्रसन्न मन आने है।।३।।
गूंजि रहे भ्रमर समोद कञ्ज वन बीच।
शोभा देखि चन्द्र भी पियूष वर्षाते है।।४।।

सौभद्र की वीरता

पारथ को नन्दन सो स्यन्दन को चक्र लिए।
झपटे ज्यों केशरी गयन्द पे उछाह मे।।

दया हो तुम्हारी सुफल मनसा हो हमारी,
मनकी मुराद मेरी पूरन कर दीजिये।
घरनन को चेरो-'ब्रह्म कालका' हमेशा तेरो,
ताहू को चरणन को चरणामृत दीजिये।

(२)

तुम्हारे पद कमल कोमल सुन्दर अनूप रूप।
चरणन के दर्शन की मोहू को मुराद है॥
चरणन की रक्षा जिस दास पर तुम्हारी होय।
ताके सकल पाप दूर क्षण में हुये जात हैं॥
चरणन को भजन निसिदिन योगी यती धरत ध्यान।
चरणन के छुआये से पत्थर तर जात हैं॥
चरणन में तुम्हारे श्री लक्ष्मी निवास करें।
सो चरण 'ब्रह्म कालका' को काहे न दिखात हैं॥

स्वर्गीय श्री विश्वम्भरप्रसाद तिवारी 'संजय'

आपका स्वर्गवास पच्चीस छब्बीस वर्ष की हो अवस्था में होगया। आप श्री प० बनवारीलाल तिवारी व्यापारी खोवा के सुपुत्र थे। आप मुहल्ला चौक तिरपोलिया के रहने वाले थे। आपने इन्टर पास किया और हिन्दी के अच्छे विद्यार्थी थे। बड़े ही होनहार गम्भीर प्रकृति के युवक होने के कारण कवि कोविद संघ की ओर से श्री हरीश जी ने आपको संजय का उपनाम दिया था आप की एक कविता नीचे दी जाती है।

शलभ

(१)

किस हेतु शलभ तूने अपने
जीवन देने की है ठानी ?
किसकी मृदु मूर्ति मनोहर ने
तेरा कोमल उर छीन लिया।
जिसने क्षण भर ही में तेरे
नन्हें से मनको चीन्ह लिया।
क्या छिपी हुई हृदतन्त्री की
गति भी उसने है पहिचानी।

(२)

इस जलने वाले दीपक से
क्यों तुमको ऐसा प्रेम हुआ।
जो तन न्योछावर करने का,
प्रति दिन का तेरा नेम हुआ।
निज जीवन को बन्धनमय कर,
तूने की अपनी मनमानी॥

(३)

जब तक है दीप नहीं जलता
तब तक तू रहता है बेकल।
क्या जाने किस अदृश्यथल से
तू आता है द्रुत वेग निकल।
आतुरता में तन्मय होता,
यह कैसी तेरी नादानी।

(४)

बस पास पहुचते ही उसके,
करने लगता फेरी पल पल।
मतवाला से सुध सा बनकर,
खो देता अपनी बुद्धि बिमल।
जाने क्या होजाता तुझको
सहता है ऐसी हैरानी।

(५)

जलती लौका चुम्बन लेने
को होता है ऐसा अधीर।
बस केवल आलिंगन ही में
देदेता है अपना शरीर।
अपना सब तन-मन देकर तू
बनता जगका अनुपम दानी।

(६)

तेरे सुन्दर उज्वल यश को
जगके कवियों ने है गाया।
ऐसा कोमल पावन जीवन
है नहीं किसीने भी पाया।
तेरी तुलना करने वाला
क्या हो सकता कोई ज्ञानी।
किस हेतु शलभ तूने अपने
जीवन देने की है ठानी ?

लोगों ने घर द्वार स्वच्छ कर दीपावली सजाई,
मना महोत्सव नियत दिवसपर धनकी राशि लुटाई।
सीख नम्रता रवि ने छोड़ा तीव्र ताप अब देना,
शशि ने सीखा तत्परता से अपनी नौका खेना।
पड़ी पड़ी अब नहीं प्रकृति अंगड़ाई रहती लेती,
बड़े सवेरे ही शिशु कुसुमों के हैं मुख धोदेती।
छोटा बनकर बड़े दिवस ने विषम बड़प्पन त्यागा,
पाकर निशा प्रकाश बड़ी उसमें नव जीवन जागा।
लादे रहती चोकट धोती नहीं अशोभित प्यारी,
तारों जड़ी पहनती है अब मूल्यवान यह सारी।
कोलाहल से रहित सरों में है प्रफुल्लता छाई,
अब आपे से बाहर वे देते हैं नहीं दिखाई।
नहीं तरंगे सरि के उर हैं उठा अनेकों करती,
अब वह नहीं भूलकर भी है पग कुमार्ग में धरती।
हिंसक मोरों ने अपने को परमोदार बनाया,
इस छोटे खजन ने भी अब कार्य्य-क्षेत्र है पाया।
अगों में अद्भुत सी सबने है कठोरता भरली,
कर्मयोग की शिक्षा पाने की तय्यारी करली।

महावीर प्रसाद त्रिपाठी काव्यतीर्थ, साहित्य-रत्न (आयु ४६ वर्ष)

आपका मूल निवास जहानगंज है। पिता का नाम श्री छेदालाल त्रिपाठी है। जन्म श्रावण कृष्ण तृतीया स० १९६३ वि०। नगर के साहित्यिक विद्वानों में आपकी प्रथम गणना है। हिन्दी एव संस्कृत दोनों के विद्वान हैं। कवि होने की अपेक्षा आप विचारक और निबंधकार अधिक है। अध्यात्म की ओर भी आप की प्रेरणा है। आपकी दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं (१) ऋषिराज व (२) हमारी राष्ट्रीयता (अनूदित) आपने लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पत्र 'राष्ट्रधर्म' का प्रधान सपादकत्व का भार कुछ दिन बड़ी सफलता पूर्वक सभाला। साहित्यिक समारोहों में सहयोग और सहायता देने में आप अग्रणी रहते हैं हिन्दी सेवी ससार नामक पुस्तक में आप का नाम सम्मिलित किया जा चुका है। कविता का उदाहरण निम्न है।

पाषाण के प्रति

(१)

मुझे कर दो निज परिचय दान !
कोई पुष्पावली चढ़ाना
कोई पैरों से ठुकराना
द्वेषराग से परे अकुलित, योगी चित्त समान।
ताड़न छेदन आदि सहन कर
मुख से आह नहीं करने पर-
चिनगारियां निकलती तुमसे, सत्याग्रही समान !
खड़े हुए निज अचल रूप में
कैसे भीषण भासित तम में,
शिलीभूत निस्तब्ध युद्ध के भैरव गान समान।
विविध सुधामधुमय झरनों के
जनक रसाकर तुम अति सुन्दर,
नीरस से कठोर से होकर, भी तुम करुण महान !
कितने रत्नों के तुम आकर
ज्ञान सरसिजों के सुन्दर सर,
अक्षय वैभव के प्रहरी से, अवंकित और अम्लान !
मुझे करदो निज परिचय दान॥

(२)

गीत

सूना सा आकाश !
कौन कहां से अनजाने हे, चन्द्रकला बन झांक गया रे।
किसने मुझे चकोर बनाया, देकर पावन-प्यास;
अरे यह सूना सा आकाश !
मुझे बनाने को चातक यह, कौन स्वाति घनबन गरजा रे
मेरे राग विहाग स्वरों में, किसने भर दी आश
अरे यह सूना सा आकाश !
हा, इस निर्जीवन जीवन में कौन प्राण से फूंक रहा अ
चिर परिचित सा कौन अपरिचित, बन आया मधुमास
अरे, यह सूना सा आकाश !

डाक्टर सतीश चन्द्र चित्रे एम० ए० (आयु लगभग ४० वर्ष)

डाक्टर चित्रे स्थानीय भारतीय पाठशाला इंटर कालेज में अंग्रेजी भाषा के प्राध्यापक हैं। आप राजकीय विद्यालय फर्रुखाबाद से अवकाश प्राप्त प्रधानाध्यापक

इस स्थान को छोड़कर देव प्रयाग में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

कविता का उदाहरण निम्न है।

क्षितिज के पार–

दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिजके पार,
कैसे मैं अब रहूं यहां पर हे जीवन आधार!
सुना सुना कर मंजुल गाना,
मुझे बनाता है दीवाना,
वहीं बसा क्या सचमुच मेरे स्वप्नों का संसार,
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
अरुणोदय में खग कुल गाता,
मानो यह सन्देश सुनाता,
देख क्षितिज पर कौन विहँसता खोल सुनहला द्वार।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
हटा तिमिर का परदा काला,
छाया चारों ओर उजाला,
मेरा भी अन्तर तम करदो ज्योतित इसी प्रकार।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
दुनियां के ये लोग तुम्हारे,
दिखा नेह अरु नाते सारे,
बांधें अपने कठिन पाश में मुझे न प्राणाधार।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिज के पार!
मन मन्दिर में तुमको पाकर,
पद पंकज में शीश नवाकर,
हृदय वेदना के देता हूं अश्रु बिन्दु उपहार।
दिव्यनाद से कौन बुलाता आज क्षितिजके पार

रमेशचन्द्र जी वर्मा 'रमेश' (आयु लगभल ४० वर्ष)

आप नीमकरोरी ग्राम के रहने वाले श्री बनवारी लाल जी के सुपुत्र हैं। वर्तमान में राजकीय दीक्षा विद्यालय फतेहगढ़ अंतर्गत अध्यापन कार्य करते हैं। माधुरी, सुधा वीणा, सरस्वती, सैनिक तथा सुकवि में आपकी कवितायें समय समय पर प्रकाशित होती रही हैं। फर्रुखाबाद कवि कोविद संघ के प्रारम्भ से ही सदस्य, सहायक तथा सेवक रहकर नगर के सम्मेलनों में प्रमुख भाग लेते रहें हैं। 'संघ' द्वारा प्रकाशित ग्रंथ 'डाली' और 'वातायन' में आपकी कुछ रचनायें संगृहीत हैं। कविता का उदाहरण निम्न हैः—

'कवि'

आनन पर ओज की उमंग आते ही 'रमेश'
बंधनों के जाल तोड़ फोड़ क्यों न डाल दे
विधि के विधान में बड़ा बना के सविधान,
रख उंगली पर इन्द्र आसन उछाल दे।
भृकुटि विलास से हो विश्व में मचादे क्रान्ति,
काल के भी आगे जो कि जाके ठोंक ताल दे
सोतों को जगादे जो नहीं 'नहीं' मरे हुओं में,
कवि है वही कि जो नवीन जान डाल दे॥

रामनरायण गुप्त एम० ए० साहित्यरत्न (आयु ४० वर्ष)

आप भारतीय पाठशाला में गणित के अध्यापक हैं गणित के ही समान आपका स्वभाव भी क्लिष्ट है। बहु पूर्व से कविता लिखते हुए भी कभी प्रकाश में नहीं आ हैं। कविताएँ बड़ी रोचक और भावपूर्ण होती हैं।

'अभय' शर्मा एम० ए० साहित्य रत्न (आयु ३५ वर्ष)

रायबहादुर शर्मा 'अभय' का जन्म १ नवम्बर सन् १६१६ ई० को जिला फर्रुखाबाद के ग्राम रामपुर मान्झगांव में हुआ। पिता माता के वंशानुगत प्रभाव से 'अभय' जी की काव्य प्रतिभा मुखरित होने लगी। एम० ए०, साहित्यरत्न हो नगर-पालिका उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। कवि होने के साथ साथ आप सफल वक्ता, आलोचक, एवं सुयोग्य शिक्षक भी हैं। आप के सौम्य स्वभाव और सरल प्रकृति की छाप जन जन के मन पर है।

'करुण' 'वीर' और हास्य पर आप खूब लिखते हैं। आप के ही द्वारा कथित सात एकाङ्की नाटकों में एक 'माण्डवी' एक 'उत्तरा' करुण रस के द्योतक हैं। 'बापू' विषयक छंद भी कवि सम्मेलनों में वीरता का प्राण फूक देते हैं। यहां पर उदाहरण स्वरूप 'बापू' के छंद उपस्थित हैं।

पाप वासना पूर्ण बनाने लम्बी दौड़ लगाऊ
तन, मन धन सब पाप कर्म के करने हेतु गमाऊ
यहीं सोचता स्वर्ग इसी में क्यों न इसको पाऊ
होकर जग में पैदा क्यों ना जग के मजे उड़ाऊ
पर भूल गया प्रण किया ईश से, ऐसा पागल हू
मैं कैसा पागल हू ॥३॥

पाता कोई एक किन्तु,
उद्योग सभी जन हैं करते ।
सोच अरी ! इतने से जीवन
पर कितना है अभिमान तुझे ।
जिसने तुझे बनाया पावन
उसका कितना ज्ञान तुझे ॥

श्री रामस्वरूप वाजपेई एम०ए० साहित्यरत्न (आयु ३२ वर्ष)

आप नवोदित कवि और सुलेखक हैं। आप अध्यापन कार्य करते हुए साहित्यसेवा में अनुरक्त रहते हैं। प्राकृतिक दृश्यों से आपको विशेष आकर्षण है। साहित्यिक अभिरुचि आपको परम्परागत है। आपके पिता जी स्वय वृजभाषा के एक कवि है जो 'वह्नाकालिका' के उप-नाम से कविता किया करते हैं।

गयाप्रसाद चौधरी बी० ए० साहित्यरत्न (३१ वर्ष)

जन्म माघ स० १६८१,ग्राम न्योधना जिला इटावा। प्रथम गिरदावर कानूनगो हुए। अब इस समय फर्रुखाबाद तहसील में प्रतिकर नायब तहसीलदार है। आप साहित्यिक रुचि के व्यक्ति हैं। साहित्यिक सस्थाओं के कार्यों में योग देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। कविता का उदाहरण निम्न है।

म कैसा पागल हूँ !
पाप कर्म करना चाहू, पर जग से छिपाना।
पापी होते हुए भी निज को चाहू भला जताना ॥
निर्जन थल पर पाप करूँ ना जग को दिखाना।
'लखता हमको कौन' ! समझकर पाप करू मनमाना ॥
पर ध्यान नही वह हर थल वासी, ऐसा पागल हू।
मैं कैसा पागल हू ॥१॥
मैं मदमत्त जवानी में हो, पाप कर्म रत होऊ।
कर प्रतीत अनुपम सुख इसमें अति आनन्द मनाऊँ ॥
यौवन मद का प्याला पीकर निज को मस्त बनाऊँ।
सोचू स्थायी है यौवन क्यों न मौज उड़ाऊ ॥
पर ध्यान नहीं है, एक दिन मरना, ऐसा पागल हू।
मैं कैसा पागल हू ॥२॥

श्रीमती विद्या सक्सेना (३१ वर्ष)

आपका जन्म फर्रुखाबाद निवासी श्रीयुत ता[illegible] सहाय सक्सेना के यहाँ सन् १६२४ ई० में हुआ था। आप इन्टरमिडियेट हैं और बाल्यकाल ही से कविता और विशेष रुचि रही है। सन् १६३६ ई० में आप 'सुकवि पुरस्कार श्री हरनाथ पदक' प्राप्त किया था। 'थपकी' नामक आपका कविता सग्रह बहुत ही अच्छा है। कविवर चित्र की बहिन हैं और हैं स्वतत्र विचारों की प्रगतिशील देवी।

(१)

तुम मां कह कर मेरे उर का प्यार जगादो,
देखो इन प्राणो से ममता झांक रही है।
माना आज नही जीवित है पन्ना दासी
माना आज नही जीवित है माँ जसुदामो।
यह सच है, है आज नही कौशल्या माता
मिटा नही है फिर भी जग से मा का नाता।
बहन कहो युग युग का स्नेह दुलार जगादो
देखो इन प्राणो से ममता झाक रही है।
कहो न नारी को केवल है 'छलना माया'
इसे न समझो आज वासना की प्रतिछाया।
इसके जीवन का कण-कण ममता में डूबा
ये वह उर है स्नेह लुटाते कभी न ऊबा।
चाहातो पल भर में अमृत-धार बहादो,
देखो इन प्राणों से ममता झांक रही है।
ये वर रक्षा करने हो को सर पर आया
आचल करता रहा युगों से तुम पर छाया।
मौन भावना निशिदिन ही मगल गाती है
तुमको बढ़ना देख आत्मा मुसकाती है।
चरण छुओ आशीषों का भण्डार लगादो,
देखो इन प्राणों से ममता झांक रही है।

(३)

गीत—संगीत

—:०:—

गीतों का वरदान मिला है पर गाने का ध्येय नहीं,
नहीं जहां संगीत, गीत वह हो सकता क्या गेय नहीं ?

(१)

मेरे उर में प्रतिक्षण प्रतिपल मधुमय बीन बजा करती है
नवल कल्पना धवल रूप धर चपल चपल मचला करती है
लेकर मृदु संगीत, तालमय वायु पवन वन वन फिरता है
मदिर २ सित रजत राशि भर गिरि निर्झर झर २ झरता है
लहर फेन से छहर नीरनिधि शत श्रृंगार किया करता है,
मदमाती युवती सरिता का सर अभिसार किया करता है।

(२)

विह्वल गतिमय विकल मेदिनी मुदित मुदित भ्रमती रहती है,
चन्द्रशिखा भास्कर किरणों का चिन्ह पहन झिलमिल करती है
उडगन नभ के उत्सुक, कीड़ा झिझक झिझक देखा करते हैं
प्रति-छाया में छन छन भू पर कनक कुसुम बरसा करते हैं।

(३)

स्वासों से संगीत निरन्तर अंतर में संचर करता है,
मधुप कली की कोमल वय से अभिनव रास रचा करता है।
प्रतिबिम्बित अंतर की आभा आकुल धारा सी निपृ.त है।
प्रकृत साधना आराधन के पथ पर स्वयं विकल विस्तृत है।

(४)

नहीं तूलिका फलक और रंग कलाकार अभिव्यक्ति स्वयं है
नहीं तालमय वाद्य और गति गायक ही संगीत स्वयं है।
कुसुमों की काया में सौरभ, भाव गीत में आकर्षण है,
विद्युत में चंचलता जल में प्यास बुझाने की क्षमता है।

(५)

संघर्षण है कभी समर्पण मानव के मन में ममता है,
संवेदन जो करे सचरित वही गीत की सार्थकता है।
गीतों का वरदान मिला है पर गाने का ध्येय नहीं।
नहीं जहां संगीत गीत वह हो सकता क्या गेय नहीं।

राजेन्द्रनाथ गौड़ साहित्यरत्न
(वर्तमान आयु ३०)

आप नगर के नवीन कवियों की श्रेणी के कवि हैं। आप सुयोग्य चिकित्सक भी हैं। साहित्य के अतिरिक्त कला से भी आपको समान रुचि है। आपके पिता पं० निरञ्जननाथ गौड़ 'वैद्यवर' नगर के प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं। आपकी जन्मतिथि आषाढ़ शुक्ल ८,१९८१ है

आपकी कविताओं में स्वाभाविकता और प्रवाह प्रचुर मात्रा में रहता है। प्रसाद गुण की भी कमी नहीं है। आपकी लेखन शैली प्रभावशाली है। यदि कविता लेखन में आप प्रवृत्ति विशेष रूप से दें तो निश्चय ही उत्तम कोटि की कविताएं आपकी लेखनी से निकल पड़ें। भाषा सामान्य होने के कारण प्रिय है।

कविता के उदाहरण निम्न हैं—

(१)

मैं न इच्छुक हूँ कभी विश्राम का
चाहता हूँ हर घड़ी चलता रहूँ।
खोज लूंगा प्यास लगने पर नवी
जिन्दगी साकार होगी कल्पना।
शीत होगी आग की लपटें प्रबल
पंथ का सम्बल स्वयं लूंगा बना।
प्यार का उपहार लेकर हाथ में
चाहता हूँ हर घड़ी चलता रहूँ।
है न मुझको चाह सरिता तट मिले,
क्यों कि तूफानों से किंचित भय नहीं।
डूब कर जिससे न बाहर आसकूं
लहर कोई भी बनी ऐसी नहीं।
जिन्दगी की साध लेकर साथ में
चाहता हूँ हर घड़ी चलता रहूँ।
वेदना में प्रणय का सौरभ भरा
कण्टकों में फूलका संसार है।
बीज से ही सृष्टि सम्पादित हुई
छिपा पतझड़ में सदा श्रृंगार है।
तप्त बालू या सुकोमल तूल हो
चाहता हूँ हर घड़ी चलता रहूँ।
मरण को जीवन बनाडूं निमिष में
रुदन भी मुस्कान बन जाये सफल।

समय पाकर ठोस सेवा कर सकेंगे। शारदा की वंदना में कहते हैं।

(१)

एरी माँ अब दूर करदे पातक दभ
पर कृपा कोर मेरी ओर को निहारदे।
खेल रहा जो आज दिन तक गोद तेरी
एकबार मातु उसे फेर पुचकार दे।
हस पै सवार होके पुष्पमाल गलडार
शुष्क उर-वाटिका में प्रेम जल डार दे।
'सरल' रहा सदा पियासा मधु वाणी का
वीणा की मधुर तान फिर झनकार दे॥

(२)

मेरी मातु अब अवलंब है तेरा ही मुझे
करती विलब काहे शीश कर धरदे।
निज वीणा तारों पर उँगली नचाती हुई
मेरे उर मध्य भव्य भावनाएँ भरदे।
सेवक सदा का हूँ ध्यान इस ओर देके
नेक दे विलोकि तथा दया दृष्टि करदे।
'सरल' सुछद कठ वंठ के उचारती आ
मागता हू बार बार यही एक वर दे॥

गीत-

तम हृदय का दूर कर दो।
ढूँढ़ती फिरती है आँखें विश्व है किसने रचाया।
पर न अब तक उस अगोचर को है मैंने खोज पाया।
कर में वीणा मातु लेकर हृदय में झनकार कर दो।
तम हृदय का दूर कर दो॥१॥
प्रणय पूरित योजनाएं आज तक होनी न पाई।
प्रेम की अनुपम घटाएँ प्रेम मन्दिर में हैं छाई।
आज उमगा है मेरा उर सजन का चिरमिलन करदो।
तम हृदय का दूर करदो॥२॥
तिमिर की सरिता है बहती वेग इतने जोर पर है।
डूबता मझधार बेडा तब कृपा के कोर पर है।
पार कर दो नाव मेरी हाथ रख पतवार पर दो।
तम हृदय का दूर करदो॥३॥
हिलकियाँ है आरही माँ कठ गद्गद् हो रहा है।
निठुर ऐसी क्यों बनी हो बाल तेरा रोरहा है।
कामना कुछ भी न माता 'सरल' सर पर हाथ धरदो।
तम हृदय का दूर करदो॥४॥

दिनेशचन्द्र चतुर्वेदी 'दिनेश' बी० ए० (जन्म २२ मई १९२७ मैनपुरी)

आप उत्तम गीतकार और सुललित गायक हैं। जब गीत आपके कठ से निकलते हैं तो श्रोता विमुग्ध हो जाते हैं। चतुर्वेदी होने के कारण अत्यन्त मस्त और खुश मिजाज हैं। आपके ग्रंथों की सूची में 'तुहिन' 'अ गीत' 'हासभहास' गीतों के सग्रह है और कहानी में 'कथा' तथा 'कुमदेश हैं'। किन्तु हैं सभी अप्रकाशित।

(हालभगीत)

मैं गान बचता हूँ अरे कोई लेलो
क्या दोगे इनका मोल कहो कुछ बोलो
कुछ लिख लेता हूँ पियके अभिनन्दन में
कुछ गा देता हूँ काल चक्र क्रन्दन में
जगती से सुख दुख की परिभाषा लेकर
अङ्कित करता हूँ नव जग पटल सृजन में
ससार हसा मेरे उपहारों को लख
अरमान बेचता हू अरे कोई लेलो
क्या दोगे इसका मोल कहो कुछ बोलो
दो पल मिलने का नाम सखे जीवन है
दो क्षण खिलने का नाम यही उपवन है
जगती की दो राहें मिलती कुछ क्षण को
चिर विरह व्यथा का भार यही उन्मन है
मैं अपनी पीड़ा की पूंजी को लेकर
मुस्कान बेचता हू अरे कोई लेलो
जग के सोने पर मै ही जगता रहता
नभ के रोने पर मै ही हसता रहता
नीरवता आचुम्बन करती प्रियतम को
मैं अमर दीप का स्नेह बढ़ाता रहता
स्मृति सी स्वर्ण राशि का मै स्वामी हू
सम्मान बेचता हू अरे कोई लेलो
क्या दोगे इसका मोल कहो कुछ बोलो
पलकों की निधि मेरे आशा के मोती
मैं हस देता हूँ जब कलियाँ हैं रोती
फूलों से यह वरदान न मुझको भाते
राहें आ कटक मेरी ओर सजोती
जगती के हसने की परवाह न मुझको

भांकी कविता में भी विदर्शित होती है। आप राजनैतिक विचार धारा रखने के कारण कभी कभी कविता में भी उसी प्रभाव से बाधित हो जाते हैं। एक कवि के रूप में आपका भविष्य अतीव उज्वल है। वास्तव में कविता वही है जिसकी अभिव्यक्ति ठीक हृदय पर पड़े आघात के प्रतिरूप में ही हो। इस विशेष गुण के कारण आप की कविता में ओजस्विता अधिक रहती है। कंठ मधुर होने के कारण पाठ और भी रोचक होजाता है। पाञ्चाल साहित्य परिषद के आप वर्तमान मन्त्री हैं। कामना है कि आप अधिक गंभीरता पूर्वक जीवन में साहित्य को उतार कर कुछ ठोस सेवा करने का प्रयत्न करें।

कविता के उदाहरण निम्न हैं.—

(१)

प्रभात-

जगती में जगती ज्योति जभी रवि सोकर जगता है।
किरण-करों से ऊषा का आवरण पलटता है ॥
देख अरुण आभा प्राची में
विचलित होती रात।
तिमिर छिपा लेता अपना मुख
बढ़ता मधुर प्रभात ॥
शीतल सुखद समीर सुधा सरसाता चलता है।
शुभ्र श्वेत हिम के मस्तक पर
पहिन स्वर्ण का ताज।
उच्च शिखर सिंहासन से
वारिधि तक पर्वत राज
वे दृग जल से अर्घ्य सूर्य का अर्चन करता है ॥
निकल निकल नीड़ों से पक्षी
करते किस की खोज ?
प्रकृति भरा अचल फैलाकर
देती जग को भोज।
सन्ध्या का भूला पथिक प्रात फिर राह पकड़ता है ॥
सुरभिपूर्ण शृंगार सजाकर
कलिका करती मान।
पादप करते नृत्य मस्त हो
भ्रमर छेड़ते तान।
सूर्यमुखी मुख खोल मन्द स्वर से कुछ कहता है ॥
जड़तक में आती चेतनता
मुदिता अवनी मन में।
फेनिल तरल धरातल पर
लहराते चमल पवन में।
जल के उर में दिनकर का प्रतिबिम्ब मचलता है ॥

(२)

मधुप ! मैं पुष्प सुन्दर हूं।
किसी के इष्ट का वर हूं।
पखुरी परिधान पहने
मैं सजाता एक डाली।
निरख नवल विकास मेरा
नित्य पाता मोद माली।
प्रेम के मधु से भरा मैं शान्ति का घर हूं ॥
नित—नये अरमान लेकर
तू सुनाता गीत अपने
सत्य करना चाहता रे
कल्पना के मधुर सपने।
दे सकूं वरदान क्या जब साध-मन्दिर हूं।
मन्द उर की श्वास निर्मल
फैलती बन सुरभि शीतल।
तन्त्रि तारों से निकल कर
गान बनते भाव कोमल।
हृदय वीणा से बजा मैं प्रणय का स्वर हूं ॥
बीज आशा के धरणि में
डालकर जिसने उगाया।
बात आतप के शरों में
प्राण क्यों मेरा बचाया।
बस उसी उपकार का मैं अस्थिपञ्जर हूं ॥
अवहेलना करना जगत की
मैं प्रकृति का प्रेम पाकर।
देखता हूं मग मिलन का
चिर विरह के राग गाकर।
कौनसा स्थान दूं आतिथ्य में थिर हूं ॥

(३)

जीवन—पथ

चल पड़ा आज मैं किस पथ पर
मन भाव पूर्ण क्षत विक्षत गात।

स्नेह भी अमरत्व तेरा,
पल सकें जो साथ दोनों।

:गीत:

सुनाती अपनी मधुरिम गान,
बोलती कोकिल मतवाली।
मधुर मधु रस की बैठ रसाल,
पिलाती जग भर को प्याली॥

सिखाती मीठे बोलो बोल,
प्रेम का पाठ पढ़ाती है।
जगत करता बोली का मोल;
यही तो बात बताती है॥

अचिर यौवन का मादक गर्व,
नाश मानव का कर देता।
क्षणिक से सुख छाया का दर्प,
विषादों को है भर देता॥

फूलती सरसों को भी देख,
यही उससे कोयल कहती।
बसन्ती यौवन मद को भूल,
मान क्या दोपहरी रहती॥

अधखिली कलिकाओं पर जब अनेकों अलि मन्डराते हैं।

रामचन्द्र पाण्डे 'शलभ' (आयु २५ वर्ष)

आप मुहल्ला हरिभक्त निवासी एक भावुक और क्रियाशील युवक हैं। आपको कविता से पर्याप्त रुचि है और समय समय पर रचनाएँ करते रहते हैं, आपकी कविता का उदाहरण निम्नि है।

प्रवासी के प्रति

अरे ! प्रवासी आंसू पीकर
मन ही मन रोना कैसा ?
तेरी दीन-दशा को लख कर-
जग का यह सोना कैसा ?

अनाचार- अन्याय आपदा-
का पहाड़ टूटा कैसा ?
हाय ! अचानक पूर्व पाप-का
दुख निर्झर फूटा कैसा ?

सुख की आशा छोड़ हृदयमें
दुख को आज लगा ले तू।
'मरना ही जीना' है जग में
जीवन ज्योति जगा ले तू॥

प्रहलाद नारायण 'सृजन' विशारद, (वर्त्तमान आयु २२ वर्ष)

उदीयमान कवियों में आप प्रमुख हैं। आपका अधिकांश समय साहित्य सेवा में ही व्यतीत होता है। कविता, कहानी और उपन्यास से आपको स्वाभाविक रुचि है। आपकी कविताएं और कहानी पत्रों में छपती रहती हैं किन्तु प्रकाशित होने के साधन नहीं जुट पाते। आप सकोची स्वभाव के हैं। कविता का वर्ण्य विषय 'मृत्यु' अधिक है, यद्यपि आप पलायन वादी नहीं हैं। आप में प्रतिभा है उचित रूप में ढालकर उसे बाहर निकालने की आवश्यकता है। भाषा प्रभाव पूर्ण है किन्तु निरर्थक शब्दों से निवृत्ति आवश्यक है। आपके कई छोटे खण्ड काव्य १ कहानी सग्रह व उपन्यास अप्रकाशित पड़े हैं। लक्ष्मी—तिरस्कृत साहित्यिक के हृदय में वैषम्य के प्रति जो विक्षोभ होना चाहिये आप में खूब है। अभी अवस्था भी थोड़ी है भविष्य में उत्तम कल्पना की जा सकती है।

कविता के उदाहरण निम्न हैं।

★ सोऽहं ★

तृण,तृण में कण कण में मैंने जिसको खोजा,
आश्चर्य मुझे, मैं ही हू वह चेतन जीवन।
यह सिन्धु गगन यह अवनि पवन मेरी रचना
मेरा स्वरूप सच्चिदानन्द मेरा अन्तर।
मै ही अलि हूं मैं ही कलि हूं मैं ही पराग
मै ही माध्यम में रहने वाला हूं अन्तर।
जिसके निर्माता को खोजा आश्चर्य मुझे
मेरे ही स्वर पर रचा गया है वह तन मन।
कण कण को आलोकित करता मेरा प्रकाश
मेरी छाया में दीप्ति नहीं पर अन्धकार।
इस लिये रात दिन में सन्ध्या हो जाती है
क्यों क्यों कि स्वप्न ? जागरण नहीं है एक तार।

अक्षय जन्म-मरण-भ्रम क्षय हो
चिदाभास से अक्षर कर दो !

(२)

मूक मोह की कड़ियां वर कर
स्वरमय वर्तुल लड़ियां पर कर
आदि-नाद-सौन्दर्य जनित नव
अनहद—नाद शून्य में भर कर
स्वरित सुरीले स्वर मक्रम से
हृदय निकेतन स्वरमय कर दो

(३)

तममय तन्द्रिल शैल शिखर पर
कनक किरण कर फैल बिखरकर
तरु तोरन तृन गुल्म निकर में
अविरल निर्मल तेज प्रसर कर
विरस रसातल में जन-मन के
स्वर्ण कलश निःसृत जल भर दो।
अम्बे ! कुटिल काल कम्पनि में
लहरा सरल लहर दो !

रूप—गान

दृग—चषक में ढाल कर, प्रिय !
मदिर रूपासव पिला दो !
सौ गुना मद मय सुरा से
सौ गुना मधुमय सुधा से
हो उठें अनुराग रंजित
ये नयन नीरज पिपासे
पद्म पलकों से छलकती
मधुरिमा गरिमा—मिलादो ।
शुचि हिमज जल सा सुशीतल
दुग्ध सा निष्पक फेनिल
सिन्धु सा उच्छल विचंचल
ढाल कर रस धार छल-छल
माणिकों के रिक्त पात्रों में
तरल द्रव झिलमिला दो ।
बस, स्मरण में विस्मरण हो
रूप—सर में सन्तरण हो
कल्पना के मुक्त विहंगों
का गगन में सचरण हो
भ्रमित मग, डगमग शिथिल युग
पग, विमुध रग-रग हिला दो ।
चल अचल हो या अचल चल
तल अतल हो या अतल तल
नभ धरा हो या रसातल
या प्रकम्पित हो धरातल
दिवस में तम की सघनता
रात में आभा खिला दो।
तुम भरोगी पात्र अविरल
म करूं गा रिक्त प्रतिपल
पर न पूंछूंगा सुधा है ;
वारुणी अथवा हलाहल !
इन्द्रियों की चेतना चिर
मूर्च्छना में ही सुला दो !

मुन्शी बाबूराम, जी बी० ए० एडवोकेट
(जन्म सं० १९४३–)

मुन्शी बाबूराम जी 'शायक' उर्दू के प्रान्तीयख्याति प्राप्त शायर हैं। आपका झुकाव इधर कुछ दिनों से हिंदी की ओर हुआ है । आप हिन्दी में भी 'राकेश' उपनाम से कविता करने लगे हैं। आशा है कि कुछ ही वर्षों में आप उर्दू की भांति हिन्दी में भी कीर्ति अर्जनकर हिंदी को अपनी प्रतिभा से आलोकित करेंगे। आपकी दो पुस्तकें 'काश्मीर कौमुदी' और 'उपाराग' इधर प्रकाशित भी हो चुकी हैं। नीचे आप की कविता के कुछ नमूने उधृत किए जाते हैं।

काश्मीर कौमुदी से

(१)

अब सावधान हों कोमल पग जो उद्यानों में विचरते हैं।
सम्मुख है 'वेरीनाग' अगम जिसके तटपर पग धरते हैं॥
जलनिधि प्रवेश के अभ्यासी, इसमें पग धरते डरते हैं।
कविता सागर के चिर तैराक, यहां पर डूबा करते हैं॥
है निश्चित अत्याश्चर्यजनक यह नृप सलीम की वास्तु कला।
जिसने बलशाली चश्मे को अति लघु घेरे में बन्द किया॥

भोजराज (आयु ४२ वर्ष)

आप ज्योंता के निवासी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में अध्यापक हैं। साहित्यिक प्रगतियों में सर्वव भाग लेते रहे हैं। कवि कोविद संघ के आयोजनों में सक्रिय भाग लेते रहे हैं। कविताओं का एक अच्छा सग्रह आपके पास उपलब्ध है। आप वृज भाषा में ही कविता करते हैं।

जमुनाप्रसाद शाक्य 'साहित्य रत्न' (जन्म सं० १९७० विक्रमी)

आप ग्राम ज्योंता के निवासी हैं। पिता का नाम रामवक्स शाक्य था जो ब्रिटिश विलोचिस्तान प्रान्त के अन्तर्गत सीवी नामक नगर के राजकीय उद्यान के प्रधान सरक्षक (*Head Gardner*) थे।

काव्य रचना- १- अभया [स्फुट कवित्त तथा गीतों का सग्रह] [२] कलिंग विजय

कुछ दिनों तक शाक्य-प्रभा' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। जिसमें सामाजिक तथा ऐतिहासिक लेख लिखे।उदाहरण—'अभया' से

सत्याग्रहों से-

सेज पर कैसी करवटें तू बदल रहा,
ऐसा तुझे कौन सा ? प्रमाद है भुला रहा।
चल कर देश की समीर कहती है यह,
साथ चल मेरे क्यो ? अकेला ढुलुला रहा।
पश्चिम में सत्ता नृप चन्द की है मन्द हुई,
साहस सभाल निज लक्ष्य क्यों ? भुला रहा।
बांट रहा सूरज स्वराज्य का 'प्रसाद' अब
कोष कमलों का खोल भौंरों को बुला रहा।

सत्याग्रही घन-

सत्य के कठिन तेज तप कर जीवन जो,
विश्व के गगन पर ऊँचा चढ़ जावेगा।
शीतल अहिंसा वायु मडल में घुमड़ेगा,
आत्म शक्ति विद्युति की द्युति दमकावेगा।
ऊँच नीच क्षेत्र का विचार न करेगा वह,
समरसता ले प्रेम वारि बरसावेगा।
पावेगा सरस फल शान्ति का 'प्रसाद' जब
सत्याग्रही घन विश्व ज्वाला को बुझावेगा।

पं० लज्जाराम जी शुक्ल 'अरविन्द' (आयु लगभग ७३ वर्ष)

आप ग्वाल मंदान कन्नौज के निवासी हैं। आप रिटायर्ड मिडिल स्कूल के हेडमास्टर हैं। आपकी समस्त कविता व्रज भाषा में ही है जो एक अच्छी निधि है। नीति व श्रृङ्गार पर अधिक लिखा है। खेद है कि रचनाओं का प्रकाशन अभी तक नहीं होपाया। आप के निम्न ग्रन्थ अप्रकाशित हैं [१] अरविन्दलहरी [स्फुट-कविताएँ] [२] अरविन्द शतक [अन्योक्ति] [३] भक्ति सरोज [४] रससार [श्रृङ्गार ग्रन्थ] यदि यह प्रकाशित होजाय तो अवश्य भाषा का सम्मान बढ़े। आप बड़े मिलनसार स्वभाव के हैं, पाचाल सा० परिषद कन्नौज के आप अध्यक्ष हैं। उदाहरण निम्न हैं।

(१) परिचय

तैंतीस बरस पाठशाला में पढ़ाये बाल,
पाठक प्रधान पदवी पै श्रोज छायके।
पाइ पारितोषक प्रसशापत्र मान भरे,
कर्तव्य पालन यथारथ दिखाइके।
वेद खण्ड नन्द इन्दु सम्वत अषाढ़ मास,
कृष्ण पक्ष बुधवार सातें तिथि पाइके।
तोरि परतन्त्रता के फन्द अरविन्द विप्र,
ह्वेगए स्वतन्त्र वे रिटाइर कहाइके।

(२) मुग्धाभेद

वासक सेज भई उत्कठिता ह्वै अभिसारिका लै पिय पार्स,
पिय न मिल्यो तब विप्र लब्धा,पुनि खडिता ह्वै लगी लेन उसासें।
त्यों कलहतरिका बनिके पतिका सुप्रवीन बनी अवसासें,
सोई प्रवत्स्यत प्रे'यसि प्रोषित भर्त्रिका आगत पीयका भासें।

इच्छालाल, कन्नौज

आपका जन्म १९६५ सम्बत में हुआ। आप कवि और राष्ट्रप्रेमी हैं। एक पैर से हीन होने पर भी आप कई बार स्वाधीनता सग्राम में जेल गये। आप

तो जहां प्रेम प्रमोद भरे सब
और वहीं रस रंग थे होते ।
हा दुर्दैव यही पर आज
झुण्ड के झुण्ड शृगाल हैं रोते ॥

विजयबहादुर अग्निहोत्री 'विजयेश' एम० ए० एल० टी० साहित्यरत्न (आयु ४२ वर्ष)

आपका जन्म २७ मार्च सन् १९१३ को कन्नौज में हुआ। आपके स्वर्गीय पिता पं० विश्वेश्वर नाथ अग्निहोत्री संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। और ज्योतिष शास्त्र के कुशल पं० थे। आप के सतत प्रयत्न से 'विजयेश' जी ने शिक्षा प्राप्त की और सन् १९-४१ में सनातन धर्म कालेज कानपुर से एम० ए० तथा साहित्यरत्न की उपाधि प्राप्त की। आप स्थानीय स्वरूप नारायण इण्टर कालेज कन्नौज में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। साहित्य से आपको विशेष रुचि है।

सरस्वती–वन्दना

एक में पुस्तक एक में वीणा हो-मंजु मराल हों वाहन तेरे।
घन अलकावली चारु कपोलन- बीजुरी सी मुस्कान उजेरे॥
गाती सुराग लुटाती सुधा, बस-आइये आजु सुनैनन नेरे।
मेरा ललाट हो मञ्जु मराल पै-आपका हाथ ललाट हो मेरे॥

पाषाण–देव

जीवन की बनकर जगती में आती मृत्यु सहेली।
मेरी पीड़ा से तुम क्रीड़ा करते कौन पहेली।
जीवन का विश्वास हमें है हसते रोते कट जायगा।
किन्तु विधाता के द्वारे पर क्षुभित भिखारी ये आयेगा।
मेरा तो पाषाण देव है-उत्पल निर्मित जिसका मन्दिर।
पाहन कृमि को रुचि सकता है-क्यों नवनीत सुधा सम मृदुतर।
पत्थर से आशा करने में–पत्थर होती है आशायें।
पाहन तट को काट न पाती अम्बुधि की लहरें टकरायें।
स्वर्ण जगत में रजत जगत में हीरा मोती जग ने पाये।
यदि न हृदय से पाहन होते क्यों पाहन से गये बनाये।
मैं कोमल नवनीत बनूंगा तुम भी पाहन बनते जाना।
काम पुजारी का रह जाता पाहन से भी बोल बुलाना।

गंगादयाल त्रिवेदी कन्नौज (.१९७० वि०)

आप लाला मिश्र मुहल्ला कन्नौज के निवासी हैं। आप उत्साही राष्ट्रीय कार्य कर्ता और साहित्यिक हैं। आपने कन्नौज समाचार का १९३८ से १९४ सम्पादन किया। इसके पश्चात् ४४ तक 'हलच सम्पादन किया १९५२ तक 'सावधान' का सम्पादन अब एक अध्यात्मिक पत्र निकालने की युक्ति में कि राजनीति से विराग और अध्यात्म में राग उत्प गया है। आपको कहानी लेख तथा हास्यगल्प लि विशेष रुचि है।

शतानंद 'संतोषी' बी० ए० साहित्यरत्न (आयु ४० वर्ष)

शतानन्द के पिता स्वर्गीय श्री हरनारायण तथा स्थान ग्राम अकबरपुर कोट तहसील अलीगंज जिला एटा तिथि १७ अप्रेल १९१३ ई०। निवासी कस्बा ता तहसील छिबरामऊ जिला फर्रुखाबाद। १ ई० से उत्तर प्रदेश में सबरजिस्ट्रार हैं सन् १९३ आप हिन्दी में कविता, कहानी, रेखा चित्र आलोचना निबन्ध आदि लिख रहे हैं जो सामयिक पत्र पत्रि में प्रकाशित होते रहे हैं। लगभग दो वर्ष ऊर्मि मा पत्रिका कानपुर के सहायक सम्पादक रहे। अप्रका ग्रंथ (१) मंजरिका (गीत संग्रह) (२) का गीत संग्रह) (३) अमृत वाण (हिन्दी चतु संग्रह) इस समय कन्नौज में सबरजिस्ट्रार हैं।

कविता के उदाहरण निम्न हैं।

'वाणी–वन्दना'

शारदे! वरदान दो मां!!
एक कर में पुस्तिका, कर दूसरे वीणा लिये हो
भाव में संगीत का इस भांति सम्मिश्रण किये है
काव्य सर में बुद्धि रूपी हंस वाहन है तुम्हारा
ज्ञान शतदल दल पटल पर अटल आसन है तुम्हारा
पूजनीया, वन्दनीया, और मंगलकारिणी हो
अमर मुनि अभिनन्दनीया, अंधकार निवारिणी हो
द्वार पर आया भिखारी, आज कुछ तो त्राण दो मां!
भक्त केवल हूं तुम्हारा, भक्ति के मृदु भाव लाया
अभय पाने हेतु वीणापाणि तेरे द्वार आया
पर कसक है एक उर में शूल सी जो है खटकती
अर्चना किस विधि करूं मां! ये नहीं उलझन सुलझती

वह सुघर कल्पना टूट गई,
वह सपना रहा अधूरा।
वह सरोज से भी जो सुन्दर,
रूप-पियूष पिलाने वाले।
और सुधाकर से भी बढ़कर,
मन—चकोर तरसाने वाले।
वह मराल से झूम झूम कर,
दृग पथ पर चलते इठलाकर।
अपनी स्मिति किरण राशि से,
हरते उर का निविड़ अँधेरा।
वह सुघर कल्पना टूट गई,
वह सपना रहा अधूरा॥
घन में जो विद्युत से मिलते,
और दीप में ज्वाला बनकर।
निर्झर सा संगीत लिए जो,
बहते निर्जन में मधु-स्वर भर।
मेरे गीतों की आत्मा वह,
शब्दों के अरमान सजीले।
और प्रणय—परिणय की साथी
अब कब उर सहलायें मेरा।
वह सुघर कल्पना टूट गई
वह सपना रहा अधूरा।

काल

ओ काल कहां तुम जाते,
प्रतिपल अनवरत वेग से चल।
हो भूत भविष्यत बन जाते,
ओ काल कहां तुम जाते।
तुम चलते हो जग चलता है,
तुम मिटते हो जग मिटता है।
तुमसे ही जीवन चलता है,
तुमसे ही जीवन मिटता है।
तुम ही तो वर्तमान बनकर,
जीवन में हो छा जाते।
ओ काल कहां तुम जाते।
जग तुमको रोक न पाया,
रुकना कब तुमको भाया।
जब आगे कदम बढ़ाया,
तब कौन छू सका छाया।
इतिहास तुम्हारी गति।
कुछ कुछ हैं हाल बताते
ओ काल कहां तुम जाते
तुम सुख दुख से परिपूरित,
तुम प्रलय सृष्टि करते नित।
तुम में विधि है प्रतिबिम्बित,
विधि में तुम हो प्रतिबिम्बित।
विधि नाम मात्र के बत
तुम हो यथार्थ दिखलाते
ओ काल कहां तुम जाते

स्वर्गीय उदयनारायण त्रिपाठी 'अरुणेश'

(मृत्यु — १९५० ई०)

आप जलालाबाद के निवासी थे। केवल २८ व की आयु में ही काल कवलित हो गए। नीचे दी हुई आपक अंतिम रचना है। आपके पूज्य पिता प० प्रागदत्त जी अर्भ वर्तमान हैं।

मृत्यु

मृत्यु सरलतम कितनी जग में जीवन दान कठिन कितना है।
मरते कीट पतंगे निशि दिन
नूतन जीवन की आशा में।
किन्तु पहेली जन्म-मरण की,
सुलझी किसी न परिभाषा में।
मरते हैं म्रियमाण सभी तो पर निर्माण कठिन कितना है।
नियति नटी के नग्न हृदय पर
प्रकृति प्रिया से खेला करते।
सुख दुख युगुल पटल परिवेष्टित
वेसा संसृति मेला करते।
निशा तमिस्रा सहज संगिनी स्वर्ण विहान कठिन कितना है।
ज्ञान विवेक बुद्धि मेधा—धी
प्रतिभा सब में भरी पड़ी है।
पर भव सिंधु अगाध भवर में
फंसी सभी की तरी पड़ी है।
मानव नियम बदलते बनते ब्रह्मविधान कठिन कितना है।

मेचक चाप चपल तोरण तन
मीन—मिथुन का रास।
अमल कमल पर तिल प्रसून का
होता रुचिर विकास ॥१॥
यहाँ कीर सारिका पिकों का
हो जाता परिहास।
अनिमय मृदु प्रवाल शय्या पर
ऊषा का आवास।
पल पल पर उस पर फर जाती
सित चपला उल्लास।
मधु पीयूष क्षीर—सरितायें
करती हैं सहवास ॥२॥

हाकिमसिंह जी 'कौशलेन्द्र'

श्री हाकिमसिंह जी 'कौशलेन्द्र' का जन्म डालूपुर ग्राम, तहसील छिबरामऊ जिला फरुखाबाद में हुआ था। इनके पिता श्री दूर्बसिंह जी साहित्यक अभिरुचि के व्यक्ति थे और उन्होंने महाभारत के विराट पर्व का अनुवाद उर्दू शायरी में किया था- कौशलेन्द्र जी ने पहिले पहल उर्दू में ही रचना करने का श्री गणेश किया था- पर श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'चातक' की प्रेरणा से हिन्दी में रचना करने लगे। हिन्दी जगत में आते ही उन्होंने अल्प समय में ही अपनी वह धाक जमाई और अल्प जीवन में वह काम कर गये जो बहुत थोड़े लोग जीवन भर की साधना में कर पाते हैं। नीचे उनकी प्रकाशित पुस्तक 'काकली' और अप्रकाशित पुस्तक 'महाश्वेता' तथा 'प्रभात सुन्दरी से कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं। आप के घर में आग लगजाने से आपको बहुत सी साहित्यिक सामग्री नष्ट होगई।

(१)

"काँपता पवन अविराम पथ चलने,
धरा हुई धूल भार जग का उठाने से।
जलती अनल अपने ही में निरतर है,
नीला पड़ा अम्बर है आह टकराने से॥
"कौशलेन्दु" जल भी बना है कवल प्यास का ही,
बच सका है कौन जगती में दुख पाने से।
डालिया मुझको कहां है भगवान हाय!
दुखिया हुआ मैं इन दुखियों में आने से॥

(२)

मोदयुत रागरंग रचते जहां थे तुम,
भरते जहां पै मधुराग बशीवर के।
सुन पड़ता करुण क्रन्दन वहीं है अब,
पटते यहीं हैं सिर सुरभीं निकर के।
"कौशलेन्दु भारत रहा न वह भारत है,
हुआ निरुपाय हाय! पाले पड़ा पर के।
फिर भी न द्रवने हमारी दयनीयता पै,
क्या हुये कठोर गिरधारी गिरिधरके॥

(३)

सुवर सुमन मन्दित लता मडप यहीं द्युतिमान थे।
किम्वा तने का देवियों के मजु पुष्प विमान थे।
क्षिति पर शिला आसन पड़े, मानो रहे थे यह बता।
सौन्दर्य की शोभा बढ़ाती है सदैव कठोरता।
यों राजते थे फूल नर्गिस के कहीं क्षिति पर पड़े।
वन ने बिछाये हों पथिक गण के लिये दृग पावड़े।
वन-विभव-गर्वित विहग कलरव कर रहे सानन्द थे।
मद में भरे आखें दिखाते, घूमते मृग वृन्द थे।
लहते हुये स्वर्गीय मोद निदान वे पहुँचे वहां।
विटपालि परिवेष्टित अमल अच्छोद सरवर था जहां।
सर था कि सचित एक ठौर प्रकृति वधू का हास था।
किम्वा उतर आया धरापर चन्द्रमा सहुलास था।
अथवा रजत गिरि ही पिघलकर उस जगह पर था भरा।
या विश्व अभिनवित सुयश ने ही धवल तन था धरा।
दर्पण अमन्द मदन प्रिया का या अवनि पर था पड़ा।
या नद्य प्रागण या कि हूरों का विपुल हीरा जड़ा।
या विश्वकर्मा का रचा वह एक मच विचित्र था।
जलरूप में छवि थी कि थी कवि की मनोहर कल्पना।
या भूमि पर यह दूसरा था इन्दिरा मन्दिर बना।
जाती तथा आती पवन के मग लहर अमन्द थी।
सुर चित्र-गृह को खोलती, करती कभी फिर बन्द थी।
मुक्ता उभरता था यहां का मजु दृश्य विलास यों।
घन खड पूरित गगन में मजुल मयक प्रकाश ज्यों।

भगवत दयालु त्रिपाठी 'शंकर' (आयु ३७)

आप छिबरामऊ की एक विचित्र निधि हैं। उत्तम कवि और समालोचक हैं कविता में अधिक रोचक आपका स्वभाव है और समझने की वस्तु है। छन्द और रस के ज्ञान के ऊपर आप अपना विशेषाधिकार समझते हैं। शारदा ग्रंथमाला नाम से आपके 'शंकर शतक' दुर्जन रहस्य, 'स्वर्ण वर्षा' 'रसरछन्द' 'भव्यभारती' आदि १२-१५ पृष्ठों के ५-६ प्रकाशन निकल चुके हैं। आपने एक महाकाव्य शंकर सम्बन्धी चौपाइयों में लिखा है जिसके प्रकाशन में आप उद्योगशील हैं। आप निरन्तर काव्य साधना में निरत रहते हैं।

कविता का उदाहरण निम्न है —

दुर्जन रहस्य

खल मुख धनुष समान उरनिसग-शर-व्यग वस।
व्यथित न होय सुजान क्षमा कवच धारण किए॥
'शंकर' प्रति अनुराग आन कपूर चुंगाइए।
तदपि न दुर्जन काग पर अकाज आमिष तर्जहि॥
सुन्दर सुवरण घोस ढूंढै छिद्र पिपीलिका।
साधु चरित महदोष, मूढ़ खोजि पचिपचि मरहिं॥

आपके उग्र स्वभाव के कारण लोग डरते रहते हैं। अप्रसन्न होने पर कविता भवानी द्वारा आक्रमण कर देते हैं।

विमल कुशवाहा (जन्म तिथि १९२८)

आप अलीनगर के निवासी हैं। पिता का नाम श्री नन्हें सिंह कुशवाहा है।

आज कल छिबरामऊ जू० हा० स्कूल में अध्यापन कार्य कर रहें हैं। कवि सम्मेलनों में प्राय सम्मिलित हुआ करते हैं। आपकी रचनाएं 'अपराधी' दुर्गादास खण्ड काव्य हैं।

आप कहानियां भी लिखते हैं।

अरुण सध्या

(१)

असित वदना अरुण सध्या आगई सुनसान।
तुममें क्यों वसे यह प्राण॥
यालिका सा हास लेकर।
विहसता मधुमास लेकर॥
मिलन की उच्छ्वास लेकर।
प्रेयसी सी आ गई तुम कौन हो अनजान।
तुममें क्यों वसे यह प्राण

मधुर मधुर-प्याला पिलाकर।
थपकियां दे दे मना कर॥
वेदना उर की सुला कर।
एक क्षण विश्राम देती तव सलज मुस्कान।
तुममें क्यों वसे यह प्राण

तारिका माला सजा कर।
चन्द्र का दीपक जलाकर॥
साधना के गीत गा कर।
भारती किसकी उतारोगी अरी! छविदान।
तुममें क्यों वसे यह प्राण।

गीत—

मधुर प्यार के जो बने चित्र उर में
नहीं मिट सके वे न मैंने मिटाये।
मची एक हलचल, बढ़ा ज्वार भीषण,
उठी उर उदधि में अनेकों तरगें।
जगी कामना मौन करवट बदल कर
मचलने लगी व्यग्र सो सौ उमगें॥
उठे भाव उर के रहे थे गले में
न वे सुन सके ये न मैंने सुनाये।
चले साथ ही पर नहीं मिल सके हम,
रहे दूर ही दो नदी के किनारे।
दिया तोड़ मेरा हृदय अन्त में जब,
गगन रो पड़ा रो पड़े चाद तारे॥
नयनों के घट से गिरे चार आंसू
न जग ने ही देखे न मैंने दिखाये।
न भूले हैं अब तक न फिर भूल सकते,
सोने के वे दिन चांदी की रातें।
बनी शेष स्मृति की रेखा है अब तक
हरे घाव अब भी, गई बीत बातें॥

सुकवि डा० महेशचन्द्र द्विवेदी 'प्राण'

आप के पिता का नाम प० छोटेलाल द्विवेदी है। आप छिबरामऊ जिला फर्रुखाबाद के रहने वाले हैं। इस समय आप फिल्म इन्डस्ट्रीज में दिग्दर्शक का कार्य कर रहे हैं। आपका एक सग्रह 'रिझवारि नयना' शीघ्र ही प्रका-

इसलिए मनुष्य फूल पातियों के बीच में,
छू सका न पखुड़ी फसा दुखों के बीच में,
गोरी गोरी बिजलियों के प्यार में,
सावली घटाम्रो के मल्हार में,
हंस रहा म्रो खिल रहा म्रकाश है,
किन्तु म्रादमी सदा उदास है ॥
किसी के पास प्यास ग्रीष्म की लिये मनुज गया,
तुम गरल के पुतले हो तुरत जवाब मिल गया,
तुमको चाद चाहिये न रात के सिंगार को,
कोकिला का स्वर न चाहिये किसी बहारको,
दीप चाद को बनाना चाहते,
अपनी खुशी पर जलाना चाहते;
इसलिए न म्राता चाद पास है
म्रौर म्रादमी सदा उदास है ॥

शिवसिंह चौहान 'गुञ्जन' एम०ए० प्रभाकर साहित्यिरत्न (ग्रायु ३५)

म्राप कायमगञ्ज मुधान इन्टर कालेज में हिन्दी के म्रध्यापक हैं। म्रापकी कविताएँ म्रत्यन्त उद्बोधक म्रौर जीवन प्रेरक होती हैं। भाषा सरल म्रौर बोधगम्य है। म्राप म्रत्यन्त साहित्य प्रेमी म्रौर उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। स्थानीय साहित्यिक वातावरण बनाने का श्रेय म्रापको ही है।

हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय' शास्त्री, प्रभाकर, साहित्यिरत्न (ग्रायु ३०)

म्राप कायमगज के रहने वाले म्रौर साहित्यिक नेता हैं। पालीवाल 'सदेश' पत्र का सम्पादन भी करते हैं। काव्य म्रौर उसके प्रसार सम्बन्धी कार्यों में म्रापकी विशेष रुचि है। पाञ्चाल साहित्य परिषद कायमगंज मण्डल के म्राप व श्री गुञ्जन जी ही कर्णधार हैं।

विशेश्वर प्रसाद 'विनोद' रस्तोगी म्रायु ३२

विनोद रस्तोगी कानपुर में साहित्यसेवा कर रहे हैं किन्तु यह निवासी फ़र्रुखाबाद के हैं। कविता के म्रति-रिक्त नाटक, एकाकी म्रौर उपन्यास में विशेष सिद्धह है। म्रापकी कई रचनाएँ शासन द्वारा पुरस्कृत हो चु वर्ण्य विषय, पौराणिक म्राख्याएँ या नूतन सामा समस्यायें हैं। म्राप का भविष्य म्रत्यन्त उज्वल है।

मदनगोपाल जी वैद्य 'पथिक (म्रायु ३०

म्राप फ़र्रुखाबाद खोर के निवासी हैं। कवि म कार्यकर्त्ता दोनों हैं। नवीन शैली की रचनाय किया क हैं। 'नव वधू' नाम की रचना शीघ्र प्रकाशित होने रही है। वर्ण्य विषय शृंगार है। भाषा उपयुक्त है। इ से भविष्य में विशेष म्राशायें हैं। कविता के उदाहर निम्न हैं।

नव वधू से

वाणी वन्दना (१)

भरा होगा शब्दों में मोह,
तनिक दे दो भावों का दान।
रहो तुम कवि पर करुणाशील,
वरद बीणा के सुन्दर गान ॥
मूक में तव वाणी की देन,
सिद्धि हो स्वयं तुम्हारा ध्यान।
सुलभ प्रतिभा के प्रेरित छन्द,
बनेंगे कविता मय वरदान ॥

(२)

म्राधार मेरी चन्द्रिका, प्रिय तुम गगन में खिल रही हो।
तारिकाम्रो में तुम्हारी छवि, महाप्रिय लगरही हो॥
देवि, म्राकुल हो रहे हम-म्रौर तेरा रूप देखें।
तव बुलाकर साधनाम्रो का मधुर परिहास पेखें॥
किन्तु लज्जित नयन तेरे, मूक में म्रनुराग लेकर।
भूल देखो तुम न जाना, वह चुका सौगन्ध देकर ॥
पन्थ चलकर प्रेम पग में, क्या किसी को ठगरही हो।
प्रिय मिलन की सुखद बेला, के क्षणों में जग रही हो॥

फर्रुखाबाद जनपद

एक सामान्य पर्यालोचन

पूर्व खण्डो में पञ्चाल प्रदेश के इतिहास एव कवियो
के वर्णन के साथ हमे जनपद के सास्कृतिक और साहि-
त्यिक जीवन की गौरवमय झाकी देखने को मिल चुकी है
उसी परम्परा से सम्बन्धित यहा का लोक जीवन, धार्मिक
विश्वास प्रशस्तियां एव प्रयास किस प्रकार रहे हैं इस पर
भी विचार करना आवश्यक है । इन सबका थोडा सा
परिचय देना इस खण्ड का अभीष्ट विषय है ।

फर्रुखाबाद गगा यमुना से निर्मित उपजाऊ भूमि
में स्थित है । अतएव इस क्षेत्र का मूल व्यवसाय कृषि
रहा है। अतीत काल से जो विद्या और साहित्य की उन्नति
यहा होती रही है उसका एकमात्र कारण था कि युद्ध
और विध्वसो से दूर केवल शान्ति की उपासना इस क्षेत्र मे
होती रही । किन्तु यवन आक्रान्ताओ के आवास से यहाँ
की चेतना में परिवर्त्तन आगया, परिणाम स्वरूप कुछ ऐसे
भी क्षेत्र हैं जो अपराधवृत्ति के केन्द्र मानलिए गए हैं ।
जैसे कायमगज का क्षेत्र किन्तु फिर भी यह जनपद व्यवसाय
और उत्पादन में अग्रणी ही रहा है ।

कन्नौज, सकिसा और काम्पिल्य का व्यवसायिक
सम्बन्ध मगध आदि दूर दूर प्रदेशो तक रहा है। चौथी
पांचवी शती में कान्यकुब्ज, मथुरा कौशाम्बी का व्यापार
अत्यन्त दृढ था । बडे २ श्रेष्ठियो के कार्यवाह पण्यद्रव्यो
से लदी हुई नौकाएँ लेकर चला करते थे । कौशाम्बी के
'सुफल' नामक श्रेष्ठी के अभिकर्त्ता कान्यकुब्ज में रहा
करते थे । उस समय व्यापारिक एव अन्य यातायात के
साधन केवल नदी मार्ग थे । वर्षा ऋतु में छोटी नदियो में
बाढ़ आने के कारण छोटे और अतरवर्ती नगरो से व्यापार
सुगम हो जाता था । जनपद के समात स्थानो में प्राचीनतम
काम्पिल्य रहा है । यह वैभवकाल राजा
दशरथ और राम के राज्य के समकालीन और उसी
प्रसिद्धि का रहा है । बौद्धयुग में सकिसा ने महत्वपूर्ण
स्थान प्राप्त किया । सकिसा से मगध का व्यवसाय कन्नौज
द्वारा होता था । कन्नौज का उदय एक स्कन्धावार के रूप
में हुआ जिससे आक्रमणकारियो से व्यापारिक सुरक्षा प्राप्त
हो सके । सकिसा के ह्रास के पश्चात कन्नौज का पुनरोदय
हुआ । कन्नौज गगा राम गगा और काली नदी के सयोग पर
स्थित होने के कारण व्यापारिक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा ।

सन्त महात्मा

बुद्ध भगवान का स्वय आगमन इस प्रदेश में हुआ
था । काम्पिल्य कन्नौज और सकिसा यहा के महान बौद्ध
तीर्थ रहे हैं । यद्यपि अब यहा बौद्ध धर्मावलम्बियों का
अवशेष भी नहीं रहा है किन्तु सकिसा तो एक समय इनका
प्रधान क्षेत्र रहा होगा । कम्पिल में प्रथम जैनतीर्थंकर
ऋषभदेव ने उपदेश किया था और तेरहवें तीर्थंकर विमल-
नाथ का तो जन्म ही यहीं हुआ था । इसी दृष्टि से जैन
विचारो का केन्द्रस्थल भी यह प्रदेश रह चुका है । जैन-
मतावलम्बी अब भी कुछ सख्या में जनपद में विद्यमान है ।
जैन और बौद्धधर्म के ह्रास के पश्चात यहा भी वैदिक
धार्मिकता का उदय हुआ । जो पाषाण खण्ड बुद्ध और जैन
मूर्तियो के प्रयोग में प्रचुरता से आते थे, अब देवी देवताओ
की मूर्तियों के रूप मे आने लगे । यहाँ के धार्मिक इतिहास
मे यद्यपि कोई क्राति नही हुई किन्तु पांडित्य और विद्या में
कन्नौज और कम्पिल सदैव अग्रणी रहे । काशी के विद्वानों
से सम्पर्क और विद्यार्जन का सम्बन्ध बराबरी के स्तर
पर बना रहा । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का तो उद्‌गम
स्थल ही माना जाता है । श्रद्धा और धार्मिक विश्वास इस
क्षेत्र के सदैव बढ़े चढ़े रहे । जिनका प्रमाण यहा विविध
धर्मावलम्बियो के मंदिर और पूजास्थल हैं । जिस भूमि
में हर्ष सरीखे दानवीर हो गए हों, वहां की परम्परा रिक्त
कैसे रह सकती है । हमारे पास अतीतकाल का क्रम
बद्ध इतिहास नहीं है, किन्तु इधर एक शताब्दि में जो जो
महामानव और आत्माएँ इस प्रदेश में भिन्न भिन्न ज्ञानों से
युक्त हुई हैं उनका परिचय नीचे के विवरणों में दिया जा
रहा है । शिक्षा, ज्योतिष, वैद्यक, भक्ति, मल्लविद्या आदि

की हड़ताल थी। गाड़ी का समय हो रहा था। अनायास ही रामहेतु ठेला वाले पधारते हैं और सामान लाद कर स्टेशन पहुंचा दिया जाता है। किन्तु यह क्या! रामहेतु ठेले' वाले का अब तक फर्रुखाबाद में कोई पता ही नहीं लगा है। कविता का उदाहरण —

प्रभु हम अघनि, ओघन भरे,
हम अघ-अघ हरन तुम हरि पन ना वोउन टरे।
कोल गुह गज जमन जड खस अमित खल निस्तरे॥
हमहु लसव उवारतावलि रहहु सगर खरे।
पतित नायक के सियावर आजु पाले परे॥

फर्रुखाबाद जनपद के विद्वानो की प्रसिद्धि और गंगा के पवित्रतट के आश्रमो की रमणीयता महर्षि दयानन्द को भी अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हुई थीं। यही कारण थे कि वे एक बार नहीं अपितु सात बार फर्रुखाबाद में पधारे थे। उनके पवित्र उपदेशो और उनकी कृपा से इस क्षेत्र का परम उद्धार सम्भव हो सका। यहा का आर्य समाज प्रान्त के प्रमुख आर्यसमाजो में से पुराना और प्रसिद्ध स्थान प्राप्त किये हुये है। समाज के पास जो दान सम्पत्ति उनके प्रति श्रद्धा का प्रमाण ही है।

सर्व प्रथम ४३ वर्ष की आयु में स० १९२४ वि० ज्येष्ठमास में अपनी हरिद्वार यात्रा के प्रसङ्ग में स्वामी जी फर्रुखाबाद पधारे थे। उस समय वह केवल कोपीन धारण किए हुए थे। दो तीन दिन ठहर कर चले गए थे। दूसरी बार वे १९२५ वि० पौष मास में पधारे और विश्राम घाट पर ठहरे। उस समय की प्रमुख घटनाओ में लाला जगन्नाथ प्रसाद को यज्ञोपवीत दान तथा श्री गोपाल शास्त्री से मूर्ति पूजा विषयक शास्त्रार्थ था। इस समय पंडितवर्ग ने कुछ गडबड फैलाने की चेष्टा की थी जिसके निराकरण के लिए पुलिस को आना पडा था। १९ जून १८६९ई को काशी के हलधर ओझा और नगर के अन्य विद्वानों का स्वामी जी से शास्त्रार्थ हुआ था। इसी अवसर पर स्वामीजी ने साधो द्वारा प्रदत्त कढ़ी भात खाया था वर्णाश्रम व्यवस्था न मानने का आरोप स्वामी जी पर इसी हेतु लगाया गया था। इस बार के आगमन में स्वामी जी विशेष विश्रुत हो गए थे। बहुत से उनसे शका समाधान और बहुत से खिल्ली उड़ाने पहुचते थे। स्वामी जी के शारीरिक बल की परीक्षा लेने चौबे पहलवान पहुचे थे। उन्हें स्वामी जी ने अपनी कोपीन निचोड कर दी और कहा कि यदि इसमें से कोई पहलवान एक बूद भी निचोड देगा तो पहलवान माना जायगा।

प्रयत्न करने पर भी एक बूंद न निकली तो खिसिया कर लौट गए। दुष्ट वचन कहने पर शांति रहकर और अपमान के हेतु प्रयत्नो के समय मौन रहकर स्वामी जी ने अपने लिए अपार श्रद्धा उत्पन्न करली। वे यहां के जीवन में समाते गए।

स०१९२८ के भादों मास में स्वामी जी तीसरी बार पधारे। कोई विशेष घटना न हुई। चौथी बार पुन सं०१९३० में पधारे। इस समय उन्होंने प० विशेश्वरदयाल का भ्रम निवारण किया। स० १९३३ में जेठ मास में स्वामी जी पाचवी बार पधारे। इस बार स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना का प्रस्ताव रखा और यह भी कहा कि जब तक समाज की स्थापना न होगी, मैं यहां पुन नही आऊगा १९३६ में समाज का निमत्रण जाने पर ही वह छठी बार पधारे। स्वामी जी ने अपने विद्वता पूर्ण प्रवचनो द्वारा जनता की चेतना को जागृत किया यहां के पंडितो ने पच्चीस प्रश्न स्वामी जी के सम्मुख रखे जिनका लिखित रूप से समाधान समाज द्वारा प्रस्तुत किया गया। स्वामी जी सातवी और अंतिम बार २० मई १८८०ई में पधारे स्वामी जी के इस अवसर के भाषण अत्यन्त महत्वपूर्ण थे स्वामी जी की अवस्था अब लगभग ५६ वर्ष की होगई थी वेदो के भाष्य का कार्य चल रहा था। इस कार्य की पूर्ति के लिए १३५०) का दान एकत्र करके प्रदान किया गया इसी अवसर पर धर्मार्थकोष के हेतु नवाब शम्शाबाद ने २०००) का दान दिया था।

स्वामी जी के साथ जो विभिन्न समय पर शास्त्रार्थ हुए थे वे केवल स्पर्धावश ही नही थे। कुछ विद्वानो ने जिज्ञासु और सहज भाव से वार्तालाप किया था। स्वामी जी ने उन सज्जनों की बिद्वता की प्रशंसा की। इन सज्जनों में गोस्वामी नारायण शास्त्री, प० प्रयागदत्त जी, प० उमादत्त जी प्रमुख हैं। स्वामी जी १९२६ वि० में कन्नौज में भी पधारे थे। वहां 'गप्प' पद को लेकर प० हरीशंकर लाल तिवारी से शास्त्रार्थ हुआ था। यह

र्गं की चेतना का प्रभाव जन जीवन पर पड़ा। फरुखाबाद नगर का निर्माण उन्हीं व्यक्तियों की अधिकता के साथ हुआ होगा जो मुहम्मदखां के कुटुम्बी या साथी थे। स्थापना के अनन्तर लगातार तो लूट मार चलती रही उसका प्रभाव लोक मानस पर पड़ना आवश्यक था। फरुखाबाद के बारे में जो किंवदंतियाँ हैं, वह इसी कारण। फरुखाबाद का व्यक्ति स्वार्थी और 'ईर्ष्यालु है, तथा उसकी प्रत्येक बात में कोई पालिसी अवश्य निश्चित है। वह मधुरभाषी नहीं है किन्तु अपनी वाक्पटुता से अपनी अभीष्ट सिद्धि करने के प्रयत्न करता है। कन्नौज का व्यक्ति मिष्ठ भाषी है। आपके सम्मुख तो लखनऊ वाली प्रसिद्ध औपचारिकता वर्तेगा किन्तु परोक्ष होते ही परिवर्तित ढंग से सोचेगा। कन्नौज के इत्र में उसकी चेतना का मूल सादृश्य देखने को मिलेगा। शीशी खोलकर देखते समय तो सुगन्ध का स्रोत किन्तु थोड़ी देर पश्चात बिलकुल गन्ध हीन। सैकड़ों खुली हुई केवल नाम की कम्पिनियाँ कनौजीय चरित्र की द्योतक हैं। गंगापार के विचार निरालेहीहैं। इधर वाले व्यक्ति गंगापार जाते हुए हिचकते हैं। कारण उनका स्वभाव अत्यन्त कठोर माना जाता है। जीवन को सुख किस प्रकार देना चाहिए इस व्यवहार को वह नहीं जानते। बोलने में और व्यवहार में एकदम प्रखर होते हैं। अस्तु। इस वर्गीकरण का तिरोधान अब होता जारहा है। वास्तव में व्यक्ति का स्वभाव जीविका जलवायु आदि के द्वारा ही निर्मित होता है। परिस्थितियाँ उसमें रंग भरा करती हैं। शिक्षा और संस्कृति के विकास से आज जहां विश्व एक हो रहा है, वहां जनपद के व्यक्ति भिन्न रूपों में वर्गीकृत और भिन्न स्वभाव को लेकर कब तक रह सकते हैं।

जनपद की बोली को कन्नौजी की संज्ञा दी जाती है। किन्तु सूक्ष्म अध्ययन से परिणाम यह नहीं निकलता है। पञ्चाल प्रदेश के अस्तित्व के समय में यहां की साहित्यिक रीत पञ्चाली पद्धति के नाम से विख्यात थी। आज उसका कोई अध्ययन हमारे सामने प्रस्तुत नहीं है, जिससे विश्लेषण करके कोई निष्कर्ष निकाला जा सके। यह अब आवश्यक होगया है कि किसी भाषाशास्त्री द्वारा जनपद की बोलियों का सम्यक अध्ययन किया जाय। जिस कन्नौजी संज्ञा का प्रयोग किया जाता है वह तो कन्नौज तक ही सीमित है और कानपुर की ओर बढ़ती जाती है। जनपद के दक्षिण पश्चिमीय भागों में तो बृज का प्रभाव स्पष्ट है। पश्चिमोत्तर में पश्चिमी हिन्दी प्रयोग में आती है। गंगापार की बोली एकदम अलग है। इस प्रकार से ४-५ उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। सूक्ष्म अध्ययन से देखा जाय कि किस किस बोली का प्रभाव कहां तक है। सामान्य रूप से कहा जासकता है कि प्रयुक्त बोली परुष नहीं है। कायमगंजी पठानों की बोली के 'कनैग्रा, आरिया' है, "खारिया है" आदि प्रयोग अपनी विशेषता रखते हैं।

लोक गीतों में बोली का वैविध्य और देखने में आता है। जातीय परम्परा से भी इनमें परिवर्तन होता रहता है। धीवर, धोबी, अहीर आदि अपनी विशेष भाषा में जब सस्वर गीत पाठ करते हैं तो हमें उनकी भाषा पर आश्चर्य होने लगता है। फरुखाबाद जनपद ऐसे स्थान पर स्थित है जहाँ राजस्थानी, बृज, बुंदेलखण्डी अवधी आदि सीमावर्त्ती भाषाओं के संकेत बोली में घुले मिले दिखाई पड़ते हैं।

उत्पादन, उद्योग एवं व्यवसाय

पूर्व परिच्छेदों में जनपद के प्राचीन व्यापार का एक संक्षिप्त वर्णन दिया गया था। फरुखाबाद जनपद भूमि के उपजाऊ होने के कारण धान्य से परिपूर्ण क्षेत्र रहा। कृषि उत्पादनों में आलू, तम्बाकू, गन्ना, गेहूं, फलों में नीबू और नारंगियां ककड़ी, आम, बेर, बेल, कटहल तरबूज और खरबूजे ही मुख्य रहे हैं। यह समस्त उत्पादन सदैव से बाहर भेजे जाते हैं और अब भी वही क्रम चालू है। आलू तो देश के कोने कोने तक जाता है। तम्बाकू के लिये तो यह क्षेत्र प्रसिद्ध ही है। 'कम्पिल' की खाने की तम्बाकू भारत विख्यात है। तम्बाकू खेड़ों वाली भूमि में अच्छी उत्पन्न होती है। इसी लिये कम्पिल, कन्नौज इसके विशिष्ट केन्द्र हैं। गन्ना कायमगंज क्षेत्र में अधिक होता है। गुड़ और शकर बनाने का व्यवसाय उसी क्षेत्र में चालू है। फलों में तरबूज और खरबूजा गंगा जी की रेती में बहुलता से होते हैं। इनका निर्यात दूर दूर नगरों और प्रान्तों में होता है। मूंगफली भी इधर उत्पादनों में अच्छा स्थान प्राप्त करती जा रही है। गेहूं का उत्पादन यहां की जनता की पूर्ति करते हुए भी शेष बच रहता है जो निर्यात कर दिया जाता है। कायमगंज के बेर व अमरूद विशेष स्वादिष्ट होते हैं।

और आगरा की उन्नति के साथ कन्नौज, फर्रुखाबाद आदि का महत्व शून्य होगया है। आज फर्रुखाबाद की गणना पिछड़े हुए जिलों में की जाती है।

वाद्यकार और संगीतज्ञ

गायन, वादन और नृत्य संगीत के प्रमुख अंग हैं। प्रस्तुत लेख में जनपद के गायकों, वादकों और नर्तकों का परिचय देना अभीष्ट है। वर्तमान वादनों में तबला प्रमुख है, और सर्वप्रिय तबला वादन का आरम्भ तेरहवी शती से माना जाता है। तबला वादकों की वंशपरम्परा दिल्ली से प्रारम्भ हुई। इधर उधर फैलने पर इस विद्या में विशेषतायें जुड़ने लगीं। विभिन्न घरानों की शैली को 'बाज' कहने लगे। वर्तमान में इनमें निम्न घराने प्रसिद्ध हैं।
(१) दिल्ली (२) अजराड़ा (मेरठ) (३) पूरब (अ) लखनऊ (ब) बनारस (स) फर्रुखाबाद।
इस प्रकार हम देखते हैं कि तबला वादकों की परम्परा में फर्रुखाबाद प्रमुख है। तवले का विकास ख्याल गायन के साथ ही साथ हुआ।

लखनऊ के नवाब ने दिल्ली दरबार से उस्ताद बख्शूखां व मोदूखां को अपने यहाँ प्राप्त किये। उस्ताद बख्शूखां ने अपनी कन्या का विवाह फर्रुखाबाद के तबला वादक उस्ताद विलायत अली से किया। और दहेज में तबले की बहुत सी चीजें दी। अपने दामाद को तबला वादन तो उन्होंने निश्चय ही सिखाया था। उस्ताद विलायत अली साहब बंगशवंशीय नवाब हसमतजंग के दरबारी कलाकार थे नवाब साहब स्वयं इस विषय के ज्ञाता थे। उस्ताद विलायत अली मु० चीनीगरान के रहने वाले थे उन्हीं से यहां का घराना चलता है। विलायत अली साहब के बारे मे प्रसिद्ध है कि मक्का जाकर हज करते समय इन्होंने तबले के वादन मे दक्षता प्राप्त करने की प्रार्थना सदैव की। दैवी प्ररणा से जो गतें उन्हें प्राप्त हुई थीं वह आज भी हाजी की गतों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका देहावसान सन१८५२ के लगभग हुआ था। आपकी तथा वंश शिष्य परम्परा निम्न प्रकार से चली।

हाजी विलायत अली साहब
- शिष्य
  - (१) उस्ताद इमामबख्श
  - (२) ,, मुबारकअली
  - (३) ,, सलारीमियां
- पुत्र
  - उ० हुसैन अली खां
    - शिष्य: उ० मुनीर खां (मृत्यु १९४०)
      - शिष्य: उ० अहमदजान थिरकवा ( ), उ० गुलाम हुसैन
      - पुत्र: उ० अमीर हुसैन
        - उ० नन्हेंखां
          - उ० मसीत खां खलीफा (कलकत्ता)
            - शिष्य: (ज्ञान घोष कलकत्ता)
            - पुत्र: उ० करामत हुसैन

उस्ताद थिरकवा ने मुनीर खां साहब से लगभग ४० वर्ष तबला वादन की शिक्षा ग्रहण की थी। आप नवाब रामपुर के आश्रित हैं। उस्ताद करामत कलकत्ता रेडियो स्टेशन पर कलाकार हैं। उस्ताद मसीत खां साहब अब भी रामपुर स्टेट में हैं।

नवाब हसमतजंग के दर्बार में भी अच्छे कलाकार थे। आप के दर्बार के मज्जो खां प्रसिद्ध गायक हुए हैं। मज्जो खां के शिष्य उमराव जो मऊदरवाजा के रहने वाले थे। तानपूरा पर बहुत सुन्दर गाते थे अपने गुरु मज्जो के साथ उन्हें भी दरबार में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता

फतेहगढ़ वाले तबला बजाने में दक्ष थे। शंकरलाल तथा उनके पुत्र पुत्तूलाल सारंगी अच्छी बजाते थे। फतेहगढ़ मे गुलज़ारी लाल अब भी तबला में प्रसिद्ध हैं। ग्रल्लन साहब अच्छे गायक थे।

नगर के गायकों में ललन पिया ने जो ठुमरी गाने मे प्रतिष्ठा प्राप्त की वह अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुई। आप ठुमरी गाने मे सम्पूर्ण भारत में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके है। ललन पिया जी का पूरा नाम नन्हेलाल था। आपके पिता ज्वाला प्रसाद जी अच्छे गायक थे। ललन पिया जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे। मो० मितूकूचा के रहने वाले थे। आप समय समय पर रजवाडों में ठुमरी गाने जाते थे। गायक के साथ साथ आप गीतकार थे। अत ठुमरियों की रचना स्वयं करते थे। आज भी गायक वृन्द आपकी बनाई हुई ठुमरिया बड़े गर्व से गाते है। 'ललन पिया' आदि आपके कई सग्रह छप चुके हैं। आपकी ठुमरियो के कुछ उदाहरण निम्न हैं।

राग खम्माच

(१)

मोहनी मोहनी सोहनी सोहनी सूरत–
वाले रे सलोने समरिया रे।
जोमे मोर बसत लसत छवि चितवन की,
तोर अमिय हलाहल मद मोहनिया।
सिय चपल दृग प्यारे तिहारे,
नन्दललन वृजजन अधारे रे बुलारे रे॥

(२)

सखी सैंया की सुरतिया जियरा हरे,
ऐसे नयना अरूनारे कजरा खजन सों खरे।
चारू हिरन चतुर अधिक ललित,
बसन हसन न्यारी, बरस तरस रग।
सो दृग सो ललन छल रसिया
रगीलो ठाढ़ो तीर तरू तरे॥

(३)

सजन सखी सौतन घर गय मोर,
लगन लागी हमरी उन सग डोर।
निसदिन कल नहि आवत बेकल,
ललन पिया बिन नन्द किशोर॥

(४)

नित करत कन्हैया मोसे नई रारि।
ना माने सजनी देखो मैं कहां लग हटकों।
डगर चलत छलत अचरा गहत आज।
कौन जतन सो मन्दिरवा जाऊ।
ललन पिया ढीठ लगरवा अटको। आदि।

आपने अधिक तर खम्माच राग में ठुमरियाँ लिखी है। आपके ठुमरी के शिष्य भारत वर्ष में फैले मिलते हैं। आप का देहान्त ६० वर्ष की आयु में लगभग २५ वर्ष हुए हुआ है। आपके दो प्रसिद्ध शिष्य इस नगर में भी हुए। एक इन्नालाल खत्री खतराने मो० (२) लालमन उपनाम लल्ला हनूमान। यह ठुमरी अच्छी गाते थे ललन पिया के ही अनुरूप होने के कारण बहुत से लोग अपरो ही ललन पिया मानते थे। आपके कई शिष्य हुए जिनमें गोपीनाथ गौड, हारमोनियम निर्माता अधिक प्रसिद्ध हैं। गोपीनाथ ने ठुमरी लल्ला हनूमान से सीखी आपके बहनोई प्यासीराम ध्रुपद के अच्छे गायक थे। आपने भजनीक के रूप में काफी भारत भ्रमण किया।

प० प्यारेलाल गोस्वामी के पुत्र मथुरा प्रसाद तथा मन्नूलाल जी अच्छे सितार वादक तथा गायक थे। मथुरा प्रसाद जी तो केवल गायक ही थे परन्तु प० मन्नूलाल जी कवि भी थे। अत अपने पदो का निर्माण करके गाया करते थे। मन्नूलाल जी गोस्वामी क पुत्र केशवदेव गोस्वामी जी सगीत विशारद हैं। गायन के साथ साथ तबला वादन आदि का अच्छा ज्ञान है।

गोविन्द शकर कटरा नुनहाई मो० के रहने वाले थे। हारमोनियम वादन में बहुत सिद्धहस्त थे। देवी दयाल शास्त्रीय गाने का ज्ञान रखते हैं।

गिरधारीलाल नटराज बिन्दादीन लखनऊ वालों के भतीजे थे। आप नृत्यकार अच्छे थे। आप घुंघरुओं को मुह से उठा लेते थे। बताशा, तलवार आदि पर सुन्दर नृत्य करते थे। आप मुसलमान हो गए थे लेकिन नाम सर्दैव यही रखा।

इस प्रकार से यहां के सगीतज्ञों की परम्परा भी जनपद के गौरव क अनुकूल ही रही है।

इत्यादि ज्ञान श्रौर सच्चा धर्म पहिचानना अर्थात ज्ञान से भेदी होने की कोशिश करना ।

(२) कर्ता का ध्यान सुमिरन श्रौर उसके नाम को जपना श्वासा सुमिरन की रीत से ।

(३) वचन की साधना अर्थात वचन की बुराई श्रौर पापो से रोक कर धर्मानुसार कोमल हितकारी सत्य वाणी बोलना ।

(४) हिंसा का त्याग अर्थात जीवहत्या से वचना श्रौर मुह से भी ऐसे वचन न बोलना शरीर से भी ऐसे कार्य न करना जिसके कारण दूसरो को दुःख पहुचे ।

(५) शुद्ध भोजन—अर्थात भक्ष, अभक्ष भोजन पर विचार करके भोजन करना मास मदिरा पान तम्वाकू आदि अखज का बहुत परहेज करना दृष्टि से सोधकर अन्न खाना कपडे से छान कर जल पीना ।

(६) धन्धा—शुद्ध आमदनी पर गुजारा करना जूआ चोरी,हिंसा, राज, व्याज, भिक्षा, चाकरी दूसरो को दुःख देकर आया हो ऐसी आमदनी श्रौर कुधान का त्याग रखना तथा अपनी मेहनत शुद्ध आमदनी में से कुछ हिस्सा सुकाज परमार्थ में खर्च करना

(७) सतगुरु को गुरु करना—किसी मनुष्य को गुरु या चेला न करना सत्य नामी पथ का नियम है ।

(८) आपस में भ्रान्त न करना सतगुरु के जो शिष्य हैं उनसे खानपान में किसी बात का परहेज, जात भेद तथा ऊच नीच की शका नहीं करना चाहिए ।

(९) दण्डवत करना हाथ जोडना सिर झुकाना सिजदा करना गरीबी अधीनी अर्दास करना ये काम सृष्टि के मालिक से करना किसी मनुष्य से न करें एक मालिक की ही भक्ति करना चाहिए ।

(१०) साधुओ का सग उन्हीं का आदर उन्हीं से मेल रखकर धर्म का विचार करना श्रौर भोजन श्रौर वस्त्र से उनका सम्मान आदर करना ।

(११) दास भाव अपने तईं को गुरुका दास आज्ञाकारी समझना, गरीबी, आजिजी साथ में लेकर धर्म पर चलना ।

(१२) छं का त्याग छं का ग्रहण करना, भक्ति मार्ग जीवन मुक्त के छं साधन हैं शील सन्तोष, धीरज, क्षमा, विचार श्रौर विवेक इनको ग्रहण करना श्रौर काम क्रोध,लोभ मोह अहकार आलस यें छं वैरी हैं इनका तथा तृष्णा का त्याग करना सत्य नामी पन्थ का सिद्धान्त हैं ।

(१३) रीत की प्रीत साधो की रीत है जो एक मार्ग पर चलते हैं एक विधि के हैं, आपस में मेल तथा एकता रखना छल कपट कटु बचन कभी न कहना एक दूसरे के साथ सहानुभूति रखना ।

(१४) स्वार्थ का त्याग करना दुखी के साथ भलाई करना श्रौर उसकी हर प्रकार मदद करना तथा प्रति उपकार की लालसा न करना सृष्टिकर्त्ता सर्व रक्षक है उसी से सुख की आशा करना सत्यनामी पन्थ का काम है ।

(१५) आत्मवल बढाना जिसके पास आत्मवल होता है वह अपने कठिन काम कर सकता है आत्मवल वढ़ाने के लिये इतनी बातें चाहियें (१) धर्म को पहिचानना (२) चित्त को एकाग्र करना (३) मन चञ्चलताई से बचाकर कर्ता की श्रोर लगाना (४) वीर पुरुषो का सग तथा उनका चरित्र पढ़ना (५) हताश न होना (६) सहनता स्वीकार करना (७) उचित्त कामो के करने में दुःख श्रौर कष्ट से न घवडाना (८) मन इन्द्रियो को रोक कर सत्य बोलना (९) ब्रह्मचर्य ग्रहण करना (१०) सत्त नाम जपकर हृदय में ज्ञान का प्रकाश वढ़ाना ।

(१६) शुद्ध सूती वस्त्र पहरना, सिर पर सफेद पगडी या साफा बाँधना । रेशम, ऊनी, चमडा भगवाँ तथा रगीन कपडा न पहरना सत्यनामी साधो का काम है जो ऐसा नहीं करते उनके लिये अफसोस है ।

(१७) नित्य नियम सतगुरु की आज्ञा आठ पहर सुमिरन अगर इतना न हो सके तो सुवह शाम कम से कम से एक एक घण्टा सुमरन जरूर करना चाहिए । प्रात काल सूर्योदय से पहले उठना तथा नियम सब कामो के लिये होना चाहिये ।

(१८) मन को शुद्ध रखना, विचार करके प्रत्येक काम करना व्यभिचार अधिक सोना मिथ्याभाषणतामसी भोजन तथा दुष्ट पुरुषों को सग से बचनाचाहिये

विख्यात एव प्राचीनतम 'टोका घाट'

रामजानकी तथा राधाकृष्ण के मन्दिरों के साथ २ नगर में शिवजी के मन्दिरों का बाहुल्य है, इसी लिए इसे अर्ध काशी भी कहा जाता है। जिस गली में भी आप जायें एक दो शिव मन्दिर अवश्य मिलेंगे। यहाँ के शिव मन्दिरों और काशी के मन्दिरों की बनावट में एक विशेष अन्तर है। बनारस के मन्दिर प्राय. दक्षिण प्रणाली के अनुसार कोणाकार बने हुए हैं और यहाँ के अधिकांश मन्दिर गुम्बजाकार हैं।

नगर में कुछ शिव मन्दिर बहुत प्रसिद्ध तथा प्राचीन हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध पण्डा बाग का शिव मन्दिर है। कहा जाता है कि द्रौपदी के स्वयंवर में आने पर पाण्डव यहीं ठहरे थे और तभी से इसका नाम पाण्डव बाग है जोकि बिगड़ते २ पण्डाबाग रह गया है। इसका जीर्णोद्धार अभी हाल में हुआ है। तथा रथ यात्रा के दिन यहीं मेला लगता है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध मन्दिरों में तामेश्वर नाथ का भी मन्दिर मु० आढ़तियान में है। हजारी बाबा नाम का शिव मन्दिर सरस्वती भवन में है। यह मूर्ति पहिले गिरजा घर वाले स्थान पर थी। गिरजा घर के बनने के समय यह मूर्ति इस स्थान पर स्थापित कर दी गई है। इस मूर्ति में हजार लिंग बने हुए हैं इसी से इसका नाम हजारी बाबा है। एक प्रसिद्ध शिव मन्दिर कोतवाली के पीछे भी है।

नगर के मध्य में एक देवी जी का मन्दिर है। मन्दिर में कुछ मूर्तियां पुरानी है,जोकि इसी स्थान पर खुदाई के समय निकली थीं। इस मन्दिर के पीछे ही एक हनुमान जी का मन्दिर है। मन्दिर अभी नया ही बना है। यहाँ चैत्र सुदी ८ को एक विशाल मेला लगता है। थोड़ी दूरी पर ही शाह जी की प्रसिद्ध तथा दर्शनीय जौरा भौंरा नाम की हवेलियां है और पास में एक प्राचीन हनुमान जी का मन्दिर है।

सबसे प्रसिद्ध हनूमानजी का मन्दिर मु० मितूकूँचा में है। यहां पर नित्य ही भीड़ लगी रहती है परन्तु मगल के दिन काफी भीड़ होजाती है। फतेहगढ़ में हनुमान जीकी बहुत ही विशाल मूर्ति है। तथा रानी घाट नामक स्थान पर राजा दिलीप सिंह जी की पत्नी द्वारा बनवाया हुआ शिव मन्दिर है। यहीं पर एक किला है जो बड़े अच्छे ढग का बना है। इसका राजनैतिक महत्व सदैव रहा और आज भी है। लेकिन अंग्रेजों के समय से यहाँ का मह सैनिक शिक्षा केन्द्र होने के कारण अधिक हो गया है।

नगर की पश्चिमी प्राचीर से बाहर निकलते ही ए स्थान पर गदा के अनुरूप एक बहुत भारी वस्तु म हुई है जिसे भीमसेन की गदा की सज्ञा दी जाती है। इस कुछ आगे गुरुगाव नाम का स्थान है। कहा जाता है कि गुरु द्रोणाचार्य इसी स्थान के रहने वाले थे। उन्हीं के ना पर इस स्थान का नाम गुरुगांव पड़ा। यह पर एक प्राचीन देवी का मन्दिर है जहा हर वर्ष श्रा मास के मगलवारों पर मेले लगते हैं। मेले में अधिक महिलायें आती हैं और उन्हीं से सम्बन्धित सामग्री क क्रय विक्रय होता है।

इस ओर नवाबी समय के बने हुए बहुतेरे भवनों के खण्डहर है। यह अधिकतर मकबरें है। इस ओर से नग की ओर चलने पर पुराने किला का टीला है। किला का केवल एक बुर्ज शेष रहा है जिसे नक्कार खाना कहा जाता है। नवाब ने १८५७ के स्वतन्त्रता सग्राम में सैनिकों का साथ दिया था। कुछ दिनों बाद जब अंग्रेज फौज पुन सशक्त हुई तो यह किला तोपों द्वारा उड़ा दिया गया था। अब इस स्थान पर नगर पालिका-कार्यालय तथा तहसील है इस स्थान के पास ही तराई में गमा देवी का मन्दिर है जहां चूड़ा कर्म हुआ करते हैं। यहीं पर करबला है जहा मोहर्रम में ताजिये दफनाये जाते है।

पूर्व की ओर बड़पुर गाव में सदानन्द तिवारी द्वारा बनवाया हुआ एक सुन्दर देवी का मन्दिर है। यहां चैत तथा क्वार के मास में मेले लगते है। इस मेले में भी महिलायें विशेष कर आती हैं।

नगर के दक्षिण दिशा में लगभग ४ मील दूरी पर टिमरूआ गांव में भी एक प्रसिद्ध मन्दिर है। यहां पर भी असाढ़ मास में मेला लगता है।

गणेश जी तथा भैरव मन्दिरों के साथ दो चित्रगुप्त के मन्दिर भी है। एक फरुखाबाद में है जो प्राचीन है तथा दूसरा फतेहगढ़ में नवीन बना है।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त आर्यसमाज सभा मन्दिर लोहाई रोड तथा सनातन धर्म सभा मन्दिर रेलवे रोड पर है। इन स्थानों पर दोनो के धार्मिक प्रवचन तथा सत समागम हुआ करता है।
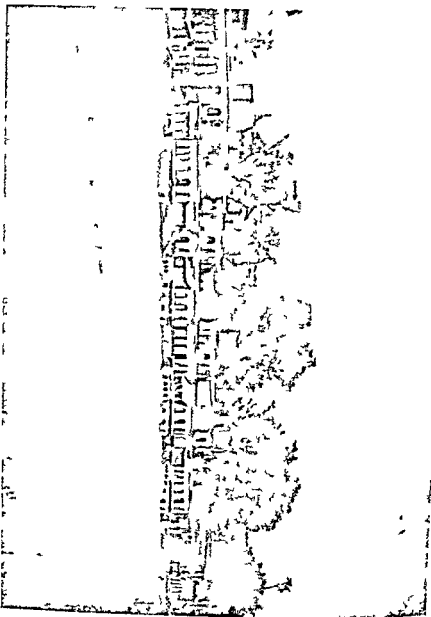
देश विख्यात 'शाहजी की विश्रांति' (गङ्गा घाट) फरुखाबाद

वृक्ष थे।

नगर में दो प्रसिद्ध मेले और हैं। एक सुन्दर दुइज का मेला जो फरुखाबाद नगर से उत्तर की ओर लगभग २ मील की दूरी पर अगहन वदी दुइज को लगता है। कहा जाता है कि यह मेला नवाब साहब ने अपनी एक सुन्दर नाम की वेश्या के नाम पर लगवाया था और तब से लगता आरहा है। इस मेले में अन्य वस्तुओं के साथ मिट्टी के वर्तन तथा नारगी बहुत बिकने आती है। नारगियों के बहुतेरे बगीचे नष्ट हो जाने के कारण अब इतनी नहीं आती। स्त्रियाँ ही अधिकाश आती है जो गगा नहाने के उपरान्त मेला क्षेत्र के बागों में बैठकर भोजन करती है तथा मेले का आनन्द लेती हैं। पुरुषों में से थोड़े ही लोग गगा नहाने जाते है परन्तु पतग बाजी अधिक करते हैं।

दूसरा नौखण्डा का मेला अगहन सुदी ६ के दिन होता है। यह मेला फतेहगढ़ के पास लगता है बहुत सी बातों में सुन्दर दुइज के मेले से समानता रखता है। जैसे महिलाओं का गंगा स्नान, नारगिया, पतगबाजी आदि लेकिन यह मेला सुन्दर दुइज के मेले की अपेक्षा काफी बड़ा होता है। मिट्टी के वर्तनो के अतिरिक्त लकड़ी की वस्तुयें भी बिकने आती है और नाना प्रकार के खेल तमासे भी लगते है किवदन्ती है कि वाराह अवतार के समय पृथ्वी का उद्धार करते हुए इस स्थल पर पृथ्वी के नौ खण्ड हो गए थे तभी से इस स्थान का नाम नौखण्डा प्रसिद्ध हुआ।

उपरोक्त दोनों मेलों के अतिरिक्त नगर में पतंग बाजी का एक महान मेला वसन्त पंचमी के रोज होता है। इस मेले को छत्तो का मेला भी कहा जा सकता है। क्यो कि इस रोज बाल वृद्ध सभी अपनी छतो पर ही सम्पूर्ण दिन रह कर पतग बाजी का आनन्द लेते है। सूर्योदय से प्रथम ही चारो ओर से पतंगों की सर सराहट प्रारम्भ हो जाती है। और रात्रिको पूर्ण कालिमा आने पर ही यह समाप्त होती है इस दिन आकाश में जिस ओर दृष्टि डालिये। पतगे ही पतगे दिखाई देती है।

फरुखाबाद नगर से १२ मील पूर्व कमालगज स्टेशन के पास शेखपुर नामक स्थान पर शेख साहब की मजार पर हर वर्ष मेला लगता है। यह मेला घुड़दौड़ के का अधिक प्रसिद्ध है। इस स्थान के आस पास कई बावडी छिबरामऊ क्षेत्र में जिला के कई प्रसिद्ध मेले लगते। जिनकी अपनी अपनी विशेषतायें हैं।

गुरसहायगंज स्टेशन से छिबरामऊ जाने वाले म के मध्य में सराय प्रयाग में वैसाख के पहिले मंगल देवी का एक अच्छा मेला लगता है परन्तु माधौनगर, (कि छिबरामऊ से ६ मील पश्चिम) मेले से छोटा होत है। माधौनगर में देवी मन्दिर है। मूर्ति पुरानी है त इस मन्दिर के निर्माण कर्ता पं० सदानन्द जी तिवारी है यह मेला चैत सुदी ६ से पूर्णमासी तक रहता है।

अहिल्या राजारामपुर में जो कि छिबरामऊ के दक्षिण में है, मदार साहब की दरगाह पर एक विशाल मेला वसन्त पंचमी से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा तक रहता है इस मेले की विशेषता यह है कि इस में हर प्रकार के जानवर बिकने आते हैं। और उनका क्रय विक्रय करने वालों की सख्या एक लाख तक पहुँच जाती है।

इसी ओर रोहली नामक स्थान पर भादो के हर शनिश्चर को जहरापीर का मेला लगता है। कन्नौज, कानपुर, उन्नाव, हरदोई आदि के स्थानों से लोग आकर अपने २ जानवरों की रक्षा के लिए मनौती मनाते है और पूर्ण हो जाने पर जहरापीर की चढ़ौती चढ़ाते हैं।

छिबरामऊ के सौरिख क्षेत्र में कुबर कोट का प्रसिद्ध टीला है यहां पर किसी समय बहुत बड़ा किला था सौरिख नाम पड़ने का कारण यह बतलाया जाता है कि इस स्थान में सौ ऋषि रहते थे। इसी नाम से यह स्थान प्रसिद्ध था। बिगड़ते २ सौरिख रह गया। यहां सौ ऋषि तपस्या करते थे। और रावण द्वारा मारे गये थे। उनकी समाधियां भी बनी हुई है। शिव जी तथा देवी जी के साधारण मेले होते है।

जलालाबाद से दक्षिण दो मील पर सिमरमऊ में शीतलादेवी का प्राचीन मन्दिर है चैत के महीने में विशाल मेला होता है। यह क्षेत्र गुलाब की खेती के लिए भी प्रसिद्ध है।

परिशिष्ट (१)

(जनपद के महत्वपूर्ण स्थानों की एक झलक)

इतिहास खण्ड में पन्चाल प्रदेश तथा उसके महानगरों का तत्कालीन वर्णन आगया है। वास्तव में उसी पुरातनता को स्मरण कराना अभीष्ट भी था। यवन कालीन इतिहास आदि पर काफी वृत्त उपलब्ध है या हो सकता है अतएव उसको सविस्तार वर्णित नहीं किया है। वास्तव में वैदिक युग से लेकर दशवीं शती तक अविछिन्न सांस्कृतिक धारा बहती रही जब तक कि यवनों के आगमन ने उसे एक अन्य दिशा में न मोड़ दिया। अतएव उस विच्छिन्न शृंखला को वर्त्तमान से जोड़ने के तात्पर्य से ही दुष्प्राप्य इतिहास को समक्ष लाने की चेष्टा की गई है। इस स्थान पर कुछ उन स्थानों और नगरों का वर्णन देना अभीष्ट होगा जो निस्सदेह हमारी पुरातनता से सम्बन्ध रखते हैं। वर्त्तमान में उन स्थानो की क्या दशा है, उसकी भी एक झलक इन विवरणो से प्राप्त हो जाएगी।

जनपद के इतिहास सकलन के कई प्रयास इससे पूर्व हो चुके हैं। किन्तु उन प्रयत्नों को वर्त्तमान तथा यवनकाल तक ही सीमित रखा गया। पीछे की ओर झाकने की भी चेष्टा नहीं की गई। नीचे जिन पुस्तकों का प्रसङ्ग दिया जा रहा है उनके अनुशीलन से दशमी बारहवीं शताब्दी के पश्चातका वर्णन प्राप्त हो सकता है। अतएव इस ग्रंथ में उसका विस्तृत वर्णन नहीं दिया है। यह अवश्य है कि वह पुस्तकें अंग्रेजी उर्दू या फारसी में हैं, हिन्दी में नहीं इस लिए जनता के लिये भी उपादेय नहीं है। युग की माग तो है कि पूर्ण अनुसन्धान के पश्चात एक सर्वकालिक वृत्त संग्रह जनपद को आधार मानकर निकाला जाय। १७१४ में फरुखाबाद की नीव पड़ने पर मुहम्मदखां का दरबार भी उच्चकोटि का हो उठा। उनके तथा उनके पीढ़ी के अन्य नवाबों के दरबारों में योग्य विद्वानों कवियों और लेखकों का भी स्थान रहा होगा। उन्होंने अवश्य इतिहास सम्बन्धी प्रयत्न किए होंगे। सबसे पहिली पुस्तक 'तुजिरताकलाम' का पता चलता है जो १७४६–४७ में मुशी साहब[illegible] द्वारा लिखी गई थी। इसमें नवाब मुहम्मदखां के पत्रो[illegible] विषय वर्णन है जिससे बहुत से ऐतहासिक तथ्यों पर प्र[illegible] पड़ता है। इसके पश्चात संयद हिसामुद्दीन ग्वालियरी [illegible] 'खुलासाये जगत'प्राप्त होता है जो यहां का प्रथम इतिह[illegible] कहा जा सकता है। इसी प्रकार का एक प्रयास 'तारी[illegible] फरुखाबाद' मुफ्ती वलीउल्लाह द्वारा १८२९–३० में कि[illegible] गया था। फिर १८३९–४० में मीर बहादुर अली ने 'तौह[illegible] तारीख' लिखी जिले के एक डिप्टी कलेक्टर कालीराय १८४५ में 'फतेहगढ़ नामा प्रस्तुत किया। अठारहवीं श[illegible] में ही कोड़ा के सेनापत नवाब वफाउल्लाखां ने मुहाराना मुगलिया व अफगानिया' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्[illegible] पद्य में लिखी बताई जाती है। इसके पश्चात के प्रयत्नों [illegible] वालेस साहब का 'फतेहगढ़ कैम्प' डब्ल्यू इरविन का 'बन[illegible] नवाब आफ फरुखाबाद' (१८७८–७९) तथा कलेक्ट[illegible] मिस्टर अटकिन्स तथा अनेक परवत्तियों द्वारा सकलि[illegible] 'गजटियर' मुख्य हैं। उक्त प्रयत्नों के अलावा कुछ अन्य प्रयत्न बाहरी यात्रियोंऔर कवियों द्वारा किए गए थे अब्दुल कादिर की 'तारीखे बदाउनी' शम्शाबाद में लिखी गई थी। नवाब अहिमद साहब के दरबार में सौदा तथा मीर जैसे प्रसिद्ध शायरों ने आवास किया था। हिन्दी में सबसे प्रथम प्रयत्न स्थानीय आर्य समाज द्वारा किया गया। वह उक्त ग्रंथों के आधार पर ही किया गया था। इस कथित 'फरुखाबाद का इतिहास' नामक पुस्तक में विशेष वर्णन तो आर्य समाज की गतिविधियों का है किन्तु फिर भी यह कार्य प्रथम होने के कारण प्रशन्सनीय रहा। इन पुस्तकों में अतिम चार तो उपलब्ध होती हैं अन्यों का पता नहीं कहाँ किसके पास हो गी। तारीखे 'फरुखाबाद' सम्भवत कायमगज में चतुर्वेदी जी के प्रसिद्ध पुस्तकालय में सुरक्षित है।

यह तो स्पष्ट ही है कि यह भूमि कितनी पुरातन

पर था नगरों का विस्तार बहुत बड़ा हुआ करता था। अतः भीष्मपुर तथा देवयान महाराज द्रुपद का कोई कोट यहां हो इसमें आश्चर्य क्या। नगर के निकट ही गुरुग्राम तथा शान्तनुपुर नामक स्थान भी है। गुरु द्रोण और भीष्म और शान्तनु के नामों से सम्बन्धित होना भी कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि कुरु और पञ्चाल मित्रदेश थे। यह तो निश्चित ही है कि यह बमटेले क्षत्रियों द्वारा शासित था। जो आज भीष्मपुरा मुहल्ला कहलाता है, वह किसी नगर का अवशेष हो सकता है जिसका नाम भीष्मपुर हो। मुहम्मद खाँ बंगश बमटेलों के विरुद्ध था ही। फिर बमटेलों ने उसके श्वसुर कासिम खां को भोलेपुर के करीब मार डाला था। इससे कुपित हो मुहम्मद खां ने इन बमटेलों के बावन ग्राम फरुखसियर द्वारा प्राप्त कर लिए और फरुखाबाद नगर बसाया। नगर के चारों ओर एक त्रिकोण परिखा बनाकर सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया था। यह परिखा २० फीट ऊंची तथा १२ फीट चौड़ी थी। इसकी नाप दक्षिण में २६४७ दक्षिण पूर्व में १८७५ तथा दक्षिण पश्चिम में १५७५ गज थी। प्रवेश के लिए बारह दरवाजे थे यथा गङ्गा, पाई, कुतुब, मऊ, जसमई, खिया, मदार, लाल, कादिरी अमेठी, ढिलावल व तराई। चौबीस खिड़की थी। नगर का क्षेत्रफल १८५६ एकड़ था। १४३ मुहल्ले थे। प्रत्येक दरवाजे के साथ एक सराय बनवाने की योजना थी। मऊ सराय बीबी साहबा द्वारा बनवाई गई थी और लालसराय नवाब मुहम्मद द्वारा (१८२५) किन्तु सात ही बनपाई थीं। अब वो केअवशेष बचे हैं। किला आदम नाम के चतुर राज द्वारा बनवाया गया था उसे वेतन 'फल्लूसों' में मिलता था। फल्लूस का मान १ पैसा था। नवाबों ने किले और नगर को सजाने के खूब प्रयत्न किए थे। बहिश्त, पाई, हयात, ऐश, नौलखा आदि प्रसिद्ध बाग लगवाए जिनमें सहस्त्रों की जायदाद व्ययार्थ लगा दी गई थी। हयात बाग में मुहम्मद खां ने अपने अंतिम विश्राम के लिए मकबरा भी बनवा दिया था। इसी की नींव खोदते समय लगभग ५ मन का एक गदाकार लौहखण्ड निकला था जिसे लोगों ने भीमसेन की गदा की मान्यता देकर पूजना प्रारम्भ कर दिया।

स० १७६६ में उसके दो टुकड़े हो गए थे वह अब मऊ दरवाजा के पास पड़ी हुई है और पूजी जाती है वास्तव में यह किसी प्रासाद में प्रयुक्त स्तम्भाधार का भा गदा नहीं। बमटेले निरंतर आक्रमण करते रहते थे। मुहम्मद खां ने अपने २२ पुत्रों के लिए बाईस गढ़ियां बाई थी और उन पर सैनिक रखे गये थे। इसी लिए के चारों ओर सैनिक मुसलमानों की बस्ती है वो व्यापारी हिन्दुओं की। पुराने मु० के नाम पर अब कई मु० वर्तमान हैं। मुहम्मद खां था बहुत वीर उतना ही विलासीभी उसकी मुख्य भार्या एक थी किन्तु १ के लगभग और औरतें उसकी तृप्ति के लिये रखीं गईं उसके २२ पुत्र और २२ पुत्रियां थीं। उसकी आम ५०-६० लाख रुपया वार्षिक थी मुहम्मद खां ने ४० हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था। इन्हीं परिवर्ति सैनिकों में से उसके सैनिकों ने याकूतगंज आदि ७ बसाये थे। मन्दिरों और मस्जिदों की संख्या ८०० ५०० थी। फरुखाबाद का वैभव तफज्जुलखां तक रहा गदर में नवाबों का माल लूट लिया गया। दीवान खा खास महल, मुबारक, सलामत, महलों आदिकी स्वर्णजटि भीतें ध्वंस कर भस्मीभूत करदीं गईं। आज केवल न भग्न दीवारें अपने उन दिनों को स्मरण कर रुदन क रहीं दिखाई देती हैं।

अब पुराने स्थान दर्शनीय भी नहीं रहे हैं टाउनहाल पर ही नवाबी महल थे। वहां से गङ्गा प्रा का दृश्य अत्यन्त सुहावना लगता था नीचे बागात औ नहरें थीं जिनमें चन्दन आदि के सुवासित पेड़ थे वास्तव में उस हरे भरे प्रांगण के मध्य में खड़े होकर एक बार स्वर्ग का दृश्य स्मरण हो आता होगा। चौक से मऊदरवाजा जानेवाली सड़क पर सीमा के अन्दर ही बहिश्त बाग पड़ता है। यहां का शानदार प्रवेश द्वार अबभी वर्तमान है। बीबी साहब इत्यादि की समाधियां बनी हैं। एक मस्जिद अब भी अच्छी हालत में है। परिखा के बाहर ही हयात बाग था। प्रसिद्ध मकबरे अब भी ध्वंस अवस्था में दिखाई देते हैं। फरुखाबाद लगातार अवनति की ओर जाता रहा है

महाभारत काल में पाण्डव बनवासी के रूप में इस क्षेत्र में रहे थे। यहीं रह कर उन्होंने द्रौपदी के स्वयंवर में भाग लिया था। पाण्डवों द्वारा पांडवेश्वर

आधार) तक पहुंच गए किन्तु कोई पता न चला था। तब उस स्थान पर एक विहार का निर्माण कराया था। जिसमें १६ फीट ऊंची बुद्ध प्रतिमा स्थापित की गई। योल द्वारा इस सम्बन्ध में विस्तृत वृतांत दिया गया है। चक्रवर्तिनी सम्राज्ञी उत्पला द्वारा बुद्ध स्वागत किया गया था। पश्चात यह भिक्षुणी हो गई। जिन स्थानों पर बुद्ध ने नख व केश काटे थे, स्नान किया था, विचरण किया था, उन दस स्थानों की स्मृति में वहाँ पर स्तम्भ बन वाविए गए थे वर्णन आता है कि एक हजार भिक्षु भिक्षुणी एक साथ रहते और भोजन करते थे। यह सब हीनयान सम्प्रदायी थे। एक श्वेत कर्ण वाला यक्ष इन पद्तियों का संरक्षक था जो जल वर्षाता तथा प्रकोपों से रक्षा करता था। यहा एक संघाराम भी था जिसमें ६००–७०० भिक्षु रहते थे। इत्यादि।

जनरल कनिंघम सकिसा कई बार गए और इन स्थानों का पता लगाने की चेष्टा की। जिस हाथी को खुदाई में प्राप्त किया गया है उसका निर्माणकाल अशोक काल ही का है। विसारी देवी के मंदिर से २०० फीट की दूरी पर स्तूप के अवशेष है। निधि के कोट के स्थान पर संघाराम माना जाता है। नगर परिक्रमा परिखा द्वारा आवद्ध थी जिसकी माप १८६०० फीट तथा साढ़ेतीन मील लगाई गई है। पौरखिरिया ग्राम ही उसका प्रवेश द्वार होगा। जिस स्तम्भ पर हाथी आधारित होगा उसकी अनुमानित ऊंचाई ५० फीट मानी जाती है। इलियट तथा कनिंघम का मत है कि सकिसा का विध्वस पृथ्वीराज और जयचन्द्र के युद्धों के समय हुआ। जनश्रुति के अनुसार यहां के राजाओं का सम्बन्ध पर्वतीय राजाओं से भी जोड़ा जाता है।

सकिसा के पूरे इतिहास के अध्ययन की नितांत आवश्यकता है। खुदाई द्वारा ही बहुत से तथ्य प्रकाश में आसकते हैं।

सोरिख —यह प्रदेश प्राचीन काल में तपोभूमि थी बड़े २ तपशील महात्माओं ने इसे चुना था। 'दुर्वासा' ऋषि का समाधिस्थल भी यही स्थान माना जाता है। बड़े विस्तृत क्षेत्र में टीले फैले हुए हैं। वर्तमान में इन्हें उन ऋषियों की समाधियां बताया जाता है जिनके रक्त से रावण ने रुधिर का घड़ा भरवाया था। रामायण काल यह स्थान तपोरम्य अवश्य रहा था। रावण के प्रयास यहां तक हुए हों, यह आश्चर्य नहीं क्यों कि दशरथ, ज आदि के राज्यों तक उसका पहुंचना विदित ही। यहां कोई प्रसिद्ध किला भी रहा होगा। खोदने बड़ी २ ईंटे निकलती है। यज्ञकुंडों का भान होता। सोरिख का शुद्ध नाम 'सौम्ब्रर्दि' है। इस टीले पर मस्जिद बनादी गई है। अवश्य ही यहा पहले कोई मं रहा होगा।

सकरावा.—कुछ के मत से शुद्ध नाम सिकरदा और कुछ के मत से शाक्यवारा था। सिकरदा ठाकुर रा पूरणमल ने किला बनवाया था जिसके चिन्ह एक मील इर्दगिर्द में मिलते हैं। यहा के राजा के यहां पारस पत्थ का होना जानकर मुसलमानों ने चढ़ाई करदी। रा हारकर मध्यप्रांत भाग गया। शाक्य मुनि गौतम की ए मूर्ति मन्दिर में प्रतिष्ठित थी।

कन्नौज —कन्नौज का प्राचीन नाम बाराणसी भ कहा जाता है। इस क्षेत्र में समस्त तीर्थों का आवास था इसी कारण वलिराज ने यहां १०० यज्ञ किए थे। वामना वतार भी यही हुआ था। एक कुवा उस स्मृति में बना है कन्नौज से तीन मील पूर्व रिजगिरि है। शुद्ध नाम राजगृह यहा आल्हा ऊदल की कचहरी तथा जयचन्द्र का रनिवास था। जरासन्ध का बसाया हुआ माना जाता है। 'रितु काला' स्थान में ऋतुमती स्त्रियां रहती थीं। कन्नौज से कई मील दूर मिरुअन का भड़हा नामक स्थान है। मूर्तियां और प्रस्तरखण्ड एक क्षेत्र में विकीर्ण हैं कहा जाता है कि प्रस्तरकारों का क्षेत्र था। एक महात्मा के श्राप से मिश्त्री के पेड़ही पेड़ रह गए है। उसी महत्व का दूसरा स्थान जनसत है। 'जनक क्षेत्र' शुद्ध नाम है। जनक मूर्ति विद्यमान है कुशध्वज के राज्य के अंतरगत इसे माना जाता है। यहाँ पाली भाषा के कुछ शिला लेख प्राप्त होते हैं। बीरतन 'मथुरा के राजा' का सिक्का भी मिला था। प्रसिद्ध भक्त अजामिलि का स्थान भी कन्नौज बताया जाता है। कन्नौज के दर्शनीय स्थल निम्न हैं (१) सीतारसोइया इस पर अब जुम्मा मस्जिद बनी हैं। लोग इसे जनकजा सीता से सम्बन्धित बताते हैं। किन्तु वास्तव में सीता राजा जयपाल की पुत्री थी उसी के नाम का पत्थर भी लगा हुआ था

परिशिष्ट (१)

फर्रुखाबाद जिला क्षेत्रफल मकान और जनसंख्या

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में ४१ वां स्थान

क्षेत्रफल — १ हजार ६ सौ ७ वर्ग मील

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में ३१ वां स्थान

जनसंख्या — १० लाख ६२ हजार ६ सौ ४१

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में २७ वां स्थान

गांव	१ हजार ६ सौ २३
मजरे	४ हजार ४ सौ ६७
नगर	६
मकान ग्रामीण क्षेत्र	१ लाख ४१ हजार ३०
मकान नागरिक क्षेत्र	२१ हजार ६ सौ १
	योग १ लाख ६२ हजार ६ सौ ३१

जनसंख्या में गत ५० वर्षों में वृद्धि १ लाख ८४ हजार ४ सौ ३४

पिछली १९४१ की गणना से ५१ की गणना में वृद्धि १४ ३ प्रतिशत

जिले के प्रति वर्ग मील में जन संख्या का मध्यमान ६६०

स्त्रियों की संख्या	४ लाख ६८ हजार ९७
पुरुषों की संख्या	५ लाख ६४ हजार ५ सौ ४४
	योग १० लाख ६२ हजार ६ सौ ४१

जनसंख्या के आधार पर जिले के नगरों का वर्गीकरण

५० हजार और १ लाख के बीच १ नगर फर्रुखाबाद- पुरुष ३६ हजार १ सौ ७१

स्त्रियां ३५ हजार ३४

योग ७४ हजार २ सौ ५

२० हजार और ५० हजार के बीच १ नगर कन्नौज- पुरुष १२ हजार १ सौ ५५

स्त्रियां १० हजार ६ सौ ८३

योग २३ हजार १ सौ ३८

१० हजार और २० हजार के बीच १ नगर कायमगंज- पुरुष ५ हजार ६ सौ ७

स्त्रियां ५ हजार ३८

योग १० हजार ६ सौ ४५

फतेहगढ़ छावनी — पुरुष ४ हजार ४३

स्त्रियां २ हजार ८४

योग ६ हजार १ सौ २७

जिले में उद्योग तथा सेवाओं द्वारा जीविका प्राप्त करने वाले
प्रति १० हजार स्वावलम्बी व्यक्तियों में से

१	प्रारम्भिक उद्योगों में सलग्न व्यक्ति	३ सौ ४२
२	मिट्टी बालू ककड़ खोदने वाले व्यक्ति	६
३	खाद्य पदार्थ बुनावट और चमड़े के कार्यों में सलग्न व्यक्ति	१ हजार ८ सौ ८६
४	धातु और रसायनिक पदार्थ सबन्धी	२ सौ ४५
५	अन्य निर्माण कार्यों	६ सौ ८६
६	निर्माण तथा उपयोगी	४ सौ १६
७	वाणिज्य में	५ सौ ११
८	स्वास्थ्य शिक्षा और सार्वजनिक प्रशासन	१ हजार २ सौ ६०
६	अन्य प्रकार की नौकरियों में जिनका ऊपर उल्लेख नहीं सलग्न	२ हजार २ सौ १३

जिले में प्रारम्भिक उद्योगों में सलग्न स्वावलम्बी
प्रति १० हजार व्यक्तियों में से

१	पशुपालन में	८ हजार १ सौ ५६ व्यक्ति
२	छोटे जानवर पालने में	१ सौ ५० व्यक्ति
३	बाग लगाने में	४ सौ २३ व्यक्ति
४	लकड़ी काटना तथा वन विज्ञान में	१ हजार १ सौ ३२ व्यक्ति
५	मछली मारने में	१ सौ ८२ व्यक्ति

जिले में खाद्यपदार्थ बुनावट और चमड़े के उद्योग में सलग्न
प्रति १० हजार व्यक्तियों में से

१	खाद्य पदार्थों के उद्योग में	६ सौ ६० व्यक्ति
२	अनाज और दाल के काम में	१ हजार ७ सौ ७३ व्यक्ति
३	वनस्पति तेल और दुग्ध उद्योग में	१ हजार ५४ व्यक्ति
४	शकर के कार्य में	४ सौ ६४ व्यक्ति
५	पेय पदार्थों के उद्योग	४६ व्यक्ति
६	तम्बाकू के कार्य में	४ सौ ८६ व्यक्ति
७	सूती कपड़े के कार्य में	२ हजार ८६ व्यक्ति
८	जूतों के अतिरिक्त अन्य परिधान निर्माण में	१ हजार ७ सौ ३२ व्यक्ति
६	बुनाई के कार्य में	४ सौ ४७ व्यक्ति
१०	चमड़े के कार्य में	६ सौ १६ व्यक्ति

जिले की जन संख्या का आयु के आधार पर वर्गीकरण

१. एक वर्ष से कम आयु के लड़के	२० हजार ३ सौ ३
२. एक वर्ष से कम आयु की लड़कियां	१८ हजार ५ सौ ६५
३. १ और ४ वर्ष के बीच के लड़के	५७ हजार ६ सौ
४. १ और ४ वर्ष के बीच की लड़कियां	५४ हजार ८ सौ ५१
५. ५ और १४ वर्ष के बीच के लड़के	१ लाख ५० हजार ६ सौ ४५
६. ५ और १४ वर्ष के बीच की लड़कियां	१ लाख २४ हजार ५ सौ ७१
७. १५ और ३४ वर्ष के बीच के पुरुष	१ लाख ६४ हजार ८ सौ १८
८. १५ और ३४ वर्ष के बीच की स्त्रियां	१ लाख ५६ हजार १ सौ ६८
९. ३५ और ५४ वर्ष के बीच के पुरुष	१ लाख ३१ हजार ६ सौ ६३
१०. ३५ और ५४ वर्ष के बीच की स्त्रियां	१ लाख ७ सौ ४१
११. ५५ वर्ष तथा ऊपरके पुरुष	४६ हजार १ सौ ६
१२. ५५ वर्ष तथा ऊपर की स्त्रियां	३३ हजार २ सौ ७७
पूर्ण योग	१० लाख ६२ हजार ६ सौ

जिले में साक्षरता की प्रगति (प्रति १००० में से)

१. ५ और ६ वर्ष के बीच की आयु के लड़कों में साक्षर	
२. ५ और ६ वर्ष के बीच की आयु की लड़कियो मे साक्षर	२७
३. ५ और १४ वर्ष के बीच की आयु के लड़कों मे साक्षर	१ सौ ८५
४. ५ और १४ वर्ष के बीच की आयु की लड़कियों मे	५४
५. १५ वर्ष और ऊपर के पुरुषो मे साक्षर	२ सौ २१
६. १५ वर्ष और ऊपर की स्त्रियों मे	५४
पुरुषों में सर्वाधिक साक्षर जिला	देहरादून
स्त्रियों में सर्वाधिक ,, जिला	फतेहपुर

पुरुषों की साक्षरता के आधार पर उत्तर प्रदेश मे फरुखाबाद का स्थान २० वां
स्त्रियों की ,, के आधार पर उत्तर प्रदेश मे फरुखाबाद का स्थान ८ वां

जिले की बोलियां प्रति १० हजार व्यक्तियों में से

१. हिन्दी भाषी व्यक्ति	६ हजार ६ सौ ७[illegible]
२. पंजाबी भाषी व्यक्ति	१३
३. बंगाली भाषी व्यक्ति	१
४. सिंधी भाषी व्यक्ति	५
५. गुजराती भाषी व्यक्ति	१
६. मरहठी भाषी व्यक्ति	१
७. मारवाड़ी भाषी व्यक्ति	१
८. अन्य भाषा भाषी व्यक्ति	१